उदयशंकर भट्ट :

काव्य और नाटक

डा० सुरेशचन्द्र शर्मा

विमल प्रकाशन—गाजियाबाद

पूज्या
वात्सल्यमयी 'बा'
स्वर्गीय भट्ट जी
की धर्मपत्नी
गौरी देवी
को
समर्पित

'सुरेश'

प्रास्ताविकम्

'जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वरा।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्॥'

स्वनामधन्य स्वर्गीय पं० उदयशंकर भट्ट हिन्दी साहित्याकाश के ऐसे देदीप्यमान नक्षत्र थे जिनके मधुमय आलोक से हिन्दी-साहित्य ही आलोकित नहीं हुआ अपितु साहित्य देवता की शुभार्चना भी हुई। भट्ट जी के योगदान को देखते हुए उनके विषय में आलोचनात्मक कार्य नगण्य-सा ही हुआ है। भट्ट जी उन सुधी कृतिकारों में हैं जिनके व्यक्तित्व की अविकल प्रतिछाया उनके साहित्य में उपलब्ध होती है। यही कारण है कि भट्ट जी के साहित्य का सही मूल्यांकन उनके व्यक्तित्व के परीक्षण के बिना सम्भव नहीं है। भट्ट जी का अलीगढ जनपद से भौतिक तथा रागात्मक सम्बन्ध तथा सम्पर्क रहा और उनकी अनेक रचनाओं की पुण्यस्थली गंगा की सुरम्य तटी रही है। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग से भी भट्ट जी का बड़ा नैकट्य था। इसीलिए उनके दिवंगत होने के पश्चात् विभाग का यह पुनीत कर्त्तव्य हो गया कि विभाग के द्वारा उनके साहित्यिक व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर यत्किंचित् विचार किया जाय। भट्ट जी के साहित्य की पृष्ठभूमि इतनी विस्तीर्ण तथा व्यापक है कि उस पर सर्वांगीण विचार दशाब्दियों की साधना द्वारा ही सम्भव है। उनके साहित्य-महोदधि से रत्न निकालना किसी मरजीवा का ही काम है। इसलिए उनके साहित्य का मूल्यांकन खण्डशः ही सम्भव है।

प्रस्तुत शोध कृति में मेरे प्रिय तथा योग्य शिष्य डा० सुरेशचन्द्र शर्मा ने भट्ट जी के काव्य तथा नाटक साहित्य का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। डा० सुरेशचन्द्र मौलिक सूझ-बूझ के सुपठित विद्वान् हैं तथा साथ ही उनकी परख में रागात्मकता का भी पुट रहता है। यही कारण है कि डा० सुरेशचन्द्र ने भट्ट जी के साहित्य में अनुस्यूत समस्याओं को उभारकर उनका वैज्ञानिक विश्लेषण करने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। भट्ट जी के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें प्राचीन और नवीन, ऐहिक तथा आमुष्मिक का सुन्दर समन्वय हुआ है। आधुनिकता के सन्दर्भ में भट्ट जी ने मानव की शाश्वत समस्याओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। लेखक के शब्दों में भट्ट जी ने भारतीय चिन्तन और संस्कृति के अविरल प्रवाह को प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक युग तक उसकी समग्रता को दिखाते हुए उसके अव्याहत प्रवाह में लोकमंगल के उदात्त आदर्श को प्रस्तुत किया है। भट्ट जी ने काव्य के माध्यम से सत् की विजय-वैजयन्ती को ही उत्तोलित किया है। इस प्रकार भट्ट जी के साहित्य में चेतना के उस अखण्ड, निर्ग्राह्य प्रवाह के दर्शन होते हैं जो साहित्य को विश्वजनीन, सर्वांगीण तथा तथा व्यापक बनाने वाली है।

मुझे प्रसन्नता है कि डा० सुरेशचन्द्र जी ने बड़े मनोयोग, अध्यवसाय तथा परिश्रम से भट्ट जी के साहित्य का सार्वभौम मनोभूमि पर मूल्यांकन करने का अभिनन्दनीय प्रयास किया है। मुझे विश्वास है कि सुरेश जी की यह कृति हिन्दी-जगत् में समदृत होगी तथा भट्ट जी के साहित्य को सही परिप्रेक्ष्य में समझने में सहायक होगी।

डा० सुरेश जी को मेरा आशीर्वाद है कि उनकी कारयित्री प्रतिभा से हिन्दी-जगत् अधिक से अधिक लाभान्वित हो।

हरबंश लाल शर्मा
डी० लिट्०
आचार्य एवं विभागाध्यक्ष

अलीगढ़ विश्वविद्यालय
अलीगढ़

ग्रन्थ के विषय में

पण्डिय उदयशंकर भट्ट हिन्दी साहित्य गगन के एक उज्ज्वलतम नक्षत्र थे। वे आजीवन मौन साहित्य साधना करते रहे। हिन्दी में पौराणिक नाटकों का उन्हें प्रथम वैतालिक कहा जाय तो अनुचित न होगा। कविता के क्षेत्र मे रामायण-महाभारत के प्रथित आख्यानों से लेकर आज के दफ्तर के बाबू तक पर उन्होने लेखनी उठायी है। काव्य, नाटक, एकांकी-उपन्यास, निबन्ध आदि साहित्य की सभी विधाओं का यह चतुर अप्रतिम शिल्पी आजीवन साहित्यिक जगत् से उपेक्षित-सा ही रहा, क्योंकि किसी भी कैसी भी पकिल, राजनीति के दलदल में फँसना उसे सुहाता न था। न सरते भाव में अपने कवि-सुलभ अहं का विसर्जन ही करना चाहता था। यही कारण था कि भट्ट जी के उद्भट व्यक्तित्व ने सिद्धान्तों का बलिदान कर किसी विश्वविद्यालय की *ऑनरिस कॉउज़ा* डॉक्टरेट की सम्मानित उपाधि को स्वीकार नही किया। पचास के लगभग ग्रन्थ लिखने वाले इस महामहिम मनीषी की बड़ी भारी ईमानदारी यह थी कि सतत साहित्य समाराधन मे नेत्र-ज्योति के दुर्बल होते जाने पर रेडियो के हिन्दी-विभाग से त्यागपत्र दे दिया क्योंकि वे नेत्र-कष्ट के कारण अपने कर्त्तव्य से न्याय नहीं कर सकते थे। जीवन के अन्तिम वर्षों मे भगवती भागीरथी का प्रशान्त तट उन्हें निरन्तर आकर्षित करता रहा। कवि गगा के शान्त एकान्त वातावरण में ही एक साधक योगी की भाँति असीम शान्ति पाता था। उपन्यासकार के रूप में उसकी साहित्य-साधना की तुरीयावस्था अधिकांशत: गंगा के प्रशान्त वातावरण मे ही प्रस्फुटित हुई। 'एक नीड़ दो पंछी', 'लोक-परलोक', 'शेष-अशेष', 'सागर, लहरें और मनुष्य', 'दो अध्याय' उनकी गम्भीर चिन्तनशील मनीषा के अद्भुत परिणाम है। सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी भट्ट जी अत्यन्त परिष्कृत रुचि के सुपण्डित व्यक्ति थे। मित्रों, परिजनों, कुटुम्बियों के लिए भी पर्याप्त ममतामय थे। स्वभाव से शिशुवत् सरल प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति के कृतित्व पर कोई प्रामाणिक ग्रन्थ प्रस्तुत कराने की श्रद्धामयी वासना का इस जन के हृदय में उदय होना स्वाभाविक ही था। जीवन के मध्याह्न के बीस वर्ष उनके निकट साहचर्य मे बीते थे। अत: बहुत निकट से उन्हें देखा, जाँचा और परखा था। प्रत्येक कोण से वे एक उज्ज्वल हीरक खण्ड की भाँति स्वच्छ, प्रभापूर्ण एवं सुदृढ़ थे।

उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर एक प्रामाणिक ग्रन्थ के स्वप्न को साकार करने वाले अपने प्रियतम शिष्य डॉक्टर सुरेशचन्द्र शर्मा प्राध्यापक म्युनिसिपल स्नातकोत्तर महाविद्यालय मसूरी को मैं बधाई देता हूँ जिनके सत्प्रयास से साहित्य जगत् को पहली बार इस अनुपम कृति के दर्शन हुए।

प्रस्तुत ग्रन्थ अपने मूल रूप में पी-एच० डी० की उपाधि के लिए प्रस्तुत किये

गये शोध-प्रबन्ध के रूप में था। परीक्षकों की भूरि-भूरि प्रशंसा एवं अनाविल आस्था से उत्साहित होकर उसको ग्रन्थ रूप में प्रकाशित करने का उनका संकल्प तभी से चल रहा था। अनेक कठिनाइयों के होने पर भी संकल्प और दृढ़ता के धनी श्री शर्मा कभी निरुत्साहित नहीं हुए। उन्होंने भट्ट जी के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जितनी प्रामाणिक सामग्री जुटाई है उससे अधिक की आशा नहीं की जा सकती। उनके सभी ग्रन्थों को जुटाकर उनका वर्गीकरण कर उनके सूक्ष्म अध्ययन के आधार पर डॉक्टर शर्मा ने भट्ट जी के कवि और नाटककार रूप को साहित्य-जगत् के समक्ष प्रस्तुत किया है। 'उत्पत्स्यते कोऽपि समानधर्मा' की उक्ति के अनुसार विश्वास है कोई समानधर्मा उनके उपन्यासों का भी शोध अध्ययन प्रस्तुत करेगा। श्री भट्ट जी के कृतित्व पर सर्वप्रथम प्रयास की दृष्टि से प्रस्तुत कृति एक बड़े अभाव की पूर्ति करती है। एतदर्थ साहित्य-जगत् श्री शर्मा का आभार स्वीकार करेगा। श्री शर्मा में वे सभी आपेक्षिक गुण विद्यमान हैं जो भट्ट जी जैसे मनीषी अमर शिल्पी के गहन अध्ययन के लिए अपेक्षित हैं। विश्वास है कि प्रस्तुत ग्रन्थ का साहित्य-जगत् में पर्याप्त समादर होगा।

गुरुवार, होलिकोत्सव
२०२७

गोवर्धननाथ शुक्ल

लेखकीय

भट्ट जी ने अपने साहित्य में मानव की शाश्वत समस्याओं और उसके प्रयत्नों को इस भाँति मंजोया है कि बीते युग की कहानी होकर भी हमारे लिए वह नवीन और आनन्ददायक है। इसके साथ-साथ भारतीय चिन्तन और संस्कृति के अविरल प्रवाह को प्राक्-ऐतिहासिक काल से लेकर आधुनिक युग तक उसकी समग्रता एवं अव्याहत प्रवाह में लोकमंगल के उदात्त आदर्श का अनुशीलन बड़े मनोयोग से किया है। बस यही इस शोध-प्रबन्ध की मूल प्रेरणा है। उधर श्रद्धेय डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल गत बीस वर्षों से उनके निकट सम्पर्क में थे। अतः उनके सत्परामर्श और आग्रह ने मुझे विशेष बल दिया।

कविता के क्षेत्र में उन्होंने मुक्त छन्द, अतुकान्त वृत्त और गद्यात्मक शैली को अपनाया है। नाटकों में तो एकांकी, रूपक, ध्वनि-रूपक, भाव-नाट्य, गीति-नाट्य, रंग-नाटक, झाँकी आदि सभी की रचना की और आधुनिक युग की सभी काव्य-प्रवृत्तियाँ उनके काव्य में बड़े ही शालीन और संयत रूप में प्रतिफलित होती रही हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध नौ अध्यायों से विभक्त है। प्रथम अध्याय में विषय का महत्त्व और भट्ट जी के युग का और युगीन परिस्थितियों का समुचित वर्णन किया गया है और उनके साहित्य में तत्कालीन दशाओं और काव्य-प्रवृत्तियों का प्रतिफलन भी स्पष्ट रूप से अंकित किया गया है।

द्वितीय अध्याय में महान् साहित्यकार का जीवन-परिचय दिया गया है। इसमें श्रद्धेय डा० गोवर्धननाथ शुक्ल को भट्ट जी के द्वारा लिखे हुए ढाई सौ पत्रों में से कुछ महत्त्वपूर्ण सामग्री मिली जिससे उनके व्यक्तित्व और स्वभाव पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इन पत्रों में महान् साधक ने अपने हृदय को जिस निःसंकोच भाव से खोल कर रखा है, वह अनुपम है। अतः मैं इस दिशा में डा० शुक्ल का विशेष आभारी हूँ। मैंने उनके भट्ट जी से बीस वर्षों के प्रगाढ़ सम्बन्धों का लाभ उन्मुक्त रूप से उठाया है।

तृतीय अध्याय में साहित्यकार के रूप में भट्ट जी के दो रूप—कवि एवम् नाटककार पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। इसमें उन्हें रससिद्ध कवि और अप्रतिम नाटककार सिद्ध करने की चेष्टा की है।

चतुर्थ अध्याय में समस्त कृतियों का आलोचनात्मक परिचय, दृष्टिकोण और निष्कर्ष दिया गया है।

पाँचवें अध्याय में भारतीय संस्कृति और भट्ट जी पर विचार करते हुए उन्हें भारतीय संस्कृति के उन्नायक के रूप में स्वीकार किया है।

छठे अध्याय में यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया है कि भट्ट जी के साहित्य में समस्त समसामयिक वादों का प्रतिफलन होते हुए भी वे सब वादों से दूर हैं।

सप्तम अध्याय में भट्ट जी की भाषा पर विचार किया गया है।

अष्टम अध्याय में साहित्यकार की समस्त काव्य-कृतियों और नाट्य-कृतियों का मूल्यांकन किया गया है। समूचे शोध में लेखक की अनुभूतियों की मूल पकड़ करते हुए निष्कर्ष अभिहित हैं।

नवम अध्याय 'उपसंहार' में भट्ट जी के विशिष्ट दृष्टिकोण पर बल दिया है और उनके काव्य एवं नाटकों में मानवीय गुणों का पर्यालोचन भी किया है।

सबसे पहले मैं श्रद्धेय डॉ० हरबंशलाल शर्मा डी० लिट्०, प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने मुझे सदैव अपनी प्रेरणाओं से स्फूर्ति और संबल दिया। सच तो यह है उन्होंने ही मुझे हाथ पकड़कर लिखना सिखाया है। जैसा कि संकेत दिया जा चुका है यह शोध प्रबन्ध आदरणीय डा० गोवर्धननाथ शुक्ल, रीडर, हिन्दी विभाग अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के निर्देशन में लिखा गया है। विषय-निर्वाचन से लेकर प्रबन्ध की समाप्ति तक उनसे मुझे जो वात्सल्यपूर्ण कृपा-भाव मिलता रहा है, उनके प्रति कृतज्ञता कैसे ज्ञापित करूँ ? वास्तव में यह कृति उन्हीं की है, मैं तो केवल निमित मात्र हूँ। मैं सदैव उनकी कृपा एवं स्नेह के सम्मुख नतशिर हूँ।

स्वर्गीय भट्ट जी के परिवार के लोगों के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ, क्योंकि वहाँ से मुझे आवश्यक सामग्री एवं सूचनाएँ ही नहीं मिलीं, स्नेह और कृपा भी मिलती रही है। इस सम्बन्ध में पूज्या वात्सल्यमयी 'बा' (स्वर्गीय भट्ट जी की धर्मपत्नी) का मैं आभारी हूँ, जिन्होंने भट्ट जी के व्यक्तिगत जीवन और स्वभाव के विषय में मुझे बहुत कुछ दिया है।

डा० हरिवंशराय बच्चन ने मुझे 'राका' देकर उपकृत किया। अतः मैं उनके सौजन्य और उदारता के प्रति श्रद्धामय हूँ।

इस शोध-प्रबन्ध की रचना में मुझे अन्य विद्वानों का भी सहयोग प्राप्त हुआ है, जिनमें विशेषकर डा० नगेन्द्र डा० विजयेन्द्र स्नातक, डा० विजयपाल सिंह, डा० विश्वनाथ शुक्ल, डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' का नाम उल्लेखनीय है।

अन्त में मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती विमला कुश का भी इन क्षणों में कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करता हूँ जिसने मेरे शोध-काल में मुझे गृह-प्रपंचों से मुक्ति देकर एक बड़ा भारी भार स्वीकार किया है। मैं दीपा शर्मा का भी आभारी हूँ, जिसने प्रबन्ध के प्रूफ देखने में मेरी सहायता की है।

बोहरों की हवेली
राजपूताना
रुड़की

सुरेशचन्द्र शर्मा

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ

प्रथम अध्याय

विषय प्रवेश

कोई भी आलोचक अथवा समीक्षक किसी मनीषी साहित्यकार अथवा कलाकार के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर तभी विचार करने को बाध्य होता है जब वह उस कलाकार के उद्दाम व्यक्तित्व, मौलिक चिन्तन तथा अपनी मेधा से समाज का नेतृत्व उसमें पाता है। ऐसे ही मनीषी साहित्यकार किसी देश की चिर-संचित निधि होते हैं और अपनी साहित्यिक देन के लिए उस राष्ट्र तथा समाज से पूजित होते हैं। ऐसा साहित्यकार युगान्तरकारी होता है। प्रत्येक देश मे ऐसे साहित्यकार सदैव से जन्म लेते आये है, परन्तु वे किसी देश विशेष की सम्पत्ति न होकर अखिल विश्व की सम्पत्ति होते हैं। वे अपनी बहुमुखी प्रतिभा से न केवल उस देश की मनीषा का ही नेतृत्व करते हैं अपितु अपने सार्वभौम विचारों से मानवता को शाश्वत सत्य एवं शिवत्व की ओर ले जाते हैं। साहित्य ही उनका सर्वोच्च माध्यम होता है जिससे उनका शिवाराधन सतत चला करता है। प्रत्येक युग मे ऐसे मनीषी होते आये हैं जिनसे पीड़ित, दलित तथा तमसावृत मानवता सदैव त्राण पाती आई है। इन मनीषियों के हाथ की लेखनी ही राजदण्ड का रूप ले लेती है जो सीधे मर्म पर आघात करती है और व्यक्ति तथा समाज को आत्मचिन्तन के लिए बाध्य होना पड़ता है।

पंडित उदयशंकर भट्ट आधुनिक युग के उन कृति-कलाकारों मे हैं जिन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से हिन्दी साहित्य के भण्डार को अनेक बहुमूल्य रत्नों से आपूरित किया है। भट्ट जी की कारयित्री प्रतिभा ने साहित्य के प्रत्येक अंग को स्पर्श करके आलोकित किया है। भट्ट जी से हिन्दी साहित्य को अभी बहुत आशाएँ थी और जीवन के पश्चिम भाग मे उनकी साहित्य-धारा अजस्र रूप में प्रवाहमान भी थी। परन्तु हिन्दी साहित्य का दुर्भाग्य है कि उनकी प्रतिभा के चरमोत्कर्ष के क्षण में विकराल काल ने हिन्दी जगत् को उनकी सेवाओं से वंचित कर दिया। भट्ट जी के अनेक सहयोगी, संगी, साथी तथा सम्बन्धी अभी विद्यमान है। उनके साहित्य के

आलोचक भी अभी क्रियाशील हैं। इसलिए यह उचित ही है कि भट्ट जी के साहित्य का समुचित मूल्यांकन किया जावे। भट्ट जी युग के सच्चे, जागरूक मनीषी थे। युग के विगत पचास वर्षों की छाया उनके साहित्य में प्रतिफलित हो रही है। साहित्य का वैविध्य, रचना-कौशल, जीवन का दर्शन, मानव का शिव उनको अधिक प्रिय और वरेण्य था। युग की अनन्त झाँकियाँ उर्वरित होकर एक विशेष कौतूहल, जिज्ञासा और नवीन उद्बोधन के साथ चित्रित हो रही हैं। आदिम युग से लेकर आज तक की सांस्कृतिक सरिता भी अजस्र रूप से प्रवाहशीला है और समाज का यथार्थ और आधुनिक युग की राजनीतिक गतिविधियाँ भी उनके साहित्य में सर्वत्र गतिशील हैं। मानव से देवता तक उनके साहित्य मे अपनी-अपनी बात कह रहे हैं। उनकी रचनाओं मे भूख की शिखा, बेचैनी का प्रसव, समाज की विरूपता, दरिद्रता से शापित समाज, मानव के प्रति असीम स्नेह, जीवन की विभीषिकाओं का क्रूर नृत्य सर्वत्र देखकर और उससे प्रभावित होकर मैंने उन्हें अपने शोध का विषय चुना है। परन्तु भट्ट जी के साहित्य की परिधि इतनी विस्तृत तथा व्यापक है कि उसके सही मूल्यांकन के लिए कई शोध प्रबन्ध अपेक्षित होंगे।

अतः महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि भट्ट जी के कृतित्व पर शोध के धरातल पर विचार करने की आवश्यकता क्या है ? यह एक गम्भीर प्रश्न है, जिसका उत्तर स्वयं भट्ट जी की कृतियाँ दे सकेंगी। भट्ट जी की पचास के लगभग कृतियाँ उपलब्ध होती हैं जिनमे नाटक, खण्डकाव्य और कविता-संग्रह हैं। नाटकों में भाव-नाट्य, गीति-नाट्य के साथ ध्वनि रूपक, प्रतीक रूपक और सब प्रकार के एकांकी उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त उपन्यास, निबन्ध और सम्पादित पुस्तकें भी प्राप्त होती हैं। अतः ऐसे महान् साहित्यकार के साहित्य और कृतियों के समुचित मूल्यांकन हेतु शोध के धरातल पर ही विचार करना समीचीन प्रतीत होता है। ऐसे कवि, अप्रतिम नाटककार, सफल उपन्यासकार, निबन्ध-लेखक की समस्त साहित्यिक विधाओं के एक स्थान पर पर्यालोचन के महत्त्व का अनुभव ही उन पर शोध करने के लिए प्रेरणा देता है। इतना ही नहीं, इस महान् साहित्यकार की प्रत्येक साहित्यिक विधा एवं पक्ष पर स्वतन्त्र रूप से शोध अपेक्षित है, तभी साहित्यकार की कृतियों और व्यक्तित्व के साथ समुचित न्याय हो सकेगा। विश्वास है भविष्य इसका महत्त्व समझेगा।

प्रत्येक साहित्यकार का एक युग होता है, और समसामयिक परिस्थितियाँ होती है, जिनके मध्य रहकर वह समय की शृंखलाओं में अपना योगदान देता है। युग का प्रतिनिधि होने के कारण वह कुछ खोता और कुछ पाता हुआ आगे बढ़ता चला जाता है। ये जीवन के गम्भीर अनुभव ही साहित्यकार की अभिव्यक्ति का माध्यम बनते हैं। जिस साहित्यकार ने जितना अधिक गरल पिया होगा और विभीषिकाओं में रहना स्वीकार किया होगा उसकी अभिव्यक्ति उतनी ही पीयूष-वर्षिणी, प्राणवान् और सशक्त होगी।

भट्ट जी को शासन-शक्ति से रहित समाज की रूढ़ि का विरोध और परम्परा के प्रति निष्ठा का कवच अधिक प्रिय और अमोघ प्रतीत हुआ।[1] अतः अब साहित्यकार की युगीन परिस्थितियों पर दृष्टि डाल लेना आवश्यक है। भट्ट जी का समय क्रान्ति, स्वतन्त्रता की चाँह, उद्‌बोधन, भय, अशान्ति, हलचल और मानवीय अन्तर्द्वन्द्व की कहानी से आपूरित था। इसीलिए उनके साहित्य में इन भावों का आधिक्य है।

भट्ट जी की समसामयिक परिस्थितियाँ

उनका अपना रचनाकाल सन् १९२२ ई० से लेकर सन् १९६६ ई० तक का है। उन्होंने इस समय मे पर्याप्त साहित्य लिखा। देश मे राजनीतिक जागृति और स्वतन्त्रता-प्राप्ति की चाह दिन-प्रतिदिन बलवती होती जा रही थी। रौलट एक्ट, जलियाँवाले बाग की घटना, खिलाफत आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन ने वातावरण में अद्‌भुत चेतना अनुप्राणित कर दी थी। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् महात्मा गाँधी के प्रयत्न के कारण राष्ट्रीय भावना गाँव की झोंपड़ियों तक पहुँच गई थी और कांग्रेस भी जन-जन की बन गई थी[2]। सन् १९१९ के असहयोग आन्दोलन ने जो अनुशासन और आत्म-बलिदान की भावना से प्रेरित था[3] और सन् १९३० के सविनय अवज्ञा आन्दोलन ने सारे देश में उत्साह और जोश की लहर उत्पन्न कर दी थी। सत्याग्रहियों ने जेलों को भर दिया—कैदियों को दिन में एक बार बाहर निकाला जाता था, और वह भी शौच स्नानादि के निमित्त।[4] मध्यकालीन बर्बरता का चरम रूप था भगत और उनके साथियों को फाँसी की सजा देना, जिसकी पृष्ठभूमि में मौलिक अधिकार स्वीकार किये गये। करॉची कॉंग्रेस जो एक सर्वव्यापी आनन्दमयी छटा के साथ होने जा रही थी, वास्तव में विषाद और सन्ताप की घनघोर घटा से घिरकर हुई। कॉंग्रेस अधिवेशन के प्रारम्भ होने से पूर्व ही भारत के तीन नौजवान भगतसिंह, राजगुरु व सुखदेव फाँसी के तख्ते पर चढ़ाये

[1] 'दी इण्डियन फिलासफी', जिल्द २, पृ० ६६२।

[2] But even then politics was still far from having been brought to the doors of the common people. That consummation was left to the period following the first war and to the initiative of Mahatma Gandhi.

—Jadu Nath Sarkar : 'India Through the Ages', p. 80.

"The Congress that emerged from that period was under the revolutionary leadership of Mahatma Gandhi. No longer a middle class movement, it set itself to organise the masses, and the revolutionary cry of compromise with imperialism and the programme of nationwide Non-co-operation, gave to the Congress for the first time its claim to speak effectively for the people of India." —K. M. Pannikar : 'A Survey of Indian History', p. 219.

[3] "Non-violence is the law of our species as violence is the law of the brute." --Mahatma Gandhi.

[4] Pattabhi Sitarammiya : 'A History of Congress', p. 325.

जा चुके थे ।[५]

राष्ट्रीय परिस्थिति

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक यूरोप को अपनी मान्यताओं में जितनी आस्था थी, उससे कम भारत को नहीं थी ।[६] लेकिन प्रथम विश्वयुद्ध से यह आस्था हिल गयी ।[७] यूरोप का स्वर्गीय स्वप्न चूर-चूर हो गया और पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्विरोधों के कारण यूरोप के सांस्कृतिक जीवन का संतुलन नष्ट हो गया ।[८] यदि सन् १९१७ ई० में रूस में बोलशेविक शासन का आरम्भ नहीं होता, तो प्रथम विश्वयुद्ध की निराशा का विलीनीकरण कहाँ होता ? द्वितीय महायुद्ध ने डूबते हुए रूस को अवश्य बचा लिया । जिन विषम परिस्थितियों में यूरोप के प्रथम विश्वयुद्ध का आरम्भ हुआ उनके कारण यूरोप की राजनीति में उदारतावाद का स्थान अधिनायकतावादी सिद्धान्तों ने ग्रहण किया ।[९] विश्व के अनेक देश यूरोपीय राष्ट्रों के उपनिवेश थे और वहाँ स्वतन्त्रता-प्राप्ति का आन्दोलन आरम्भ हो चुका था । भारत उनमे से एक देश था । उपनिवेशों में शासकों के प्रति राजभक्ति की भावना भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थी । भारतेन्दुयुगीन लेखकों ने ही नहीं, श्री मैथिलीशरण गुप्त तक ने 'भारत भारती' में अंग्रेजी सुशासन का गुणगान किया है ।[१०] लेकिन इस

[५] *Ibid.*, p. 364.

[६] "शुरू-शुरू में जिन भारतवासियों ने अंग्रेजी शिक्षा पायी, वे प्रायः समाज-सुधार और शिक्षा-प्रचार के बड़े पक्षपाती थे । अंग्रेजी राज्य के प्रति उन्हें अनुरक्ति थी और इंगलैंड की शासन-पद्धति के वे प्रशंसक थे । वे समझते थे कि भारत में समाज-सुधार और ज्ञान-प्रसार अंग्रेजी राज्य के द्वारा ही हो सकता है ।"
—जयचन्द्र विद्यालंकार : 'इतिहास प्रवेश', पृष्ठ ५४१ ।

[७] "The war gave a terrible shaking to everything and everybody. It upset the old world completely, and ever since then our poor world is trying painfully to stand up again, without much success. It shook the whole system of ideas on which we had grown up and made us begin to doubt the very basis of modern society and civilization.
—J. L. Nehru : 'Glimpses of World History', p. 685.

[८] पूँजीवादी सभ्यता को प्रेमचन्द ने महाजनी सभ्यता कहा है जो मुनाफाखोरी पर जीती है । इस सम्बन्ध में दिनकर जी की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

"अपहरण-शोषण वही, कुत्सित वही अभियान ।
खोजना चढ़ दूसरों के भस्म पर उत्थान ।।"
—'कुरुक्षेत्र'

[९] "Liberalism almost disappeared and nineteenth century democracy fell into disfavour. Dictators appeared on the scene."
—J. L. Nehru : 'Glimpses of World History', p. 791.

[१०] (क) 'डिसलायल' हिन्दुन कहत कहाँ मूढ़ ते लोग ।
दृग भर निरखहिं आज ते राजभक्ति संजोग ।।
—'भारतेन्दु ग्रन्थावली', दूसरा भाग, पृष्ठ ७६५ ।

(ख) "राजभक्त भारत सरिस, और ठौर कहुँ नाहिं ।।"
—'आर्याभिनन्दन'—प्रेमघन, पृ० ६ ।

राज्य-भक्ति का पुरस्कार भारतीयों को जलियाँवाला बाग के गोली काण्ड के रूप में मिला जहाँ जनरल डायर ने निरीह भारतीय जनता को गोली से भुनवा दिया।

असहयोग आन्दोलन चौरी-चौरा काण्ड के परिणामस्वरूप वापिस ले लिया गया। इसके पश्चात् पं० मोतीलाल नेहरू ने पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने हेतु 'स्वराज्य पार्टी' का निर्माण किया, जिसकी बरेली शाखा के मन्त्री स्वय भट्ट जी थे। इसी समय देश में 'साइमन कमीशन' आया। इस कमीशन का सर्वत्र बहिष्कार किया गया। लाला लाजपतराय के 'कमीशन वापिस जाओ' के नारे लगाते हुए भारी चोट आयी और सिर फट गया, अन्त मे उनकी मृत्यु भी हो गयी। इस प्रकार लाल-बाल-पाल की त्रयी विलीन हो गयी।

गाँधी-इर्विन समझौता न होने के परिणामस्वरूप गाँधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन की घोषणा की और स्वयं नमक का कानून तोड़कर गिरफ्तार भी हो गये। इसी प्रकार दिन-प्रतिदिन स्वातन्त्र्य हेतु राष्ट्रीय आन्दोलन जोर पकड़ता जा रहा था। सुभाष ने तो यहाँ तक कह दिया था—"Give me blood and I promise you freedom ?"[११]

अन्त में गाँधी जी ने क्रिप्स की धोखेबाजी, छल-कपट, विश्वासघात और दुहरी चालों से तंग आकर 'भारत छोड़ो' आन्दोलन की घोषणा की। यह आन्दोलन स्वतन्त्रता की लड़ाई में सबसे बड़ा आन्दोलन था। अंग्रेजों ने इसे दमन और हिंसा से दबाना चाहा पर विफल रहे। अन्त में अंग्रेजों की ओर से वेवल योजना प्रस्तावित की गयी, पर भारतीय नेताओं ने उसे अस्वीकार कर दिया। तत्पश्चात् लार्ड माउण्ट-बेटन योजना को घोषित किया गया जिसके परिणामस्वरूप भारत को द्विराष्ट्र-सिद्धान्त के आधार पर हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में विभक्त कर दिया गया। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भी अनेक राजनीतिक समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं जो आज भी भय और शंका का विषय बनी हुई है।

सामाजिक परिस्थितियाँ

जहाँ तक तत्कालीन सामाजिक स्थिति का प्रश्न है इसमें भी स्पष्टत: दो विभिन्न धारायें बह रही थीं—एक पूँजीपति और सामन्ती लोगों की, दूसरी शोषित और निर्धन लोगों की। इस विषमता ने भी समाज में एक बेचैनी-सी उत्पन्न कर रखी

(ग) सचमुच ब्रिटिश साम्राज्य ने हमको बहुत कुछ है दिया,
विज्ञान का वैभव दिखाया, समय से परिचित किया।
उससे हमारी कीर्ति का भी हो रहा उद्धार है,
बहु पूर्व चिह्नों का हुआ वा हो रहा उद्धार है॥
—'भारत भारती', पृष्ठ ८७।

(घ) जयचन्द्र विद्यालंकार : 'इतिहास प्रवेश', पृष्ठ ५४१।

[११] Subhas Bose · 'The Indian Struggle', p. 144.

थी । मध्यवर्गीय जीवन भी कोई खास सुखी नहीं था । बस, श्रम करके जीवनयापन करना उनके लिए पर्याप्त था । सामान्य जनता को शोषण और धनाभाव ही मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की ओर आकर्षित करने लगा था और जीवन की अतृप्त लालसाएँ फ्रायड के स्वप्नवाद और कल्पनावाद की ओर आकर्षित करने लगी थीं । फ्रायड ने काम-प्रवृत्ति (Eros) को यौन भावना की दमित मनोग्रन्थि और कला को उनकी असम्बद्ध प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति में सीमित नहीं रखा था ।[१२]

इसके साथ-साथ सामाजिक परम्परा-निर्वाह में भी दो स्पष्ट वर्ग दृष्टिगोचर होते है । एक वर्ग युग के बढते हुए चरणों के साथ अपने कदम बढ़ाता जा रहा था तो दूसरा वर्ग रूढ़ि, दकियानूसीपन, दुराग्रह, मूढ़ताओं, बाह्याडम्बरों, कुप्रथाओं और बौद्धिक परतन्त्रता के जाल मे फँसा हुआ था ।

इसी प्रकार एक वर्ग आजादी की लड़ाई में सब कुछ निछावर कर रहा था तो दूसरा वर्ग अंग्रेजों से प्रदत्त राय साहब, राय बहादुरी आदि ऊँचे-ऊँचे सरकारी पदों के उपभोग पर उतारू था । सामान्य जन-जीवन अंग्रेजों के आतंक और निरंकुश शासन मे आतंकित-सा था जिससे चारों ओर निराशा, घुटन और अवसाद की काली छाया प्रतिबिम्बित थी ।

समाज में इसी प्रकार की और भी अनेक समस्याएँ थीं नारी समस्या, शिक्षा की समस्या, जन-जीवन में बढ़ती हुई उच्छृंखलता, पश्चिम का अन्धानुकरण, अंग्रेजी भाषा का मोह, वैयक्तिक ईर्ष्या, द्वेष और वैमनस्य, स्वार्थ की प्रमुखता, भोग और अर्थ की बलवती लालसा के साथ-साथ पूर्व की विस्मृति ने मानव जीवन में एक नवीन अध्याय का प्रारम्भ कर दिया था जो भावना आज भी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है ।

इनके अतिरिक्त समाज में साम्प्रदायिकता, छुआछूत, छोटे-बड़े होने का भाव, धर्मान्धता एवं संकीर्णता ने भी अपनी जड़ जमा रखी थी । इस प्रकार समाज विभिन्न समस्याओं के बीच में डूबता-उतराता हुआ आगे बढ़ रहा था । संक्षेप में, समाज दो परस्पर विरोधी धाराओं का संगम था ।

अभावों ने सामाजिक जीवन में एक अशान्ति, अन्तर्द्वन्द्व, विद्रोह, प्रतिशोध और प्रतिक्रिया की भावना उत्पन्न कर रखी थी, जिनके परिणामस्वरूप मानव जीवन में उत्पात, हत्या और छल, कपट आदि देखने को मिलते थे । यह भट्ट जी के युग की सामाजिक दशा थी जो विषमता से ओत-प्रोत थी ।

[१२] "I have combined the instincts of self-preservation and for the preservation of the species under the concept of Eros and have contrasted with it an instinct of death or destruction which works in silence...The picture which life presents to us is the result of the working of Eros and the death instinct together and against each other."

—S. Freud : 'An Autobiographical Study', p. 105.

सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

व्यक्ति-सापेक्ष और व्यक्ति-निरेपेक्ष ईश्वर में जल और हिम का अन्तर बताकर धार्मिक और सांस्कृतिक एकता की भावना का उद्रेक किया गया[13]। इसके पश्चात् भारतीय संस्कृति का तत्त्व-मन्थन वैयक्तिक क्रान्ति के रूप में देशव्यापी हो उठा। लोकमान्य तिलक ने सांस्कृतिक पुनर्जागरण के आधार पर राष्ट्रीयता का निर्माण किया[14]।

इसी समय भारत में मिल और स्पेन्सर के लोकसत्ता तथा सामाजिक समता विषयक विचार फैले[15]। अरविन्द घोष ने इस राष्ट्रीयता को आध्यात्मिक क्रान्तिकारी राष्ट्रवाद का रूप दिया[16]।

मानवतावादी आदर्श ने निर्धन और शोषित समाज के प्रति संवेदना उत्पन्न की, नारी के प्रति उच्च भावना प्रदान की और मानवता की सेवा-वृत्ति को प्रमुखता दी[17]।

आधुनिक संस्कृति की जागृति धार्मिक और सामाजिक सुधारवादी आन्दोलनों के रूप में प्रकट हुई थी और वह राजनीतिक सुधार की मुखापेक्षी भी थी[18]। उस समय भारतीय सांस्कृतिक गरिमा का स्रोत भी अजस्र धारा से प्रवाहित हो रहा था। संगीत-चित्रकला में भी नवीनता का प्रवेश हो रहा था। विज्ञान का दुन्दुभि-घोष सर्वत्र सुनाई दे रहा था। सांस्कृतिक पुनर्जागरण बहुत पहले हो चुका था। पर इस समय भी आर्य समाज, ईसाई मिशनरियों के धर्म-प्रचार और ब्रह्म समाज के स्वर सुनाई पड़ते थे। वास्तुकला और स्थापत्यकला ने तो इस युग मे एकदम नवीन मोड़ ही ले लिया था। जितना वैविध्य, नवीनता, सादगी इन्हें इस समय में उपलब्ध हुई है, इतनी कदाचित् ही पहले मिली हो। विज्ञान और स्थापत्य कला के क्षेत्र में यह युग महान् और गौरवशाली हो गया है। आज विज्ञान के चमत्कारों के कारण मानव जीवन यन्त्रवत्-सा होता जा रहा है। पूर्व और पश्चिम के मिलन से जीवन में नवीन उद्बोधन, चेतना, स्फूर्ति और स्पन्दन उत्पन्न हुआ है पर साथ ही छल, कपट और द्वेष भी मानव जीवन में प्रविष्ट हुआ है। सांस्कृतिक क्षेत्र में यह युग संक्रान्ति काल ही कहा जायेगा। जहाँ हमें पश्चिम से बहुत कुछ प्राप्त हुआ है, वहाँ पूर्व की विस्मृति से हमने बहुत कुछ खो भी दिया है। आज हम अपनी प्राचीन परम्परा, गौरवशाली अतीत, जीवन का वास्तविक दर्शन और उदात्त दृष्टिकोण से प्रायः दूर

[13] *Ibid.*, p. 689.

[14] आचार्य जावडेकर : 'आधुनिक भारत', पृ० ६८।

[15] वही।

[16] वही, पृ० १२८, १२९ और १३०।

[17] डा० रवीन्द्र सहाय : 'हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव', पृ० १००।

[18] Dr. A. R. Desai 'Social Background of Indian Nationalism', p. 251.

हटते जा रहे है और पश्चिम की उपासना में पूर्णतया रत होते जा रहे हैं । इस अनुकरण और विस्मृति ने जीवन में आश्चर्यमयी स्थिति उत्पन्न कर दी है । इससे एक ओर समाज को गति मिली है तो दूसरी ओर विगति और अनेक धार्मिक समस्याओं और मनोविकारों को जन्म भी मिला है ।

साहित्यिक परिस्थिति

साहित्यिक जगत् में भारतेन्दु युग देशभक्ति के स्वर, धार्मिक सहिष्णुता, सामाजिक सुधारो की वीणा और आर्थिक आत्म-निर्भरता का सन्देश देकर अपने समापन पर था और द्विवेदी-कालीन साहित्यकार अपने साहित्य-सृजन और अन्तस् की अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए आतुर था । इस काल में ब्रजभाषा के स्थान पर हिन्दी खड़ी बोली परिष्कृत हो काव्य की भाषा बन गई थी । इस काल में देश-भक्ति और राष्ट्रीय भावों से भरी कविता बड़ी भारी मात्रा में लिखी गई । प्रकृति के विविध रूपों के चित्रात्मक और संवेदनशील अभिव्यंजन के साथ-साथ काव्य में इतिवृत्तात्मकता बलवती हो गई थी । इस इतिवृत्तात्मकता से ऊबकर ही कवि की चेतना अन्तर्मुखी हो गई । यहाँ उसने अनेक स्वप्निल चित्र अपनी कल्पना के आश्रय से चित्रित किए है ।

इस प्रकार आधुनिक हिन्दी साहित्य में तीन मोड़ मिलते है । भारतेन्दु युग मे साहित्य को व्यापकत्व मिला, द्विवेदी युग में परिष्कृति और इतिवृत्तात्मकता मिली और युग के अन्तिम चरण में आकर अन्तर्मुखी चेतना को अभिव्यक्ति, मुक्तक गीत, मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को राग और सम्मान, नवीन प्रयोगों का सम्मोहन और बलवती आकांक्षा, अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी चेतना के संक्रान्ति काल के समय जीवन को विस्मृत और आनन्द-विभोर कर देने वाली वैयक्तिक कविता के साथ-साथ प्रकृति के विविध रूपों के चित्र भी उपलब्ध हुए है । वैयक्तिक प्रणयानुभूति और अज्ञात सत्ता के प्रति जिज्ञासा और लालसा के भाव भी पाठक को कुछ अनमना और भाव-विह्वल-सा बना देते हैं ।

"ऐसी कविताएँ जीवन की अल्पता और अनित्यता को व्यक्त करती हैं तथा इन्द्रिय-सुख-सिद्धान्त का समर्थन करती हैं ।"[१६]

"सन् १९३८ में 'रूपाभ' में कवियों को कल्पना-लोक से उतर कर जीवन की वास्तविकता और कठोरता से संघर्ष करने तथा उसे ही कविता का विषय बनाने का आदेश दिया ।"[२०]

[१६] "Saki and Sura Sundari express the transitoriness and brevity of life and advocate the way of an epicure." —'Modern Hindi Literature', p. 69

[२०] "इस युग की आवश्यकता ने जैसा उग्र रूप धारण कर लिया है, उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गए हैं । अतएव इस युग की कविता सपनों में नहीं पल सकती । उसकी जड़ों को अपनी पोषण सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है ।" 'रूपाभ', पंत का सम्पादकीय, वर्ष १, अंक १, जुलाई १९३८ ।

गोर्की ने कहा है, "मेरे विचार से मनुष्य से परे कोई भी शक्ति नहीं है, मानव सब वस्तुओं एवं विचारों का स्वयं स्रष्टा है, वह चमत्कारकर्ता है और प्रकृति की समस्त शक्तियों का भावी स्वामी है।"[२१]

"प्रयोगशीलता का आडम्बर तो केवल समाजद्रोही भावनाओं की जीवन के प्रति घोर अनास्था तथा कुण्ठा को एक दुरूह संकेतात्मक भाषा, अस्वाभाविक अलंकार योजना और अहंवादी वचन-भंगिमा में छिपाने का उपक्रम मात्र है।"[२२]

"गद्य-काव्य में भावावेग के कारण एक प्रकार का लययुक्त झकार होता है जो सहृदय पाठक के चित्त को भाव ग्रहण के अनुकूल बनाता है।"[२३]

ये थीं भट्ट जी के समय की काव्य प्रवृत्तियाँ, जिनका रूप और सौन्दर्य उनके काव्य में देखने को मिलता है।

युग के यही तत्कालीन भाव उनके नाटक, उपन्यास और कथा साहित्य में भी ध्वनित हो रहे है, क्योंकि साहित्यकार युग की कृति होता है और दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। साहित्यकार यदि साधन है तो युग साध्य है। युग की समस्त परिस्थितियाँ और चिन्तन धारायें उसके मानस को प्रभावित करती है और उसकी चेतना को उद्‌बुद्ध करके उससे अपना निकट का सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। साहित्यकार और युग का यही समन्वय, समीकरण, एकीकरण उसकी अभिव्यक्ति में प्रस्फुटित होता है। इस विषय में भट्ट जी ने स्वयं लिखा है—"उसका साहित्य जीवन की अजस्र सरिता है जो मानव जाति के साथ-साथ चलती है, भौतिक संघर्षों से उलझती, प्राकृतिक परिस्थितियों से टकराकर विजय प्राप्त करती और अँधेरी गुफाओं में विवेक का प्रकाश भरती रहती है। साहित्य यदि युग धाराओं को प्रतिबिम्बित करता है तो वह उन शाश्वत सत्यों की व्याख्या भी करता चलता है, जो युग-युगान्त से मानव को आलोकित करते रहते है।"[२४] इसके साथ-साथ साहित्य में उदात्त स्वरों की अभिव्यक्ति भट्ट जी अपने लेखन-काल के प्रारम्भ से ही करने लगे थे। सन् १९२२ में वे लगभग चौबीस वर्ष के थे, अर्थात् यौवन में पदार्पण कर चुके थे। उनके रक्त में ऊष्मा थी और विचारों में क्रान्ति थी, समय भी क्रान्ति का था, परिस्थितियाँ साहित्यकार के स्वभाव के अनुकूल पड़ीं। सन् १९६६ मे उनकी आयु ६८ वर्ष की थी, शरीर में वार्धक्य के चिह्न अवश्य अभिव्यक्त होते थे, परन्तु उनके विचारो में तारुण्य था, समाज की पीड़ा ने उनके हृदय को अवश्य दुर्बल कर दिया था, और सम्भवतः इसीलिए वे हृदय रोग के शिकार भी बने। भट्ट जी एक क्रान्तिदर्शी, प्रतिभाशाली प्रतिनिधि थे। समाज की पीड़ा और आक्रोश, उद्‌बोधनमयी क्रिया-

[२१] For me there are no ideas beyond man; for me man is the creator of all things and all ideas...." —'Literature and Life', p. 56.

[२२] 'काव्यधारा', पृष्ठ ४५।

[२३] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : 'हिन्दी साहित्य', प्रथम सस्करण, पृष्ठ ४९।

[२४] 'साहित्य के स्वर'—साहित्यकार की समस्या, पृष्ठ ३।

शीलता और दासता-बन्धन-जन्य सन्ताप जहां एक और उनके साहित्य के बाह्य पक्ष का निर्माण करने वाले हैं, वहाँ उनके काव्य का अन्त: पक्ष भारतीय संस्कृति की स्वस्थ परम्परा, तथा भारतीय समाज के लिए शाश्वत सन्देश की मुखर अभिव्यक्ति करने वाला है। उनका संस्कारजन्य दार्शनिक दृष्टिकोण उनके साहित्य-सरोवर को और भी गहरा कर देता है। उनकी लेखनी चवालीस वर्षों तक कुछ थोड़े बहुत व्यवधान के साथ अनवरत रूप से चलती रही। यही कारण है कि उनका साहित्य इतना विशाल और समृद्ध है कि एक मात्र शोध-प्रबन्ध की परिधि में उसको समेटना नितान्त असम्भव है। सुविधा के लिए हम भट्ट जी के लेखन काल को चार भागों में विभक्त कर सकते हैं :—

१. भट्ट जी के पूर्व के बाईस वर्ष जिन्होंने भट्ट जी की साहित्यिक प्रतिभा की अभिव्यक्ति मे पृष्ठभूमि का कार्य किया।

२. सन् १९२२ से १९३५ ई० तक के युग में द्विवेदीकालीन इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया के स्वरूप साहित्य जगत् में छायावादी प्रवृत्तियाँ पनपी।

३. सन् १९३६ से १९४७ तक जिसमें छायावादी प्रवाह में कुछ मन्दता आई तथा पहले प्रगतिवादी और प्रयोगवादी धाराओं ने जोर पकड़ा। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में सन् १९४७ एक नींव का पत्थर है।

४. सन् १९४७ से १९६६ तक के युग में हिन्दी साहित्य की अनेक विधाओं, प्रवृत्तियों और धाराओं का उन्मेष हुआ। स्वतन्त्रता से पूर्व देखे गये स्वप्नों का अनेक रूपों में प्रतिफलन हुआ। इन बीस वर्षों में भट्ट जी ने जिस साहित्य का निर्माण किया, वह बड़ा महत्त्वपूर्ण है। अनेक साहित्यिक वादों और विधाओं के झंझावात-झकोरों में भट्ट जी अडिग रहे और उन्होंने एक प्रकार से दीप स्तम्भ का भी कार्य किया।

छायावादी काव्य में अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता, पदलालित्य और वर्ण्य विषयों के चुनाव में सुकुमार सुरुचि का समावेश तो था परन्तु अभिव्यक्ति में लोकग्राह्यता का अभाव था। सन् १९३५ के आस-पास की प्रकाशित नवयुवक कवियों की रचनाओं में ईषत् भिन्न प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। इन रचनाओं में सामाजिकता का अधिक आग्रह था और दूसरी ओर अभिव्यक्ति की लोकग्राह्यता का भी। सम्भवत: यह प्रगतिवादी काव्य-धारा थी जो मार्क्सवादी विचारधारा की प्रबल पोषिका थी। सन् १९३६ में लखनऊ में प्रेमचन्द जी के सभापतित्व में प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन हुआ। प्रेमचन्द प्रगतिवादिता नहीं प्रगतिशीलता के समर्थक थे जिसका मूलाधार मानवतावादी विचारधारा थी।[२५]

[२५] 'प्रेमचन्द : कुछ विचार' में संगृहीत अध्यक्ष पद से दिया गया भाषण। प्रेमचन्द के युग के बाद पुन: आचार्य नरेन्द्रदेव ने उनकी मान्यता में अपनी आस्था प्रकट की—"जीवन के केन्द्र में मानव को प्रतिष्ठित करके चलने वाला साहित्य प्रगतिशील साहित्य है।"—'जनवाणी', अक्टूबर १९४८।

प्रयोगवादी काव्य-धारा के अन्तर्गत नित नूतन प्रयोग की चाह उमड़ी और काव्य को नवीन परिवेश प्राप्त हुआ।[२६] भट्ट जी के काव्य में उपर्युक्त सभी प्रवृत्तियाँ प्रतिफलित हो रही हैं। हाँ, इतना सत्य है कि वे इनसे पूर्णतः संपृक्त नहीं हो पाए। इतने पर भी वे युग का चित्र अंकित करने में पूर्ण सफल रहे।

भट्ट जी ने पूर्व बाईस वर्षों में राजनीतिक और राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिविधियाँ देखी थीं और समयानुसार भाग भी लिया था। बंगाल विभाजन की चर्चा उन्होंने अपने शैशव में ही अपने पिता जी के बंगाली मित्र से खूब सुन रखी थी, जलियाँवाले बाग की घटना स्वयं अपनी आँखों से देखी थी, असहयोग आन्दोलन में स्वयं भी भाग लिया और पढ़ाई-लिखाई को तिलांजलि देकर बनारस से बरेली में आकर तिलक महाविद्यालय में अध्यापक हो गए थे। इस युग का सम्पूर्ण चित्र उनके हृदय में अंकित हो गया था। उनके हृदय का चित्र ही उनके प्रारम्भिक साहित्य में देखने को मिलता है। उन्होंने 'चितरंजनदास' नाटक तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रेरित होकर ही लिखा था। अंग्रेजी शासन की निरंकुशता से जो चारों ओर आक्रोश, दासता और विवशता की घुटन, अवसाद और निराशा का स्वर सुनाई पड़ता था, उसकी ध्वनि भट्ट जी के प्रारम्भिक साहित्य में प्लावित हो रही है। भट्ट जी ने स्वयं लिखा है—"मेरी कच्ची बुद्धि को वर्तमान के लिए कोई समाधान स्पष्ट नहीं मिला। 'राका', 'विसर्जन' की कविताओं में मैं समझता हूँ उसी विवशता और घुटन का प्रत्यक्ष प्रभाव है। निराशा, घोर निराशा के जीवन से पीड़ित समाज का जीवन भी डरा और सहमा हुआ था।"[२७]

तत्कालीन कविता में घुटन की चर्चा और उद्बोधन के भाव भी थे। पर उद्बोधन भय और घुटन से आक्रान्त था। भट्ट जी के साहित्य मे सन् १९२२ से सन् १९३५ तक के साहित्य में द्विवेदीकालीन इतिवृत्तात्मकता और राष्ट्रीय एवं देशभक्ति की कविताओं का स्वर 'तक्षशिला' खण्डकाव्य में स्पष्ट है :

> **"पिछले युग में इसी देश ने**
> **देखे हैं आक्रमण अनन्त**
> **बाह्य शत्रुओं की सेना से**
> **फैला जब जन-मन आतंक॥"[२८]**

इस पर अमृतराय का कथन द्रष्टव्य है—"ऐतिहासिक भौतिकवादी विचार-पद्धतियों को छोड़ने पर ही सारे घपले शुरू हो जाते है। इस लेख को ही इस बात के उदाहरण के रूप में पेश किया जा सकता है।"—'नयी समीक्षा', पृ० २९४।

[२६] (क) फ्रान्स सदा युवती का जीवन आज तलक है जीता आया।
एक शराबी के शरीर सा फ्रास बचा है,
जिसकी हर बातों की आदत मात्र रह गई।
—नरेश मेहता : 'दूसरा सप्तक', पृष्ठ १४०।

(ख) Alexis Larrel : 'Man the Unknown Relations on Life,' p. 28.

[२७] 'मुझ में जो शेष है'—आत्मविश्लेषण—पृ० ख।

[२८] 'तक्षशिला', प्रथम स्तर, पृ० ७।

तक्षशिला में कवि पर गुप्त जी की 'भारत भारती' का प्रभाव सर्वत्र प्रतिफलित हो रहा है।

छायावादी कविता के स्वर 'विसर्जन' और 'मानसी' में प्रस्फुटित हो रहे हैं :

"आज सब शृंगार उनके दीप की लौ से मिले हैं,
और मेरे जागरण सब दीपमाला से जले हैं।"[२९]

'मधुश्री' कविता में भट्ट जी कुछ और कह रहे हैं :

"आज बसन्ती रंग हुआ है
मेरा, मेरे अरमानों का
मन्द-मन्द मकरन्द ढाल पीते
कुसुमों की मुस्कानों का ॥"[३०]

उनके सन् १९३६ से १९४७ तक के काल में पहले प्रगतिवादी और फिर प्रयोगवादी कविता के भी दर्शन होते हैं। 'यथार्थ और कल्पना' काव्य-संग्रह में प्रगतिवादी कविताएँ संगृहीत हैं :

"मैं देख रहा हूँ परिवर्तन, जाने परिवर्तन क्या होगा ?
जग प्रतिपल बढ़ता जाता है,
नवजीवन गढ़ता जाता है,
शूलों की तीखी नोकों पर
फूलों को जड़ता जाता है।
पर फूल बिखरते मुरझा कर मुरझाया मधुवन क्या होगा ?"[३१]

इसके अतिरिक्त कवि समय की गति के साथ-साथ बढ़ने के लिए भी मानव से अनुरोध कर रहा है :

"समय के सभी साथ जीवन बदलते,
समय को बदलता हुआ तू चला चल।"[३२]

इन कविताओं को देखने से ज्ञात होता है जैसे युग-युगान्त उसकी दृष्टि में जागरूक हो उठे हों। मनुष्य की निर्बलता के प्रति उसकी स्वाभाविक दया जैसे प्रत्येक कविता का लक्ष्य हो। इन कविताओं में भट्ट जी के स्वर सिद्ध के न होकर साधक के हैं और उपास्य के न होकर उपासक के हैं। भट्ट जी ने इस विषय में स्वयं लिखा है :

"इधर प्रगतिवादी देशों में आर्थिक समस्याओं के साथ अधिनायकवाद ने जो रूप ग्रहण किया है उसने मनुष्य की बुद्धि पर जो ताला लगा दिया है उसे देखते

२९ 'विसर्जन', पृष्ठ १३।
३० 'विसर्जन'—मधुश्री, पृ० १५।
३१ 'यथार्थ और कल्पना', कविता ग्यारह, पृ० २०।
३२ वही, कविता तेरह, पृ० २४।

हुए वह दूसरा नात्सीवाद ज्ञात होता है, सर्वहारा का अधिनायकत्व के रूप को समझने के लिए आस्बर्न की 'मार्क्स एण्ड फ्रायड' से ज्ञात होता है कि हम जिस रोग की बीमारी का इलाज कर रहे हैं उससे अनेक प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रोग उत्पन्न हो गए हैं।"[33]

भट्ट जी ने प्रयोगवादी काव्य का भी सृजन किया है। इस प्रकार की कविताएँ 'मुझ में जो शेष है' नामक कविता-सग्रह में संगृहीत हैं।

किन्तु—

"आज लगता है कहीं उड़ गए हैं सब
धुआँ ही धुआँ शेष
कहीं कुछ नहीं विशेष
और मैं वैसा ही खाली हूँ
जैसा सुबह चला था।"[34]

एक और द्रष्टव्य है :

"साँसों के परिश्रम से उठा
थकावट का पानी भी
बैठ गया बैठ गया।
मृग की मरीचिका में—
जल है जल—छाया क्या?"[35]

इस प्रकार भट्ट जी की काव्य-सरिता में प्रयोगवादी कविता रसमयी होकर अजस्र धारा के साथ प्रवाहमान है। भट्ट जी युग की गति के साथ अपने चरण बढ़ाने चले गये हैं। पर ठहरे कहीं नहीं हैं। इस सम्बन्ध में भट्ट जी ने स्वयं लिखा है :

"कवि-जीवन के वर्षों की तीस-बत्तीस सीढ़ियाँ पार करते हुए हिन्दी कविता के मैंने कई युग देखे हैं।"[36]

सन् १९४७ से १९६६ तक भट्ट जी ने साहित्य की अनेक विधाओं पर लिखा है। यह समय उनके चरमोत्कर्ष का समय था। उनके साहित्य में अत्यधिक प्रोज्ज्वलता आ गयी थी। इस बीच उन्होंने उपन्यास, निबन्ध, एकांकी, ध्वनि रूपक, गीतिनाट्य, प्रतीक रूपक आदि साहित्य के वैविध्य की रचना बड़े कौशल के साथ सम्पादित की है।

भट्ट जी के साहित्य में तत्कालीन समाज का यथार्थमय चित्रण भरा पड़ा है। रूढ़ि, दुराग्रह, मूढ़ताओं, बाह्याडम्बरों, पोषित प्रान्त धारणाओं, पश्चिम के अन्धानुकरण, मार्क्स के भोगवाद और फ्रायड के सेक्स, छुआछूत, सामन्तवाद, पूँजीवाद,

[33] 'साहित्य का स्वर'—हमारा साहित्य किधर, पृ० ३१।
[34] 'मुझ में जो शेष है'—अनुभूति, पृ० २०।
[35] वही—कहना भी आया क्या?, पृ० २२।
[36] 'यथार्थ और कल्पना', पृ० क।

जन-जीवन के अन्तर्द्वन्द्व के कुहराम के स्वर सर्वत्र सुनाई पड़ते हैं। मानो उनके युग के समाज की समस्त धारायें उनके साहित्य में प्रतिफलित हो रही हैं। इस विषय में भट्ट जी ने स्वयं लिखा है—"साहित्य जगत् में प्रवेश करने पर सबसे पहला मेरा काम यह हुआ कि उस भीति को, उस मूढ ग्राह को दूर कर दूँ। रूढ़ि-दुराग्रह की कुहलिका में पोषित भ्रान्त धारणाओं, परम्परा के नाम से मस्तिष्क को विकृत करने वाली चेतना के तन्तुओं में बद्धमूल भ्रान्ति को मैं तोड़ दूँ। कदाचित् चिन्तन, स्वाध्याय और स्वयं प्रस्फुटित होने वाले विवेक का मैं आदर न करने पर उसी गण्डलिका प्रवाह मे बहता जो एक साहित्यिक के लिए कुम्भीपाक होता।"[३७] भट्ट जी ने अपने यथार्थवाद के अनुयायी होने के विषय में भी लिखा है—"कदाचित् इन्हीं कारणों से मै साहित्य में यथार्थवाद का अनुयायी बना हूँ। मेरे अध्ययन में आँख खोलकर प्राप्त किये गये जीवन के इन अनुभवों ने विशेष योग दिया है। कदाचित् इसीलिए मैं स्वभाव से दार्शनिक और अनुभव से प्रगति-प्रेमी बन सका हूँ, जिसमें यथार्थता ने मुझको साहित्यिक बनने के लिए बाध्य किया है।"[३८] इस प्रकार भट्ट जी के साहित्य में समाज का यथार्थ यथावत् बोल रहा है।

भट्ट जी के सामाजिक नाटकों—'कमला', 'पार्वती', 'अन्तहीन अन्त', 'नया समाज'—में युग की अनेक समस्याओं, छुआछूत, सामन्ती वैभव और गाँधीवाद के दर्शन सर्वत्र होते हैं। भट्ट जी ने स्वयं लिखा है—"हमारा जीवन समस्यामूलक है। नाटक उन समस्याओं का समाधान उपस्थित कर सकता है। यह एक बहुत बड़े प्रचार का साधन है। बीज में फल की तरह कुछ नाटक का एक उद्देश्य होना चाहिए। समस्या नाटकों के लिए तो उद्देश्य का होना परमावश्यक है। उद्देश्य से मेरा तात्पर्य जीवन देने के लिए वाली भावना से है।"[३९]

एकांकी नाटकों में भी भट्ट जी ने पर्दे के पीछे क्या हो रहा है, इसका ज्यों का त्यों 'पर्दे के पीछे' नामक एकांकी में चित्र खींच दिया है। 'मन्दिर के द्वार' नामक एकांकी में छूआछूत की समस्या का प्रतिफलन अपने समाधान के साथ हो रहा है और 'सत्य का मन्दिर' नामक एकांकी में धर्म का सच्चा रूप सुलभता से दृष्टिगोचर हो जाता है। इसी प्रकार लेखक ने अपने शिष्ट सामाजिक व्यंग्यात्मक प्रहसनो द्वारा भी समाज की दुर्बोधता के चित्र खींचे हैं। संक्षेप में उनके एकांकियों में युग की प्रत्येक समस्या, सब वर्गों के प्राणी, तत्कालीन धर्म-अर्थ-काम और मानसिक प्रवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण स्वच्छन्द रूप में मुखरित हो रहा है।

भट्ट जी के 'जवानी' और 'जीवन' प्रतीक-रूपकों में जीवन और जगत् का रहस्य दर्शन से अभिभूत होकर अभिव्यक्त हुआ है। युगीन जन-जीवन का दुःख, वेदना,

[३७] 'स्मृति चिह्न'—फुटकर लेख।

[३८] वही।

[३९] 'समस्या का अन्त', प्राक्कथन, पृ० ३।

बाह्य संघर्ष के साथ-साथ अन्तर्द्वन्द्व, करुण परिस्थितियाँ, मानव के प्रति सहजनिष्ठा, जीवन के प्रति सच्चा अनुराग उनके साहित्य में सर्वत्र प्रतिफलित हो रहा है। मानव के हित और मंगल की कामना से भी लेखक सर्वत्र लालायित दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार भट्ट जी ने तत्कालीन सामाजिक समस्याओं के निरूपण के साथ-साथ, उनका समाधान खोजते हुए उनसे अपना निकट का सम्बन्ध भी स्थापित कर लिया है।

युग की राजनीतिक गतिविधियाँ भी उनके साहित्य में किसी न किसी रूप में बोल रही है, पर राजनीतिक 'क्रान्तिकारी' नाटक में तत्कालीन क्रान्तिकारी दल का मार्मिक चित्र खींचा है यद्यपि उसके पात्र आजाद, भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव न होकर दिवाकर, रेणु, वीणा और राजेन्द्र है। यह नाटक लेखक की क्रान्तिकारी राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत है। जैसे समस्त नाटक ही दिवाकर के बलिदान और आत्माहुति के लिए लिखा गया हो। रेणु कष्टों को भोगने के लिए ही दिवाकर की पत्नी बनी। वहाँ मनोहर की पत्नी वीणा अपने सुहाग का सिन्दूर स्वयं अपने पति की हत्या करके अपने ही हाथों से पोंछ रही है। इस प्रकार इस नाटक में युग की राष्ट्रीय भावना और स्वतन्त्रता-प्राप्ति हेतु मर मिटने की चाह सर्वत्र व्याप्त है। इस विषय में भट्ट जी ने स्वयं लिखा है—"मैं राजनीति से अछूता नहीं हूँ। मैने तत्कालीन राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर ही 'क्रान्तिकारी' नाटक लिखा है।"[४०]

अपने देश की संस्कृति तो मानो भट्ट जी के साहित्य की प्राणधारा ही बनी हुई है। आदिम युग से लेकर आज तक सांस्कृतिक झाँकियाँ उनके साहित्य में स्वच्छन्द रूप से अन्तर्निहित हैं। 'आदिम युग और अन्य एकांकी नाटक' में सामाजिक झाँकी के साथ संस्कृति की झलक भी उपलब्ध होती है। इस सम्बन्ध में भट्ट जी ने स्वयं लिखा है—"मुझे विश्वास है यह नाटक भारतीय संस्कृति और भारतीय आदर्शों को आलोकित करने में सहायक होंगे। नाटक के चरित्रों से मेरे देश की संस्कृति का कुछ भी ज्ञान पाठक एवं दर्शकों को प्राप्त हुआ तो मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा।"[४१] इसके अतिरिक्त भट्ट जी संस्कृति को प्रवाहमान मानते हुए भी कहते हैं—"हाँ, संस्कृति तो सदा जीवन की तरह प्रवाहमान होती है। चेतना यानी पूर्वार्जित ज्ञान की चेतना यदि नष्ट हो जाती है तो हम कैसे जी सकते हैं। कोई भी जाति केवल नए मूल्यों के अनघड़ आधारों पर नहीं जी सकती।"[४२] 'आदिम युग', 'प्रथम विवाह', 'वैवस्वत मनु और मानव' मे आदिम युग की संस्कृति के चित्र मिलते है। 'शशिलेखा' एकांकी में बौद्ध युग की संस्कृति अभिव्यक्त हो रही है। 'सौदामिनी' एकांकी नाटक में मध्य युग से नीचे आकर राजकीय शासन के षड्यन्त्रों और संस्कृति का निरूपण है। मध्ययुगीन संस्कृति के चित्र उनके 'दाहर' अथवा 'सिन्ध पतन' नामक

४० 'साहित्य के स्वर', पृ० ५५।

४१ 'आदिम युग और अन्य एकांकी नाटक'—भूमिका, पृ० ख, ट।

४२ विष्णु प्रभाकर . 'भट्ट जी की कुछ साहित्यक मान्यताएँ'।

नाटक में प्रतिफलित हो रहे हैं। आधुनिक संस्कृति के चित्र उनके एकांकियों में भरे पड़े हैं। संस्कृति की परिवर्तनशीलता और गति में भट्ट जी की आस्था थी—"प्राचीनता से युक्त ही नया बनता है। सघन रात्रि के बाद सूर्योदय होता है। प्रकाश एकदम नहीं हो जाता। पहले वह अन्धकार से मिश्रित होता है, फिर धीरे-धीरे उससे अलग होता है। सन्ध्या को फिर वही प्रकाश धूमिल होने लगता है। संस्कृति भी इसी प्रकार नाना रूप लेती है।"[४३] इसीलिए भट्ट जी के साहित्य में आदिम युग, बौद्ध-काल, गुप्तकाल, तुर्क साम्राज्य, मुगलकालीन और आधुनिक काल तक की संस्कृतियों के विभिन्न चित्र सरलता से पाठक को देखने को मिल जाते हैं। संक्षेप में प्राचीन, मध्य और आधुनिक युग के सभी सांस्कृतिक चित्र उनके साहित्य में उपलब्ध होते हैं।

आधुनिक संगीत के स्वर उनके गीतिनाट्यों में प्रस्फुटित हो रहे हैं और किसी एकांकी में नृत्य की भाव-भंगिमा भी प्रतिफलित हो रही है। एकांकी के रंगमंच पर चित्रों का नियोजन करके उन्होंने अपने चित्रकला के प्रेम का भी परिचय दे दिया है। इस प्रकार उनके साहित्य में संस्कृति के उदात्त स्वरों के साथ-साथ कला के स्वर भी मुखरित हो रहे हैं।

इन सब युगीन परिस्थितियों के प्रतिफलन के साथ-साथ भारतेन्दु-युग के समय की देशभक्ति, असीम त्याग और राष्ट्र-जागरण की स्वर्णिम ऊषा भी उनके नाटकों में अपनी मधुरिम कान्ति के साथ उदित हो रही है।

प्रसाद जी का भव्य अतीत और भारतीय सांस्कृतिक निष्ठा, भावुकता और कल्पना भी उनके नाटकों में सर्वत्र जिज्ञासा भाव से क्रीड़ा कर रही है।

आधुनिक युग की तो प्रत्येक समस्या ज्यों की त्यों बोल रही है। युग के ऐसे जागरूक कलाकार हिन्दी में बहुत कम ही हुए हैं जिनमें से भट्ट जी एक थे। इन्होंने युग को आँख खोल कर बड़ी गहराई से देखा था, इसलिए युग की विभीषिकाओं और झंझावातों का उन्होंने अपने साहित्य में समाधान प्रस्तुत किया। युग की दारुण दशा ने उनके हृदय को सदैव चेतनाशील बनाये रखा और इसीलिए उन्हें मानवीय पीड़ा से सदैव कष्ट का अनुभव होता रहा। बस यही कारण है कि मानव की मंगल कामना का स्वर अत्यधिक बलवान् रूप से उनके साहित्य में पाठकों को आहृत कर रहा है। अतः सत्य और सौन्दर्य की शालीनता के साथ-साथ शिव उनके साहित्य का मूल शक्तिशाली स्वर है।

[४३] उदयशंकर भट्ट : 'व्यक्ति और साहित्यकार', पृ० २९–३०।

द्वितीय अध्यांय

जीवन परिचय

भट्ट जी स्वभाव से गम्भीर और सहृदय व्यक्ति थे। जहाँ जीवन में पवित्रता और स्वच्छता के प्रति उनका आग्रह था वहाँ साहित्य-साधना मे भी इन्हीं तत्वों का समावेश करते थे। घर के संस्कृतमय वातावरण ने उनके जीवन को विशेष रूप से निर्मल, शुद्ध और गंगाजलवत् पावन और स्वच्छ बना दिया था। घनपाठ, जरापाठ-पूर्वक वेदपाठ का वातावरण पूर्वजों से चला आ रहा था। संस्कृत के अतिरिक्त मातृ-भाषा गुजराती का भी व्यवहार घर में चलता था। इस प्रकार भट्ट जी को सास्कृतिक वातावरण विरासत में मिला था। यही कारण था कि संस्कृत और संस्कृति दोनों की गहरी छाप उनकी रचनाओं पर है। शैशव मे ही उन्होंने शब्द-रूपावली, धातु-रूपावली, अमरकोष कंठस्थ कर लिये थे। 'संस्कारात् प्रबला जातिः' के अनुसार संस्कारों का व्यक्ति पर प्रभाव पड़ता ही है। महापुरुषों का जीवन-परिचय देना कठिन होता है; फिर भी महान् व्यक्तियों के प्रति सदैव से लोक-जिज्ञासा रहती आई है। इसीलिए भट्ट जी के जीवन को देने का अल्प प्रयास किया जा रहा है।

शैशव

भट्ट जी का जन्म श्रावण शुक्ला नागपंचमी विक्रम संवत् १९५४ (३ अगस्त, सन् १८९८ ई०) को अपनी ननसाल मे हुआ था। उनके पिताजी का नाम फतेह शंकर भट्ट था। वे गुजराती औदीच्य ब्राह्मण थे। इनके पूर्वज गुजरात के सिद्धपुर नगर से आकर उत्तर प्रदेश के अनूपशहर (जि० बुलन्दशहर) मे बस गये थे। कुछ समय पश्चात् वे कर्णवास में गंगातट पर रहने लगे थे। इनके पूर्वज इन्दौर नरेश की ओर से न्यायाध्यक्ष नियुक्त होकर चले आये थे।[1] यह परिवार कर्णवास के आसपास

[1] १८वीं शती के उत्तरार्द्ध तक उत्तर प्रदेश सिन्धिया और होलकरो के अधीन था। देखिये 'होलकरशाही चा इतिहास'।

के चौरासी गाँवों का स्वामी था। भट्ट जी के पिता प्रातःकाल चार बजे उठकर स्नान करके दो घण्टे तक पार्थिव पूजन करते और तत्पश्चात् यजुर्वेद अष्टाध्यायी का पाठ करते थे। वे भावुक भक्त थे। प्रायः संध्या को सूरदास के पद गाया करते थे और बड़ी भक्ति से रामचरितमानस का पाठ भी करते थे। ऐसे परम पुनीत वातावरण में भट्ट जी का शैशव बीता था। संस्कृत बोलने और छन्दोबद्ध वार्ता करने का अभ्यास बचपन से ही हो गया था।

दुर्भाग्य से तेरह-चौदह वर्ष की अल्पावस्था में माता-पिता का निधन हो जाने से जीवन में विवशता, लाचारी और साथ ही उपेक्षा, निरंकुशता समा गई। उन्होंने इस सम्बन्ध मे अपने विचार भी व्यक्त किये हैं—"इस काल में अकल्पनीय प्रचण्डता से भाग्य के फलाफल मे जो देखा उसकी आज कल्पना कर सकता हूँ। उत्तरी ध्रुव में ही नही मेरे जीवन में भी निरन्तर तीन-चार साल का समय कालरात्रि जैसा था। यदि सूर्य निकला भी तो केवल मेघाच्छन्न। मेरी स्थिति ऐसी थी जैसे किनारे का दृश्य देखते-देखते किसी ने नदी में तैरने, डूबने या बह जाने के लिए फेंक दिया हो। इन वर्षों में माता-पिता का संरक्षण उठ जाने तथा परिवार के अन्य लोगों का निधन हो जाने से घर की व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। जिनसे संरक्षण मिलने की आशा थी उनसे भी तिरस्कार और आक्रोश ही मिला। मकान मेरे लिए खण्डहर और मनुष्य प्रेत के अट्टहास से गुंजित कंकाल था। सब ओर उपेक्षा और अनादर। आश्रय सड़क की धूल से गुम्फित चट्टान का टुकड़ा। डगमगाते पथिक के सदृश मेरी जीवन-नौका प्रवाहित हो रही थी।"[२]

इस प्रकार भट्ट जी ने जीवन के अरुणोदय में ही मेघाच्छन्न दुर्दिनों को देखा था। परिणामतः पीड़ित मानवता से उन्हें स्वाभाविक प्रेम हो गया। उसके सुख की कामना ही उनके साहित्य का ध्येय है।

शिक्षा

भट्ट जी संस्कृत के अच्छे पण्डित थे। पंजाब से शास्त्री और कलकत्ता में काव्यतीर्थ की परीक्षा उन्होंने उत्तीर्ण की थी। इसके अतिरिक्त बी० ए० तक अंग्रेजी भी पढ़ी। संस्कृत अध्येता होने के कारण भट्ट जी का भाषा पर असाधारण अधिकार था।

विवाह

भट्ट जी का विवाह सन् १९३२ के आषाढ़ मास में हुआ था। उस समय वे पंडित मोतीलाल नेहरू द्वारा स्थापित स्वराज्य पार्टी के एक सक्रिय कार्यकर्ता थे और खादी पहनते थे। वर रूप में भी वे अपने हाथ से कते-बुने खादी के कुरते में ही गए थे। भट्ट जी का विवाह छतरपुर रियासत के पण्डित बुद्धिसागर की तीसरी कन्या

[२] 'स्मृति के चिह्न'—लेख (फुटकर)।

गौरी देवी से हुआ था। श्रीमती गौरी देवी अत्यन्त विनम्र सत्कारशीला हैं। स्वभाव से सौम्य, मधुर और शान्त एवं सुशीला हैं।

स्वतन्त्रता संग्राम के साथ अध्यापन भी

भट्ट जी देशभक्त थे। समय के प्रभाव से वे वंचित न रह सके और असहयोग आन्दोलन मे भाग लेने के लिए कूद पडे। इसके अतिरिक्त वे विश्वविद्यालय के अध्ययन को तिलांजलि देकर साथियों के मन मे देशानुराग की भावना और विदेशी शासन के प्रति घृणा के भाव जगाने के लिए भी तत्पर हो गये। बरेली मे 'तिलक महाविद्यालय' नामक राष्ट्रीय संस्था मे अध्यापन करते हुए भी वे आन्दोलन मे भाग लेते रहे। यह विद्यालय ऐसे ही राष्ट्रीय कार्यकर्ताओ के लिए खोला गया था। अध्यापन से बचे समय में वे पार्टी का काम करते और गाँव-गाँव घूमकर कांग्रेस का प्रचार करते थे। इसी समय वे बरेली जि० कांग्रेस के उपसभापति और नगर कांग्रेस कमेटी के मन्त्री चुने गए। बरेली मे चौरा-चौरी काण्ड के समय वे डिक्टेटर थे। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने इन्हें बरेली स्वराज्य पार्टी का संयोजक भी नियुक्त किया था।

राष्ट्रीय जागरण की वेला में भट्ट जी अपने बहनोई श्री भगवतीचरण वोहरा के अनुरोध पर सन् १९२३ मे लाहौर चले गए और लाला लाजपतराय के नेशनल कालेज में अध्यापन का कार्य करने लगे। इसके पश्चात् खालसा कालेज, लायलपुर मे हिन्दी-सस्कृत के अध्यापक रहे। अन्त मे आप सन् १९४६ ई० तक सनातन धर्म कालेज लाहौर में हिन्दी-संस्कृत के प्राध्यापक पद पर काम करते रहे। भट्ट जी का लाहौर मे अध्यापक के रूप में प्रवेश वास्तव मे हिन्दी-सेवा का महत्त्वपूर्ण श्रीगणेश था। भट्ट जी ने वहाँ हिन्दी के प्रचार और प्रसार का कार्य बड़ी तत्परता से किया। यहीं पर सुखदेव जैसा देशभक्त और यशपाल जैसा प्रसिद्ध उपन्यासकार उनके निकट परिचय में आए। ये दोनों महानुभाव भट्ट जी मे गुरुभाव रखते थे।

परन्तु जब एक दिन राष्ट्र के कर्णधारों ने भारत माता का विभाजन स्वीकार कर लिया तो पजाब छोड़कर हिन्दुओं को दिल्ली की ओर आना पड़ा। भट्ट जी भी लाहौर छोड़कर दिल्ली आ गए। अब दिल्ली को एक उदीयमान साहित्यकार मिल गया।

रेडियो-सेवा

दिल्ली में भट्ट जी आकाशवाणी में हिन्दी वार्ता विभाग के परामर्शदाता तथा निर्देशक के रूप मे नियुक्त हुए। आकाशवाणी दिल्ली मे कार्य करते हुए वे नागपुर, बम्बई और जयपुर केन्द्रों को भी परामर्श देते थे। यह युग उनकी साहित्य-साधना का स्वर्णिम युग था। उनकी इच्छा थी कि रेडियो द्वारा ऐसे साहित्य का प्रचार किया जाय जो साधारण श्रोताओं तक में उदात्त भाव उत्पन्न करने में समर्थ हो। दस वर्ष रेडियो-सेवा के पश्चात् अपनी स्वतन्त्र मनोवृत्ति के

कारण त्यागपत्र दे दिया। सबसे पहले भट्ट जी का 'कालिदास' ध्वनिरूपक दिल्ली रेडियो स्टेशन से प्रसारित हो चुका था। इसके पश्चात् 'मेघदूत' और 'विक्रमोर्वशी' आदि ध्वनिरूपक प्रसारित किये गए। इस प्रकार भट्ट जी ने हिन्दी भाषा के प्रसार और प्रचार के लिए भी रेडियो के माध्यम से सराहनीय एवं प्रशंसनीय कार्य किया।

पर्यटन

भट्ट जी को लेखक बनाने में जहाँ उनके अध्ययन, स्वच्छ एवं पुनीत संस्कारों ने सहयोग दिया, वहाँ उनके घुमक्कड़पन ने भी सहायता की। भट्ट जी तक्षशिला गये तो 'तक्षशिला' खण्डकाव्य लिख दिया और काश्मीर गये तो 'मानसी' खण्डकाव्य लिख दिया। कन्याकुमारी से आने के पश्चात् कन्याकुमारी के सूर्योदय और सूर्यास्त पर कविताएँ लिख डालीं। स्कूल जाने की बजाय रेलवे स्टेशन पर घूमना, बागों में पुष्पों के सौरभ और प्राकृतिक आनन्द का लाभ उठाना, रात्रि की चाँदनी में नदी के तट पर बैठकर घण्टों समय व्यतीत कर देना, भिखारियों और मजदूरों के बीच में रहना उनकी घुमक्कड मनोवृत्ति का परिचायक हैं। एक बार उनके घुमक्कड़पन के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर डा० विश्वनाथ शुक्ल से उन्होंने कहा था—"क्यों नहीं? मैंने गाँवो की चौपार पर होने वाले आल्हा सुनते हुए रातें बिताई है। मुझे ऐसे लोगो के जीवन को देखकर रस मिला है। उनके अन्तर में पैठकर, उनका आनन्द और दुःख देखकर मुझे आनन्द और दुःख मिला है। मैंने देखा, अमीरी की अपेक्षा गरीबी में ज्यादा मस्ती है, सुख भी। मुझे लगता है उन्हीं अनुभवों, दृश्यों ने मुझे एकान्त लेखक बनने के लिए प्रेरित किया है। मेरी रचना में वैविध्य का कारण मेरा यही घुमक्कड़पन है। देश-प्रेम, मानवता और सर्वोपरि व्यक्ति के अदम्य उत्कर्ष को कला के द्वारा चित्रित करना, यही मेरा ध्येय रहा है।"[३]

पर्यटन उन्हें वरदान सिद्ध हुआ था, जिसके द्वारा उनकी आत्मा समाज के प्रत्येक वर्ग में रम गई। आत्मा के इस रमण ने ही उन्हें उच्च कोटि का सफल उपन्यासकार भी बना दिया।

स्वतन्त्र साहित्य-सेवा

भट्ट जी के फुटकर साहित्य को स्वतन्त्र साहित्य के नाम से अभिहित किया जा सकता है। जिस भावोदधि की वीचियाँ किसी पुस्तक में स्थान न पा सकी तो वह स्वतन्त्र साहित्य के रूप में अध्येता के मन को आप्यायित कर रही हैं। उनके बहुत-सी हिन्दी परिषदों के उद्घाटन के अवसरों पर दिए गए भाषण, वर्धा हिन्दी राष्ट्रभाषा परिषद् में दीक्षान्त भाषण, बम्बई हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति पद से दिया गया भाषण, नाटकों का उद्घाटन करते समय प्रस्तुत किए गए विचार, विश्व-विद्यालयों में 'एक्सटेनशन' भाषण आदि स्वतन्त्र साहित्य के ही परिचायक हैं।

[३] 'उदयशंकर भट्ट : व्यक्ति और साहित्यकार'—यशस्वी जीवन की एक झाँकी, पृष्ठ १६।

स्वभाव

भट्ट जी का स्वभाव गंगा के पावन जल की तरह स्वच्छ, निर्मल और पवित्र था । वे स्वभाव से सर्वप्रिय और प्राणिमात्र के मित्र थे—"व्यक्ति के रूप में भट्ट जी अत्यन्त सौम्य और गम्भीर हैं । उनमें विनय और स्वाभिमान का सुन्दर समन्वय है । उनके व्यवहार में एक खास तरह का आभिजात्य और सुथरापन है । वे वास्तव मे सच्चे ब्राह्मण है—सरल, निर्लोभ और स्वाभिमानी ।"[४]

"कर्णवास (जि० बुलन्दशहर) गगा तट उनके पूर्वजों की निवास भूमि है, अत उनके जीवन का प्रत्येक कण जाह्नवी के पावन जल-सीकरो से मिश्रित है । अपत्य स्नेह और अनुशासन का सुन्दर समन्वय भी आपको उनमे मिलेगा। सबसे बडी बात जो आपको मिलेगी वह यह है कि वह श्रोता ही अधिक है । अपनी बात वह कम सुनाते है ।"[५]

"हार्दिकता और गहरे आत्मविश्वास की आभा मे मण्डित, निर्दोष, तेजस्वी और वयोवृद्ध रूप जो क्षण-क्षण में जीवनव्यापिनी संस्कारशीलता और व्यक्ति-वैशिष्ट्य का प्रेरक बोध प्रदान करता है ।"[६]

"वह अपनी नई रचना पूरी की पूरी सुनाकर ही उठते थे । एक बार ऐसे जमे कि छानने का समय भी निकल गया । यह उनकी आदत थी ।"[७]

"भट्ट जी के चरित्र मे, उनकी शैली में सर्पिल कुछ नहीं है । जितना बोलते है उतना लिखते है । लिखते है उतना ही जितना लिखने को मन करता है, जितने विचार उठते हैं और विचारों को जो उनके शब्द धारण करते हैं वे शपथ की भाँति पवित्र हैं ।"[८]

"लाहौर के अन्यान्य साहित्यकारो की अपेक्षा मेरा उनके प्रति अधिक आदर और अनुराग हुआ, वह थी उनकी निरभिमानता, हार्दिकता, स्नेहसिक्त मृदु व्यवहार और स्पष्टवादिता । दो टूक सत्य कहने और सुनने में मैने भट्ट जी को कभी हिचकते या उद्विग्न होते नहीं देखा ।"[९]

४ डा० नगेन्द्र : 'उदयशंकर भट्ट—व्यक्ति और साहित्यकार'—श्री उदयशकर भट्ट : सच्चे ब्राह्मण—सरल, निर्लोभ और स्वाभिमानी, पृ० २२ ।

५ डा० गोवर्धननाथ शुक्ल : 'उदयशंकर भट्ट : व्यक्ति और साहित्यकार'—सरल, निष्कपट और विनोदप्रिय, पृ० ३९ ।

६ डा० विश्वनाथ शुक्ल : 'उदयशकर भट्ट · व्यक्ति और साहित्यकार'—यशस्वी जीवन की एक झाँकी, पृ० १८ ।

७ श्री गौरीदास वाजपेयी : 'हिन्दुस्तान साप्ताहिक', १० अप्रैल १९६६, पृ० १५ ।

८ श्री केदारनाथ मिश्र : 'उदयशकर भट्ट : व्यक्ति और साहित्यकार'—उनमें सर्पिल कुछ नही है, पृ० ४२ ।

९ श्री मोहनसिंह सेंगर : 'उदयशंकर भट्ट : व्यक्ति और साहित्यकार'—सुहृदवर भट्ट जी, पृ० ४३ ।

"स्वर्गीय पूज्य दद्दा (राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त) की तरह भट्ट जी का आतिथेय रूप भी अत्यन्त भव्य होता है।"[१०]

"जीवन में उन्होंने बहुत ऊँच-नीच देखा है। परन्तु मैं अपने आपको इस बात का गवाह मानता हूँ कि सब मिलाकर उनका चरित्र और उनकी देन दोनों पूरी तरह निर्मल हैं।"[११]

"स्वतन्त्र भारत के भावात्मक ऐक्य का यदि कहीं किसी में परिचय प्राप्त होता है तो वह भट्ट जी की साहित्यिक सेवा से प्राप्त होता है।"[१२]

भट्ट जी सुस्वादु भोजन बनाने में भी कुशल थे और उसमें भी नयी-नयी कल्पना रहती, बँधी-बँधाई पाक प्रणाली नहीं। इसके अतिरिक्त डा० गोवर्धननाथ शुक्ल को लिखे गये व्यक्तिगत पत्रों से उनके स्वभाव का अच्छा पता चलता है। अपने भावराज्य को लेखक निजी पत्रों में ही अत्यन्त सचाई के साथ व्यक्त करता है। उनके जीवन का अन्तरंग वस्तुतः निजी पत्रों में ही मुखरित हुआ है। उनके स्वभाव के परिचय सन्दर्भ में डा० शुक्ल को लिखे गये २००—२५० पत्रों में से कुछ के उद्धरण प्रस्तुत किये जाते हैं। इनसे उनकी निजी विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है।

(१) "इससे अच्छी और क्या बात है कि घर बैठे आपके दर्शन होंगे। कृपया समय आने की सूचना दें ताकि मैं स्टेशन पर मिलूँ"।[१३] इससे उनकी परम सज्जनता और व्यावहारिकता दोनों ही प्रकट होती हैं। वास्तव में भट्ट जी अत्यधिक विचारशील एवं सज्जन स्वभाव के व्यक्ति थे।

(२) "मुझे बहुत दुःख है कि अचानक कमर में दर्द हो उठने के कारण मैं आगरे नहीं पहुँच सका, किन्तु आपने जिस आत्मीयता से कष्ट सहकर अच्छे ढंग से काम निभा दिया, उससे मैं सचमुच बहुत कृतज्ञ हूँ। प्रभाशंकर भी कहते अघा नहीं पा रहा था। उसे जिस एक अपने से बड़े के सहारे की आवश्यकता थी उसमें आपने अपने निसर्ग बन्धुत्व का परिचय दिया। विश्वास तो मुझे था ही कि आपके होते सब ठीक होगा।"[१४]

(३) "आप आयें यह मेरे लिए सौभाग्य की बात होगी। मैंने कर्णवास की भूमि ग्राम-पंचायत को दे दी है।"[१५]

[१०] श्री नरेन्द्र शर्मा : 'उदयशंकर भट्ट : व्यक्ति और साहित्यकार'—अभिनन्दनीय भट्ट जी, पृ० २४

[११] श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार : 'उदयशंकर भट्ट : व्यक्ति और साहित्यकार'—मेरे आदरणीय मित्र भट्ट जी, पृ० ३७।

[१२] श्री सुभाई देसाई : 'उदयशंकर भट्ट : व्यक्ति और साहित्यकार'—भावांजलि, पृ० ४८।

[१३] पत्र संख्या १ दिनांक ८-१२-५५।

[१४] पत्र संख्या २ दिनांक २७-३-५८।

[१५] पत्र संख्या ३ दिनांक १०-६-६२।

(४) "गंगास्नान मेरे जैसे पापी के लिए सम्भव नही है। जरा मौसम ठीक हो जाए आने की चेष्टा करूँगा।"[१६]

(५) "पुत्री मुझे अपेक्षाकृत अधिक प्रिय है क्योंकि वह थोड़े दिन के बाद हम लोगों को छोड़कर पराये घर चली जायगी। जिसका चित्र होती है उसका विशेष आदर होता है। भगवान् साक्षात् स्नेहमूर्ति है। आपका परिवार उसी स्नेह, सौजन्य का केन्द्र है। न जाने मुझ भटकते को यह कैसे मिल गया। जो मिला है वह मेरे हृदय की निधि है। कहता तो नही, पर शायद यह भी एक सौगात मेरे साथ जायगी।"[१७]

भट्ट जी के उपर्युक्त पत्रों से ज्ञात होता है कि वे कृतज्ञता के बन्धन को अमोघ मानते थे। इसके अतिरिक्त उनके त्यागी और उदात्त भावो का भी परिचय मिलता है। वास्तव मे भट्ट जी सयत एव शालीन स्वभाव के मृदुभाषी एव विनीत व्यक्ति थे।

बच्चों का प्रेम और उनमें भी बच्चों के प्रति भट्ट जी का स्नेह अप्रतिम था। प्राय: वयस्क लोग बच्चों की उपेक्षा करते है, परन्तु भट्ट जी बच्चों मे घुल-मिल जाते थे। डा० शुक्ल के तीनो बच्चो में प्राय. उनके स्नेह के लिए परस्पर द्वन्द्व मचता था। अत: बच्चों ने उनसे ही व्यवस्था माँगी कि आप बेबी, प्रतिभा को विशेष प्यार करते है या राजीव को। इस पर स्वयं भट्ट जी ने ही निर्णय देते हुए उपर्युक्त पत्र लिखा था।

वेशभूषा

खादी की धोती, कुर्ता एवं शीतकाल में जाकट और ऊपर से रेशमी खादी की चादर पहनते थे। पैर में बिना फीते वाला न्यूकट जूता या चप्पल पहनते थे। "वाणी की सम्मोहन-मधुरता एवं मनोमुग्धकारी आकर्षण, चरणों में उदधि-गाम्भीर्य, यही था उनका ऊपरी व्यक्तित्व। वह एक संयोजन, सम्मिलन, विलयन और सगठित पूर्णता हैं, जिसमे विशिष्ट क्रियाएँ अपनी अन्विति को एक सम्पूर्ण प्रतिमा मे युक्त करती हैं।"[१८]

मृत्यु

दिसम्बर सन् १९६५ में भट्ट जी को दिल का दौरा पड़ा था। परन्तु जनवरी के अन्तिम सप्ताह में स्वस्थ होकर घर आ गये थे। दुर्भाग्य से १९ फरवरी सन् १९६६ ई० को फिर दिल का दौरा हुआ और तत्काल ही उन्हे विलिंगडन नर्सिंग होम में भरती करवा दिया गया। परन्तु वहाँ से वे फिर वापस न आ सके और दस दिन के पश्चात् २८ फरवरी सन् १९६६ ई० को प्रात: काल ९ बजे उनका स्वर्गवास हो

[१६] पत्र संख्या ४, दिनांक २७-१२-६४।

[१७] पत्र संख्या ५, दिनांक २-१-६६।

[१८] Norman L. Munn : 'Psychology', p. 569.

गया। भट्ट जी के निधन का समाचार सुनते ही हिन्दी जगत् में शोक की लहर छा गई।

भट्ट जी का व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक और सम्मोहक था। भाव-गाम्भीर्य के साथ-साथ सूक्ष्म अन्वीक्षण बुद्धि, सस्कारशीलता के कारण व्यक्ति-वैशिष्ट्य का परिचायक, युग-प्रबुद्ध व्यक्ति, नुकीली नाक और चश्मे के भीतर गम्भीर बुद्धि और सांस्कृतिक चिन्तन और दार्शनिक वैभव के अनुशीलन में व्यस्त, आकर्षक नेत्र, ऊंचा ललाट, शान्त और गम्भीर मुद्रा, श्वेत चाँदी के से चमकते केश नवीन स्फूर्ति और चेतना उत्पन्न करने वाले थे। ऐसे भट्ट जी सदैव अभिनन्दनीय और चिरस्मरणीय रहेंगे।

तृतीय अध्याय

साहित्यकार के रूप में भट्ट जी के दो रूप—कवि, नाटककार

"कवि सन्देशवाहक होता है। यह युगों तक अपने मौलिक चिन्तन और सिद्धान्तों के द्वारा जीवित रहता है और उसकी कृतियों से भावी साहित्य को प्रेरणा तथा विश्व को नूतन चेतना प्राप्त होती है। कवि द्रष्टा होता है, उसके मन और मस्तिष्क मे जगत् के लिए एक विचित्र प्रतिक्रिया चलती रहती है, वही उसकी रचना का रहस्य है। जो कवि जगत् और जीवन को जितनी दृढता से पकडता है, उसकी कृति उतनी ही अधिक प्राणमयी होती है। एक विशेष क्षेत्र में सीमित रहने वाला रचनाकार समाज के एक विशेष अथवा सीमित वर्ग को ही तोष दे सकता है। महा-कवियों का चिन्तन व्यापक होता है और वे जीवन की चिरन्तन समस्याओं को ही लेकर चलते हैं। उनकी विचारधारा सूत्र रूप में आगे बढ़ती है और वे इंगित मात्र से अपने उद्देश्य की व्यंजना कर देते हैं। काव्य में प्रवाहित कवि की विचारधाराएँ उसका संदेश होती हैं। वह सदा भावना का सम्बल लेकर आगे बढती हैं।"[1]

भट्ट जी युग-प्रबोधक साहित्यकार के साथ-साथ रस-सिद्ध कवि एव महान् नाटककार थे। वे बिना उद्देश्य लिखना निरर्थक समझते थे। इसलिए उन्होंने लिखा है—"मैं बिना उद्देश्य के लिखने का कोई अर्थ नहीं मानता। जिसमें समाज या व्यक्ति को ऊपर उठने की प्रेरणा, बल न मिले, उसका हित न हो, वह लिखना बेकार है। कला जीवन के लिए है, कला के लिए जीवन नहीं है।"[2]

अपने साहित्य के सम्बन्ध में भी विचार व्यक्त करते हुए भट्ट जी ने कहा है कि "मैंने जो कुछ दिया है, उसके सम्बन्ध मे कुछ भी निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। समय ही उसकी कसौटी है। जो उपयोगी होता है वही रह जाता है। वही रह जाएगा। मैंने कभी अपने लेखक को गर्वित होने का अवसर नहीं दिया।"[3]

[1] H. W. Garrod : 'The Study of Poetry', p. 37.

[2] 'अवन्तिका', अगस्त १९५६ पृ० १८६।

[3] 'उदयशंकर भट्ट : व्यक्ति और साहित्यकार'—भट्ट जी की कुछ साहित्यिक मान्यताएँ, पृ० २६।

भट्ट जी युग के उन तपःपूत साहित्यकारों में से थे जिनके साहित्य में युग के सभी चरण और समस्त विधाएं प्रतिफलित हुई हैं। उनकी कलाकृतियों का अनुशीलन करने के पश्चात् यह कहना कठिन है कि उनकी कला-साधना का सर्वश्रेष्ठ रूप किस विधा में है। वे रस-सिद्ध कवि और महान् नाटककार अवश्य थे। भट्ट जी ने कवि के सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त किये है .

"कवि का कार्य अपने बाहर और भीतर सौन्दर्य में आवृत सत्य की सृष्टि करना है या उसका उद्भास, यही सदा से उसका ध्येय भी रहा है। ध्येय के प्रति निष्ठा मे उसकी तन्मयता जागरूक होती है। वह अन्तर्मुख हो जाता है, तभी उसकी कविता रूप ग्रहण करती है और जीवन के तेजोमय स्तर पुस्तक के पन्नों की तरह खुलते चले जाते है, शाश्वत सत्य की सृष्टि होती है।"[४]

कविता के सम्बन्ध मे भी उनका मत द्रष्टव्य है—"सुख-दुःखरूपी दो खण्डों की रगड से कविता की भी अभिव्यक्ति हुई है। यह दूसरी बात है कि दोनों में कोई प्रधान रही हो और कोई गौण।"[५]

भट्ट जी ने रस को काव्य का प्राण-तत्त्व माना है- "काव्य कवि की प्रतिभा, दृष्टि, तीक्ष्णता, तादात्म्य का रसमय कार्य है जो समय की सीमाओं को फोड़कर अपना मार्ग बनाता हुआ युग-युगान्त और कल्पान्त तक मानव मात्र को अपने रस से विभोर करता रहता है।"[६] इसी प्रकार उन्होंने 'साहित्य' शीर्षक मुक्तक मे भी काव्य-रस की आनन्द-प्रेरणा का स्पष्ट उल्लेख किया है। यथा—

"अक्षरों की घुण्डियों के भरा भीतर रस
योजना से फूटता साहित्य का मकरन्द
सो रहे हर बीज में हैं रसों के रेशे
फूलते ही गमक उठते सुरभि घन स्वच्छन्द।"[७]

भट्ट जी ने काव्य में अनुभूति पर विशेष बल दिया है—"अनुभूति जितनी ही गहरी होती है जीवन-पट उतना ही अनावृत भी होता है, किन्तु इस जीवन-दर्शन की श्रेणियाँ हैं। उन्हीं श्रेणियों के अनुसार कवि में भी भावोन्मेष होता है। सामर्थ्य और प्रतिभा उसके सहायक बनते हैं।"[८] कवि ने नोआखाली की प्रकृति-स्थली में पुष्प-छवि का कितना अनुभूतिमय चित्रण किया है :

"झूमते हैं चूम चूम सुन्दर समीर नीर
फूलती है कविता मनोज्ञ रस-भरिता सी।"[९]

४ 'अलका' (शान्ति सिंघल), पृ० ५।
६ 'विसर्जन'—अपने पाठकों से, पृ० ख।
५ 'हंस', अक्टूबर १९४१, पृ० ६।
७ 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', ३१ मार्च १९५७ ई०, पृ० ५।
८ 'अलका' (शान्ति सिंघल)—आमुख, पृ० ५।
९ 'एकला चलो रे', पृ० १७।

इसके अतिरिक्त कवि ने काव्य मे सत्य को भी आवश्यक माना है—"मैंने काव्य में केवल एक बात को सदा ध्यान में रखा है कि जो कुछ लिखा जाय उसमें आत्मा की प्रेरणा तथा वस्तु के प्रति ईमानदारी हो।"[१०]

वस्तुत: अनुभव-पुष्ट रचना मे आत्मा के आलोक का जो सहज प्रसार होता है वह अमूर्त विचार रूपों के परिणाम से भिन्न होने के कारण काव्य को अनिश्चित दिशा की ओर न ले जाकर उसे सुस्पष्ट भावदीप्ति प्रदान करता है। इस सन्दर्भ मे भट्ट जी की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

"यह पावन अनुभूति आत्मा की अकृश
काव्यों में समूर्त कर देती प्राण-बल ।।"[११]

भट्ट जी काव्य का उद्देश्य स्वान्त: सुखाय न मानकर परहिताय भी मानते है—"मै स्वान्त: सुखाय के साथ समाज सुख को भी मानता हूँ। स्वान्त: सुखाय रचना से क्या फायदा ? व्यक्ति का अस्तित्व समाज के लिए है। स्वान्त: सुखाय का अर्थ आनन्द है। स्वान्त: सुखाय को परमार्थ सुख मे बदल कर ही जनता-जनार्दन का कल्याण किया जा सकता है।"[१२]

कविवर भट्ट जी ने कवि-प्रकार निर्धारण करते हुए कवि के चार भेद माने हैं—"मूल प्राकृतिक (यथार्थ एवं अनुभूतिवादी), सांस्कृतिक (आदर्शवादी), रूढ़ि-वादी (क्लासिकल) मूल परिवर्तनवादी (रोमांटिक)।"[१३] उन्हे भी मूल प्राकृतिक और मूल परिवर्तनवादी रूप स्वीकार है .

(१) "जग के अन्तर्द्वन्द्व प्यालियों में भर-भर पीता रहता है।
मधुर कल्पना के पंखों पर उड़-उड़ कर जीता रहता है।"[१४]

(२) "गीत गाता हूँ इधर भीतर उधर है आग।
और रोता प्राण जब पुलकित जगत् का राग।"[१५]

अत: भट्ट जी के अनुसार काव्य के द्वारा कवि जगत् की अनुभूतियों और मानसिक प्रतिक्रियाओं को कल्पना-माधुर्य के माध्यम से वाणी देता है। कवि काव्य मे सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् का उपासक है। इसके अतिरिक्त कवि-जगत् की सामान्य प्रवृत्ति के अनुकूल कलाकार को सर्वद्रष्टा मानकर यह प्रतिपादित किया है .

जिसको जग ने कभी न देखा, वह मेरे प्रिय कवि ने देखा।"[१६]

ऐसा कवि भावोन्मेष के क्षणों मे किसी भी भाव को रसात्मक अभिव्यक्ति प्रदान

१० 'अवन्तिका', अगस्त १९५६ ई०, पृ० १८६।
११ 'अन्तर्मन्थन'—चार चित्र, पृ० ४७।
१२ 'अवन्तिका', अगस्त १९५६ ई०, पृ० १८६।
१३ काव्य मे व्यक्तित्व की अभिव्यंजना, 'हंस', अक्टूबर १९४१ ई०, पृ० १०।
१४ 'मानसी'—दिव्य दृष्टि, पृ० ६०।
१५ 'युगदीप', पृ० १४।
१६ 'मानसी'—दिव्य दृष्टि, पृ० ६०।

कर सकता है। वस्तुतः वह लोक-प्रेमी होता है। इस विषय में भी भट्ट जी ने लिखा है—"कवि का यही रूप शाश्वत है। लौट-फिर कर सभी कवि इसी मार्ग पर आए हैं और इस प्रकार की कविता का इतिहास अपरिमित है और निश्चय ही कविता का प्रारम्भ तो विरह से ही हुआ है। इसमें किसी को आपत्ति नहीं हो सकती।"[१७]

प्रेम की रागात्मक चेतना से काव्य में रस-विधान को लक्षित करके ही ध्वन्यालोककार ने कहा है—"वही अर्थकाव्य की आत्मा है। इसीलिए आदि काल में क्रौंच-युगल के विरह से आदि कवि वाल्मीकि के हृदय में उत्पन्न शोक श्लोक रूप में अभिव्यक्त हुआ।"[१८]

भट्ट जी के काव्य में भावों के सभी उतार-चढाव देखने को मिलते हैं। उन्होंने इस विषय में लिखा भी है—"मैंने भावों के उतार-चढ़ाव के साथ जीवन की नव-नवोन्मेषिनी भाव-धाराओं का सूक्ष्म प्रवाह, हृदय की मस्ती, प्रेम की अदम्य प्रवाहिनी तथा छायावादी अज्ञेय रूप-राशि के प्रोज्ज्वल स्वप्नों का आन्तर दर्शन भी किया है और उसके बाद प्रगतिवाद, यथार्थवाद के इस युग में बाह्य परिधान से लापरवाह, रूप सौन्दर्य की अवहेलना करके बैसाखी के सहारे चलती भिखारिन की तरह अन्तर, बाह्य दोनों में उन्मुख यथार्थ-दर्शनाभिलाषिणी पेट की भूख का गीत गाती हुई कविता का रूप-दर्शन भी किया है।"[१९]

इसके अतिरिक्त भट्ट जी के काव्य में जीवन-दर्शन, अनुभव की गहराई, ज्ञान का उन्मेष मगलकारी बना हुआ है। इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा भी है—"काव्य जातीय जीवन के उत्थान और पतन की प्रतिच्छाया है।"[२०] देश पर प्राण देने वाला सैनिक भट्ट जी को काव्य-स्फूर्ति देने वाला है—"तुम (सैनिक) कवि की अन्तःस्फूर्ति बने, कविता के प्राण-विमान बने।"[२१] भट्ट जी को भारत के भव्य अतीत और भारतीय सस्कृति से असीम स्नेह था। इसीलिए उन्होंने भारत के भव्य अतीत को राष्ट्रीय जागृति के लिए प्रेरणाप्रद मानकर निम्न कविता की रचना की है जो बड़ी ही भावमय और श्लाघ्य है :

> **"तूने भारत के देखे दिन सुखमय अविकल मन से,**
> **तूने निर्माण किए हैं, युग अपने वैभव बल से,**
> **फिर हममें फूंक निरन्तर, अक्षुण्ण शक्ति अनथक बल**
> **तैंतीस कोटि कण्ठों में जय-जय-जय ध्वनि हो अविरल ॥"[२२]**

भट्ट जी की कविता में राष्ट्रीयता का स्वर स्पष्ट है, फिर भी निराशा का

१७ 'उन्माद' (मदनलाल मधु)—भट्ट जी की भूमिका, पृ० ग-घ।
१८ 'हिन्दी ध्वन्यालोक', १/५, पृ० ४३।
१९ 'यथार्थ और कल्पना'—भूमिका, पृ० क।
२० 'भक्त पंचरत्न'—सपादक उदयशंकर भट्ट, पृ० ६।
२१ 'अमृत और विष', पृ० १३।
२२ 'माधुरी', वैशाख संवत् १९८८, पृ० ४७१।

स्वर कम स्पष्ट नहीं है। 'युगदीप' तथा 'यथार्थ और कल्पना' मे इस प्रकार की अनेक कविताएँ उपलब्ध होती है।

"अन्धकार, अन्धकार, अन्धकार चीर चल।
उग रही उषा उधर, उग रहा दिन सफल।"[२३]

किन्तु दूसरे ही क्षण आशा को एक मृगतृष्णा मानकर कहते है—

"कोई बिखेरता जाता है
कोई समेटता जाता है
निशिदिन की चरखी पर
जीवन-डोरी लपेटता जाता है।"[२४]

अतः उनके लिए कुल मिलाकर जीवन केवल उल्लास नही है बल्कि चिन्ता और भय का कारण भी है और इसीलिए बिना सोचे कुछ भी कहे जाने का स्वभाव उनके कवि का स्वभाव नही है। 'मानसी' मे तो कवि ने मानवीय सुख-दुःख का उद्-गम, उसकी स्थिति और उसके व्यापक रूप का अनुभूतिमय विवेचन किया है। विश्वरूप ने कवि की अन्तरात्मा को झंकृत किया है। उसकी झलक 'मानसी' में द्रष्टव्य है :

"कुसुम अरे, देखो दुःखों को,
नर ने उपजाया निज कर से
अपने आप जला भी दी है
इसने चिता साध के पर से।"[२५]

भट्ट जी की चेतना को द्वितीय महायुद्ध की विभीषिकाओं ने उद्बुद्ध किया था। 'अमृत और विष' में प्रायः युद्ध सम्बन्धी कवितायें संगृहीत है। इस विषय में भट्ट जी ने लिखा भी है—"ये कविताएँ मैंने उन दिनो लिखी थीं जब संसार का वातावरण दूसरे युद्ध से विक्षुब्ध था। इसीलिए अधिकतर रचनाएँ युद्ध की विभीषिका लिये हुए हैं।"[२६]

'यथार्थ और कल्पना' तक आता हुआ कवि कुछ प्रगतिवादी हो चला था :

"रक्तलिप्त, विषदग्ध धरा को नव जीवन नव प्राण चाहिए,
कुंठित गति, लुंठित सस्कृति को अपना पथ निर्माण चाहिए।
युद्ध युद्ध की हृदय-विदारक ध्वनि से व्याकुल विश्व पड़ा है,
दुर्बल काँप रहे हैं भय से बली सज रहा संविधान है।"[२७]

परन्तु इस सम्बन्ध मे भट्ट जी ने कहा है—"मैं प्रगतिवाद में विश्वास करते हुए और उसकी आर्थिक योजना की महत्ता को स्वीकार करते हुए भी भारतीय

२३ 'पूर्वापर', पृ० १।
२४ वही, पृ० ३१।
२५ 'मानसी'—विवशता, पृ० ३३।
२६ 'अमृत और विष'—दो शब्द, पृ० १।
२७ वही, पृ० ७६।

जीवन के परम्परा-प्राप्त विवेकमय सुसंस्कृतालोक में विश्वास करने को बाध्य हूँ। इसलिए इन कविताओं में मेरा स्वर सिद्ध का न होकर साधक का है, उपास्य का न होकर उपासक का है।"[२८]

भट्ट जी ने इससे आगे भी कहा है-- "निश्चय ही एक भौतिकवाद हमारा अन्तिम ध्येय नही हो सकता। मनुष्य के 'मैं' और समाज के 'हम' के आगे हमारा आत्मानुभूति का पडाव है। वहाँ भी हम हमेशा जाकर ठहरते रहे हैं और वहाँ के सौन्दर्य से हमारा साहित्य प्रफुल्ल हुआ है, जिसमें स्फटिक-स्वच्छ सरोवर तट पर सुचिन्तन के आत्म-विभोर कल्हारों का मधुर मकरन्द आज भी भीनी-भीनी सुरभि लेकर श्रान्त पथिकों को तृप्तिदान करता आ रहा है, उसे भूल जाना भी तो जीवन की बड़ी भूल होगी।"[२९]

भट्ट जी ने रोम-रोम में उत्साह और उल्लास की लहर उत्पन्न कर देने वाली कविताओं की भी रचना बड़े मनोयोग से की है :

"प्रलय में, तिमिर में, न तूफान में भी
कदम ये रुके हैं न रुक पायेंगे ही।
जगत् की सुबह से चला चल पड़ा मैं,
अड़ी चोटियाँ पर न पीछे मुड़ा मैं,
न मैं रुक सका बादलों की घटा में,
भटकता रहा पर न पीछे हटा मैं।"[३०]

'कणिका' भट्ट जी का मुक्तक संग्रह है। इस मुक्तक-माल में भट्ट जी के भावकण काव्य के रूप में अपनी सरसता और कोमलता का परिचय दे रहे हैं :

"कब पर हँस रहे हैं हम बैठे
बेहया जिन्दगी मिली हमको।
सब तरफ मुसीबतों की न्यामत है,
मौत की बन्दगी मिली हमको॥"[३१]

'तक्षशिला' खण्डकाव्य में भारत का भव्य अतीत बोल रहा है तो 'कौन्तेय-कथा' मे कवि शिव संस्कृति का आख्यान बड़ी तन्मयता से कर रहा है। भट्ट जी ने 'तक्षशिला' के विषय में लिखा भी है—"एक-एक खण्डहर मानो कोई पुराना गीत किन्तु अस्पष्ट तथा करुणा भरा गीत गा रहा था। एक-एक स्तूप में, एक-एक भग्न मूर्ति में करुणा की सूक्ष्म लहर उठ रही थी। मुझे तो ऐसा मालूम होता है मानो तक्षशिला के खण्डहर आज भी अपनी वैभव कहानी याद करके तथा अपनी दीनावस्था

२८ 'पूर्वापर'—युगदीप, यथार्थ और कल्पना के सम्बन्ध में, पृ० च।
२९ वही।
३० 'पूर्वापर', पृ० १०४।
३१ 'कणिका', पृ० ५४।

पर दु:खी होकर जमीन मे गड़ गये हैं।"[32]

भट्ट जी ने 'कौन्तेय-कथा' के सम्बन्ध मे अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं—"शिव संस्कृति की परम्परा ने जातियों के द्वेष भाव को दूर किया। प्राचीन आर्यों एवं अनार्यों को प्रेम के सूत्र मे बाँधने वाली शिव संस्कृति थी। प्रस्तुत काव्य मे मैने शिव तथा अर्जुन की कथा द्वारा उस सस्कृति का चित्रण करने का प्रयास किया है।"[33]

'इत्यादि' कविता-संग्रह में कवि की सभी प्रकार की कविताएँ संगृहीत है, जो वस्तु, रूपविधान, शैली, कथ्य तथा भाव की दृष्टि से समय-समय पर अपना रूप बदलती रही है। यथा—

"लावा जो जन-जन के मानस में फूट रहा,
झरना जो प्राणों की धरती से छूट रहा,
वही ब्रह्म अक्षर है धरती नभ विलास में,
पढ़कर तो देख उन्हें मन के अवकाश में ?"[34]

'मुझ में जो शेष है' नामक कविता-संग्रह में कवि ने नई कविता के नवीन प्रयोगों को अपनाया है। इन प्रयोगों को देखकर अनुभव होता है जैसे भट्ट जी नई कविता के पुराने कवि हों। कवि के सभी प्रयोग परम्परागत और शाश्वत तत्वों के अनुगामी है। भट्ट जी ने भी इन कविताओ के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किए हैं—"अब आप 'मुझ में जो शेष है' की रचनाएँ पढ़ें जो समाजपरक कम, व्यक्ति की अनुभूतिपरक अधिक है।"[35]

एक कविता भी द्रष्टव्य है :

"साँप, तुम सच्चे हो,
भय है, गरल है,
मरण महत्तर है,
जो कुछ है स्पष्ट है इसीलिए अच्छे हो।"[36]

इस प्रकार कवि ने 'तक्षशिला' और 'कौन्तेय-कथा' में चिन्तन और कल्पना के आश्रय से भारत के भव्य अतीत की झाँकियाँ चित्रित की है तो 'मानसी' मे मानव को स्वयं ही सब सुख-दु:खों का मूल स्रोत माना है। 'राका', 'विसर्जन' में कवि तत्कालीन घुटन और अवसाद से क्षुब्ध है तो 'यथार्थ और कल्पना' मे वह उपासक और साधक के रूप में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की ओर झुका हुआ प्रतीत होता है। 'इत्यादि' और 'मुझ में जो शेष है' की कविताएँ अनुभूतिपरक है। ये कविताएँ

[32] 'तक्षशिला'—भूमिका, पृ० १–२।
[33] 'कौन्तेय कथा'—निवेदन, पृ० ५–६।
[34] 'इत्यादि'— कविकर्म, पृ० ४।
[35] 'मुझ मे जो शेष है'—आत्मविश्लेषण, पृ० च।
[36] वही—साँप और मै, पृ० चार।

अतुकान्त भी हैं। कवि ने कला की दृष्टि से तुकान्त कविता की अपेक्षा अतुकान्त कविता को अधिक महत्त्व दिया है—"यदि अत्युक्ति न समझी जाय तो मैं कहूंगा कि अतुकान्त काव्य तुकान्त काव्य से अधिक प्रवाहमय एवं जोरदार हो सकता है।" यथा—

"किन्तु—
आज लगता है कहीं उड़ गये हैं सब
धुआँ ही धुआँ शेष
कहीं कुछ नहीं विशेष
और मैं वैसा ही खाली हूँ
जैसा सुबह चला था।"[३८]

एक और द्रष्टव्य है :

"कितना विलम्ब है?
अरे, तुम हँस रहे हो,
इस समय हँसी!
मन प्राण के, उल्लास की समाप्ति से पूर्व
हँसना शोभन नहीं है।
और देर न करो,
देखो—
मेरी उत्सुकता की ऊँचाई का उच्च शृंग हिमालय।"[३९]

इस प्रकार उनके काव्य का पर्यालोचन करने के पश्चात् कहा जा सकता है कि वे पुरानी पीढ़ी के नये कवि थे। भट्ट जी ने प्राचीन संस्कृति के उपासक होते हुए भी नई कविता के प्रयोगों में मानव के प्रति अपने स्नेह को अक्षुण्ण रखते हुए रूढ़ियों पर प्रहार बड़ी ईमानदारी के साथ किया है। इस प्रकार की अधिकतर कविताएँ 'मुझ में जो शेष है' कविता संग्रह में संगृहीत हैं। इन कविताओं में देश के प्रति आस्था का स्वर आज भी अक्षीण है। विशद चिन्तन, गहन जीवन के अनुभवों का सर्वांगीण निरूपण, ग्राह्य के प्रति अडिग विश्वास, सत्य के प्रति लगन इनका अपरिहार्य गुण है। इनमें कवि की परिपक्व एवम् प्रगतिशील चेतना का उन्मेष है। ये कविताएँ कवि की निरन्तर साधना में काव्य-भूमि का नया द्वार खोलती हैं।

वे ऐसे कवि थे जो प्राचीन संस्कारों और परम्पराओं की मर्यादाओं से आवेष्टित होने पर भी आधुनिक मान्यताओं के स्वस्थ संयत रूप को बड़ी तत्परता से ग्रहण कर काव्य-प्रणयन में विश्वास रखते थे। वास्तव में भट्ट जी युगान्वेषी और रस-सिद्ध कवि थे।

[३७] 'विजय-पथ—भूमिका, पृ० ७।
[३८] 'मुझ में जो शेष है'—अनुभूति, पृ० २०।
[३९] वही—अनागत, पृ० २३–२४।

नाटककार रूप

भट्ट जी उच्च कोटि के नाटककार थे। उनके नाटकों का विषय पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक रहा है। नाटककार ने पौराणिक नाटक 'विद्रोहिणी-अम्बा' और 'सगर-विजय' मे आधुनिक रहस्यमयी विषमताओं का पर्दाफाश किया है और प्राचीन कथा को आर्वाचीन विचारों के रंग मे रंग कर भूत और वर्तमान का ग्रन्थि-बन्धन किया है। इस सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल के विचार द्रष्टव्य हैं :

"पौराणिक क्षेत्र के भीतर से वह ऐसे पात्र खोजकर लाये है जिनके चारों ओर जीवन की रहस्यमयी विषमताएँ बडी गहरी छाया डालती हुई जाती है। ऐसी विषमताएँ जो वर्तमान समाज को भी क्षुब्ध करती है।"[४०]

इस सम्बन्ध में भट्ट जी ने भी लिखा है—"हम लोग ससारी जीव है। संसार की परिधि से बाहर देखते हम लोग जरूर रहे है परन्तु यह मै कैसे कहूँ कि वह 'भ्रान्त कल्पना' थी। मै तो केवल इतना ही कहूँगा कि हमे अपने ससार को भी देखना चाहिए। उसके अन्तर मे कितना भीषण युद्ध होता है, छोटी-सी बात पर, इसे भुला न देना चाहिए।"[४१]

डा० नगेन्द्र के शब्दों मे---"आज से पहले भी विचारकों ने पुरुष के अत्याचार और उसके उत्पीडन की भर्त्सना की हे, परन्तु ये विचार अधिकतर पुरुषों के ही थे। आज स्वयं नारी ही इस प्रश्न को लेकर खड़ी हो गई है। अम्बा नारी की इसी प्रतिहिंसा वृत्ति की तीखी तस्वीर है।"[४२]

ऐतिहासिक नाटकों द्वारा नाटककार ने भारतीय जनता के देश-प्रेम, मानवता, त्याग, विवेक, शौर्य, आत्म-बलिदान आदि का चित्र अंकित किया है। ऐतिहासिक नाटकों में 'विक्रमादित्य', 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन', 'शक-विजय' और 'मुक्तिपथ' का नाम उल्लेखनीय हे। भट्ट जी ने इन नाटकों के सम्बन्ध मे विचार व्यक्त किए हैं—"इतिहास में जितना कल्पना का सहारा लेना चाहिए मैंने इन नाटकों मे उससे अधिक का उपयोग नही किया है। भरसक ऐतिहासिकता की रक्षा करते हुए मैंने पुराने पात्रों को नए दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया है।"

इसके अतिरिक्त लेखक ने अपने नाटकों में इतिहास का रूप भी स्पष्ट कर दिया है। "एक व्यक्ति का उत्थान और पतन जिस प्रकार समाज पर अपना प्रभाव छोड़ जाता है उसी प्रकार समाज का विकास और उसका नाश भी इतिहास का एक पैराग्राफ है। इसी प्रकार काल की तीव्रगामिनी सरिता में व्यक्तित्व का, समाज का, देश का और संसार का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ रहा है। वैचित्र्य ही संसार का

४० 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ० ६६६।
४१ विद्रोहिणी अम्बा'—अपनी बात, पृष्ठ १०–११।
४२ 'आधुनिक नाटक', पृष्ठ १२३।

प्रकरण है ।"[४३] बस यही उनके ऐतिहासिक नाटकों का प्रतिपाद्य है ।

'कमला', 'अन्तहीन अन्त', 'नया समाज' और 'पार्वती' उनके सामाजिक नाटक है जिनमें नाटककार ने सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है । भट्ट जी ने इस विषय में लिखा है :

"वस्तुत: यह अर्थ-युग है, जिसमें मनुष्य पूर्णरूप से स्वतन्त्र होना चाहता है । वास्तविक ध्येय उसका स्वतन्त्र होना है—समाज-सापेक्ष, स्वातन्त्र्य, व्यक्ति-सापेक्ष, आर्थिक स्वातन्त्र्य अपने अस्तित्व के प्रति सजगता । जैसे यह दृष्टि परिस्थितिजन्य रूढ़िगत पर्वतों के तामस प्राकारों को चीर कर निकल रही हो । आज जो कुछ टूट रहा है, छिन्न-भिन्न हो रहा है, उसका व्यामोह, नए के प्रति रुचि का आकर्षण, उठने, चलने और दौड़ने की क्षमता में जीवन अपने अर्थ की, अपनी स्थिति की समस्याओं को हल कर लेना चाहता है ।"[४४] यही भाव लेखक के सामाजिक नाटकों में व्यक्त हो रहे हैं ।"[४५]

भट्ट जी का नाट्य-साहित्य भाव और शैली की दृष्टि से सफल है । इनका नाट्य शिल्प पूर्व और पश्चिम का मिश्रण है । नाट्य कला मंजी हुई है । एकांकियों में इस कला ने और अधिक निखार पाया है । इनका एकांकी समाज को उन्नत करने का एक प्रयोग है । इन्होने इनकी रचना कला के लिए नहीं, वरन् जीवन के परिष्कार हेतु की है । भट्ट जी के एकांकी साहित्य के चार उत्थान हैं :

प्रथम उत्थान (सन् १९३५–४० ई०) में भट्ट जी गांधीवादी विचारधारा और सुधारवादी दृष्टिकोण से प्रभावित हैं । इस समय उन्होंने 'दुर्गा', 'उन्नीस सौ पैंतीस', 'वर निर्वाचन' आदि एकांकियों की रचना की है ।

द्वितीय उत्थान (सन् १९४०–४२ ई०) में भट्ट जी यथार्थवादी बने हुये हैं । इस काल में सबसे उत्तम 'जवानी' प्रतीक रूपक लिखा है और शेष सभी एकांकी यथार्थ को लिये हुए है । कुछ एकांकी 'स्त्री का हृदय', 'असली और नकली', 'विष की पुडिया', 'दस हजार', 'बड़े आदमी की मृत्यु' आदि इसके प्रमाण हैं ।

तृतीय उत्थान (सन् १९४२–४६ ई०) में भट्ट जी एक गम्भीर आलोचक और पक्के यथार्थवादी बन गये हैं । इस समय में 'समस्या का अन्त', 'गिरती दीवारें', 'पिशाचों का नाच', 'बीमारी का इलाज', 'आत्मदान', 'मन्दिर के द्वार पर', आदि एकांकी लिखे गये ।

चतुर्थ उत्थान (सन् १९४६–६० ई०) में भट्ट जी ने एक निष्पक्ष एवं तटस्थ अनुवीक्षक की दृष्टि से समाज को देखने का सफल प्रयास किया है । इस काल में उन्होंने 'धूमशिखा', 'विस्फोट', 'नया नाटक', 'नये मेहमान', 'अन्धकार और अघटित', 'मनुष्य के रूप', 'शशिलेखा', आदि एकांकियों की रचना की ।

[४३] 'शक-विजय'—प्रारम्भिक, पृष्ठ ८ ।

[४४] 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन', अपने पाठकों से, पृष्ठ १ ।

[४५] 'नया समाज'—भूमिका, पृष्ठ १ ।

वर्ण्य विषय की दृष्टि से भट्ट जी के एकाकियों को चार मुख्य धाराओं में विभक्त किया जा सकता है :

१. पौराणिक-ऐतिहासिक आदर्शवादी धारा : इस धारा के अन्तर्गत 'आदिम युग और अन्य नाटक' मे संगृहीत एकांकी 'आदिम युग', 'प्रथम विवाह', 'वैवस्वत मनु और मानव', 'कुमारसम्भव', 'क्रान्तिकारी विश्वामित्र', 'शशिलेखा' और 'सौदामिनी' आते है। इनमें भारत के इतिहास एवं सस्कृति का विशद चित्रण है।

२. राजनीतिक राष्ट्रीय धारा एवं समस्यामूलक एकांकी—इनमें नाटककार ने तत्कालीन युग की राजनीति एव समस्याओं को समाधान सहित निरूपित किया है। ऐसे एकांकी 'मन्दिर के द्वार पर', 'सत्य का मन्दिर', 'पर्दे के पीछे', और 'अघटित' एव 'पिशाचों का नाच' आदि है।

३. सामाजिक यथार्थवादी धारा—इन एकांकियों में समाज का यथावत् चित्रण किया है। भट्ट जी के ऐसे एकांकियो की सख्या सबसे अधिक है। इनमे 'स्त्री का हृदय', 'असली और नकली', 'बड़े आदमी की मृत्यु' आदि आते हैं।

४. हास्य-व्यंग्य-प्रधान धारा—इस प्रकार के एकांकी 'सात प्रहसन' में संगृहीत हैं। इस धारा के अन्तर्गत 'बीमार का इलाज', 'दो अतिथि', 'नये मेहमान', 'मुंशी अनोखेलाल', 'नया नाटक' आते हैं। ये सभी एकांकी सामाजिक एवं शिष्ट है।

डा० रामकुमार वर्मा ने भट्ट जी के एकांकियों के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट किए है :

"जीवन के यथार्थ और उसमें निहित संवेदना के ये बड़े कुशल कलाकार हैं। करुणा इनकी सम्पत्ति है और उसका उपयोग ये अपने नाटकों में बड़ी कुशलता के साथ करते हैं। एक ओर तो ये दार्शनिक कथानकों में जीवन के गतिक्रम का अध्ययन करते हैं, दूसरी ओर ये सामाजिक नाटकों में हमारे जीवन की समीक्षा करते हैं। जैसे चित्रकार अपनी तूलिका के स्पर्शों से अपने चित्र में सुख या दुःख को चित्र-रेखाओं में उभार देता है, उसी प्रकार ये अपने संवादों के क्रम में जीवन के सुख या दुःख को स्पष्ट चित्र की भाँति रख देते है।[४६]

प्रो० रामचरण महेन्द्र : "भट्ट जी मूलतः यथार्थवादी दृष्टिकोण लिये हुए हैं। आदर्श उसी सीमा तक है, जब तक वह उच्च जीवन की ओर उन्मुख करे।"[४७]

डा० उदयनारायण तिवारी : "चरित्रों की स्वाभाविकता, कार्य घटनाओं की परस्पर अन्विति भट्ट जी की एकांकी कला के परम आकर्षण हैं।"

भट्ट जी ने तीन ध्वनि-रूपक 'कालिदास', 'मेघदूत', 'विक्रमोर्वशी' भी लिखे। इनके विषय मे भट्ट जी ने स्वयं लिखा है : "रूपक तो स्पष्टतः रेडियो की ही देन है। रूपक में घटनाओं का संकलन एवं विकास 'सूत्रधार' या 'नेरेटर' के द्वारा होता

४६ 'सरस एकांकी नाटक सग्रह',—हिन्दी एकांकी नाटक, पृ० ७–८।

४७ 'हिन्दी एकाकी और एकाकीकार', पृ० १२६।

४८ 'नये एकांकी' पृ० २०।

है। इसके साथ ही नाटक की समय-एकता, पात्र-एकता, देशकाल-एकता तथा अन्य कई बातों का बन्धन भी इसमें नही होता। इसमें तो केवल होता है ध्येय की ओर वक्तव्य का संकलनीकरण।''[४६]

भट्ट जी ने तीन भाव-नाट्य 'विश्वामित्र', 'मत्स्यगन्धा' और 'राधा' लिखकर बडा ही श्लाघ्य कार्य किया है। इन नाटकों की विषय-धारा विशेष रूप से नाटकीय तथा काव्यमयी है। तीनों रचनाएँ कवि के कवित्वमय क्षणों और कल्पना के आवेग का परिणाम है। कवि ने 'विश्वामित्र' भाव-नाट्य में बडे ही मनोवैज्ञानिक ढंग से मानव-द्वन्द्व को प्रस्तुत किया है जिससे पौराणिक पृष्ठभूमि और परिवेश पाठक के मन से प्रायः लुप्त हो जाता है। 'मत्स्यगन्धा' में नारी के यौवन की उद्दाम तरंगों को चित्रित किया है। यह भट्ट जी का सबसे प्रिय भाव-नाट्य है। इनके विषय में डा० नगेन्द्र ने अपने विचार व्यक्त किये हैं -- '' 'मत्स्यगन्धा' और 'विश्वामित्र' दोनों की कथावस्तु में साम्य है—यद्यपि दोनों के मूल में एक ही संघर्ष नहीं है। यौवन की दुरन्त आकाक्षा—समस्त संसार को अपने में समा लेने की उत्कट अभिलाषा का नर्तन 'मत्स्यगन्धा' की प्रेरक भावना है।''[५०]

'राधा' भट्ट जी का काल्पनिक भाव-नाट्य है। इन तीनों भाव-नाट्यों की घटना और प्रवाह के सम्बन्ध में भी डा० नगेन्द्र ने लिखा है ... ''उनके 'मत्स्यगन्धा', 'विश्वामित्र' और 'राधा' भाव-नाट्य हैं। उनमें घटनाएँ विरल हैं। अतः इन नाटकों में भट्ट जी की तरल प्रवाहमान भावुकता, मनोरम शब्दावली और रंगीन कल्पना-चित्रो में खूब खुल कर खेली है। यह तो मानना ही पड़ेगा कि कहीं-कहीं कल्पना विलास और भाषा की रेशमी जाली में उलझ कर अपनी तीव्रता खो बैठी है।''[५१]

भाव-नाट्यलोक में भट्ट जी का विशिष्ट स्थान है और गीति-नाट्य में तो उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी ही नहीं है। भट्ट जी के गीति-नाट्य 'अशोकवन-बन्दिनी और तीन गीति-नाटक' में संगृहीत हैं। इन गीति-नाटकों में जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण हुआ है। ये चारों नाटक अपने युग की विकसित मनोदशा के रूप में चित्रित हुए हैं। सीता की अन्तर्द्वन्द्व स्थिति परवशता में आत्मनिपीडन एवं जागृति है। उसी प्रकार तुलसीदास मानस-संघर्ष और मनोदशाओं के उतार-चढ़ाव का चित्रण उपस्थित करता है। 'गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण' नाटक में जीवन के उन उद्धत क्षणों का विहगावलोकन है जिन्हें उन्होंने कभी सर्वोत्तम माना था। इस नाटक में मनोदशा का बहुत सुन्दर रूप प्रतिफलित हुआ है। 'अश्वत्थामा' प्रतिहिंसा के क्षणों का अत्यन्त उद्ग्रीव रूप है। इन्ही के आधार पर डा० नगेन्द्र ने लिखा है : गीति-नाट्य के क्षेत्र

४६ कालिदास—'तीन ध्वनि-रूपक'—प्रारम्भिक, पृ० २।
५० 'आधुनिक हिन्दी नाटक', पृ० १०४।
५१ 'एकांकी लेखक-परिचय', पृ० ७।

में उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है।"[५२]

संक्षेप मे भट्ट जी ने इन भाव-नाट्यों और गीति-नाट्यों मे कवि ने पौराणिक या ऐतिहासिक कथा को केवल सूत्र-रूप मे ही ग्रहण किया है। कवि ने अपनी कल्पना के द्वारा कथा को मनोवैज्ञानिक रूप दे दिया है। कोई भी कथानक कवि ने मूल रूप में स्वीकार नहीं किया। यही कारण है कि नाटकों के पात्र प्राचीन होते हुए भी पाठकों को नवीन ही दृष्टिगोचर होते है। वे सब आधुनिक युग की समस्याओं और मानव की मनोदशा का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अत्यधिक चारुता एव कौशल के साथ कर रहे है। भट्ट जी ने भी पात्रों के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किए है— "इतिहास मे कुछ पात्र इतने ऊँचे पहुँच जाते है कि उनको नीचे उतार कर लाना अशक्य हो जाता है। वैदेही भी हमारे इतिहास का वैसा ही शिखरस्थ पात्र है। वह विवशताओं, परिस्थितियों मे पिसकर भी ऊपर ही ऊपर उठता रहता है। वहाँ चरित्र नही वे घटनायें है जहाँ कला सार्थक होती है।"[५३]

भट्ट जी ने नाट्य शास्त्र की प्रत्येक विधा की रचना अत्यधिक कौशल के साथ की है। उन्होंने इस विषय में कहा भी है—"नाटकों के क्षेत्र में भी मैंने अनेक प्रयोग किये। ये सब प्रयोग अभिव्यक्ति-समता के लिए ही किये गये। विषय की दृष्टि से ही नहीं, शैली प्रयोग भी मैने कितने ही किये है। एकांकी नाटक, भाव-नाट्य, रूपक, काव्य-रूपक, रंग नाटक, झाँकी, आदि सभी शैलियों को मैंने अपनाया है।"[५४]

भट्ट जी के नाटकों में युग का चित्र सही-सही दृष्टिगोचर होता है। इसी-लिए उन्होंने युग-बोध के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किए हैं—"युग-बोध शब्द जीवन के साथ-साथ चलता है। नये मूल्य हमारे जीवन में नये प्रश्नों के रूप में आते हैं। निश्चय ही पुराने लोग पुराने युग-बोध को ही स्वीकार कर सकते थे। यह स्वा-भाविक भी है। आज के युग-बोधी लेखक कल बासी हो जायेंगे, क्या मैं गलत कह रहा हूँ ?"[५५] इसीलिए भट्ट जी के नाटकों में युग की छाया बोलती हुई दृष्टिगोचर होती है।

भट्ट जी ने अपनी रचनाओं के स्रोत के सम्बन्ध में लिखा है—"मेरी रचनाओं की पृष्ठभूमि में बाह्य और आभ्यन्तर, दोनों का सहयोग है। फिर भी मैंने माना है कि समाज के प्रति साहित्य का जो देय है वह पूर्ण होना चाहिए। साहित्य समाज के लिए है, जनता के लिए, नदी, झरने, बाग, पर्वत, वन-माला का सौन्दर्य जैसे जीवन के लिए है, जीवन को प्रोद्दीप्त करने, उसे उल्लसित करने के लिए है, इसी प्रकार

५२ 'उदयशकर भट्ट . व्यक्ति और साहित्यकार'—श्री उदयशकर भट्ट : सच्चे ब्राह्मण, निर्लोभ और स्वाभिमानी, पृ० २२।

५३ 'अशोकवन-बन्दिनी तथा अन्य गीति-नाटक'—किञ्चित् वक्तव्यम्, पृ० ख।

५४ 'उदयशकर भट्ट : व्यक्ति और साहित्यकार', पृ० २८।

५५ वही, पृ० २९।

साहित्य भी जीवन के लिए है, जीवनीय शक्तियों को विकसित करने के लिए है।" बस उनके काव्य और नाटकों का भी मूल मन्तव्य यही है।

भट्ट जी स्वभाव से कवि थे। परन्तु नाटकों मे विशेष अनुराग था। इसीलिए नाटकों के क्षेत्र में अनेक सफल प्रयोग कर उन्होंने यश प्राप्त किया है। उन्हें अधिक सफलता ऐसे नाटकों मे मिली है जिनमें उनकी प्रतिभा काव्य और नाट्य दोनों के समन्वित रूप मे अभिव्यक्त हुई है। डा० नगेन्द्र के विचारानुसार, "भट्ट जी के मन की कविता रंग-रूप से जगमग, दूर वैभव के अतीत में ले जाती है और उनकी नाट्य-चेतना किसी समय को उठाकर संघर्ष पैदा करने का प्रयत्न करती है।"[५६]

वास्तव मे भट्ट जी के साहित्य के मूल्य तथा महत्ता की कहानी उनके युग-प्रेरक साहित्यकार के व्यक्तित्व में अन्तर्हित है। उन्होंने अपनी समसामयिक समस्याओं और काव्य-प्रवाह को अनुभूति से प्रवाहित किया है। उनका प्रेरणास्पद व्यक्तित्व एव प्रभाव हमारे आधुनिक साहित्य की विविध धाराओं में झाँक उठा है। उनका 'स्व' दूसरों की सम्पत्ति एवं संसार-व्याप्त है। वे प्रत्येक मनुष्य की क्रिया-कलाप, राग-द्वेष, हर्ष-मोह से अभिभूत होकर उसके सुख-दुःख का अनुभव करते थे।

भट्ट जी प्राचीन गौरव में भावी आदर्श का दर्शन करके इस संसार को स्वर्ग बनाने के इच्छुक थे। नर की प्रतिष्ठा के वे भक्त थे और मानवोचित गुणों की व्याख्या और जीवन में उनकी प्राप्ति की चाह ही उनके साहित्य का ध्येय है। शोषितों, निर्धनों, दुःखी लोगों के प्रति संवेदनशील चिन्तन ही उनके काव्य और नाटकों की भाव-भूमि है।

वे आशावादी थे। निराशा आकर उन्हें झकझोरती तो अवश्य थी परन्तु शीघ्र ही विलीन हो जाती थी। इसीलिए उनकी कृतियों में एक आशा स्फुरित करने वाला भाव मिलता है और एक स्वर्गीय मनोरमता रमती दीख पड़ती है।

जीवन की सम्पूर्णता में उपलब्धि भट्ट जी के काव्य और नाटकों की अद्भुत विशेषता है। उनका विश्वास है कि जीवन की गति को मानवता-कानन की हरित-श्याम छाया में विराम मिलना चाहिए और विक्षोभ की शक्त दीप्ति को चाँदनी की धुली हुई तृप्ति।

उनके काव्य और नाटक अन्तर्द्वन्द्वों एवं अन्तर्विरोधों का उद्घाटन करते हैं और अन्विति से प्रवाहित होने वाले सौंदर्य स्रोत से जगत् को आप्यायित करना ही उनका परम लक्ष्य है। जीवन-दर्शन की स्पष्टता के कारण उनका काव्य एवं नाटक एक निश्चित दिशा की ओर प्रवाहित होते हुए दृष्टिगोचर होते हैं, उनके विविध भावों में एक अनुस्यूत की प्रतीति होती है। उनकी काव्य लहर भी अत्यधिक गम्भीर है क्योंकि वह अगाध अनुभूति से उठी है।

उनकी कृतियों में उनका विचार-वैभव और भाव-सौष्ठव, चिन्तन-धारा और कल्पना-शक्ति के साथ-साथ अभिव्यंजना-कौशल और पाण्डित्य-प्रकर्ष भी दर्शनीय है।

५६ 'एकांकी लेखक-परिचय', पृ० ७।

भट्ट जी के काव्य और नाटकों में उनकी भाव-धारा प्रारम्भ से अन्त तक शान्त और स्निग्ध गति से चलती रहती है। फेन-बुद्बुद् की भाँति क्षण-क्षण मे उद्भूत और विलीन होने वाले दोष या अज्ञान से पुष्टि पाने वाले सामयिक कटु उद्गारों को उन्होंने कोई महत्त्व नही दिया है।

भट्ट जी के नाटकों में भाषा का प्रवाह, भावो का वैभव और गहन चिन्तन की अद्भुत विनियोजना चकित कर देने वाली है। उनकी कविता रस की उस धारा के विकास में योगदान देती है जो जीवन की गहराई में उतर कर उन मानवीय मूल्यों का प्रकाशन करती है जो अधिक स्थायी होते है। इस सम्बन्ध मे भट्ट जी को सम्भवत: महाकवि कालिदास से अधिक प्रेरणा मिली है। इसीलिए वे अपनी कविता में अन्तर-बाह्य, आदर्श-यथार्थ, सौन्दर्य-जीवन आदि के चित्र अंकित करने मे अधिक सफल हुए है।

आर्य संस्कृति के सहृदय अनुशीलन ने भट्ट जी की वाणी को ऐसा पुनीत कर दिया था कि वे सर्वत्र मानवता की विजय का मगल-उद्घोष करने में लीन दिखाई पड़ते हैं। इसमें सन्देह नही कि भट्ट जी पूर्ण कलाकार थे। उनकी निष्ठा, उनकी सुरुचि, उनकी भावुकता, उनकी मस्ती कलापूर्ण थी। भगवान् ने उनका रूप और स्वभाव दोनों ही कलामय बनाये थे। इसीलिए उनके पास गतिशील कल्पना, सरस भाव और वैविध्यपूर्ण रचना-कौशल था। अत: इन्हीं गुणों के आधार पर भट्ट जी का हिन्दी लोक मे रससिद्ध कवि और महान् नाटककार का रूप सदैव अक्षुण्ण एवं गौरवशाली रहेगा।

चतुर्थ अध्याय

भट्ट जी की काव्य-कृतियाँ

भट्ट जी रस-सिद्ध कवि, सफल मुक्तक-रचयिता और प्रबन्ध-कवि एवं मधुर गीतकार थे। उनकी काव्य-कृतियाँ युग का यथार्थ और आभ्यन्तरगामी पवित्रता लिये हुए हैं। इसीलिए उनमें सरलता, स्पष्टता अधिक मात्रा में व्याप्त है और मनोग्रन्थियाँ बहुत कम। इसके अतिरिक्त उनकी प्रारम्भिक कविताओं में हल्की भीनी सुगन्ध अवश्य है परन्तु मन को पूर्ण आकृष्ट करने की क्षमता कुछ दुर्बल।

उन्होंने 'खण्ड-काव्य', 'लघु-काव्य', 'मुक्तक' और अधिकतर फुटकर कविताएँ लिखीं, जो विभिन्न काव्य-संग्रहों में संगृहीत हैं। इनमें कवि की बहुमुखी प्रतिभा और मानवता के उत्कर्ष-विधायक गुणों का सम्यक् आकलन विद्यमान है। वास्तव में भट्ट जी ने मानवीय गुणों का अनुशीलन बड़ी तन्मयता और श्रद्धा-भाव से किया है। किसी कवि के काव्य के पूर्ण परिचय हेतु उसकी प्रत्येक काव्य-कृति का आकलन वर्ण्य-विषय के आधार पर आवश्यक है। अतः वर्ण्य-विषय के आधार पर भट्ट जी की काव्य-कृतियों को निम्न प्रकार से विभक्त किया जा सकता है :

१. खण्ड-काव्य :
   (अ) तक्षशिला, (ब) मानसी, (स) कौन्तेय-कथा।
२. लघु-काव्य :
   (अ) अन्तर्मन्थन, (ब) चार चित्र
३. मुक्तक-काव्य :
   (अ) कणिका।
४. मुक्तक काव्य-संग्रह :
   (अ) राका, (ब) विसर्जन, (स) अमृत और विष, (द) युगदीप (पूर्वापर), (य) यथार्थ और कल्पना (पूर्वापर), (र) इत्यादि, (प) मुझ में जो शेष है।

तक्षशिला (खण्ड-काव्य—सन् १९२८ ई०)

भट्ट जी ने गुप्त जी की 'भारत-भारती' से प्रभावित होकर इस खण्ड-काव्य की रचना की थी। इसकी भाषा सुथरी, गठित और शब्दों मे माधुर्य लिये हुए है। प्रसाद, ओज, गाम्भीर्य और शब्दोचिती आदि जो अच्छे काव्य मे होने चाहिएँ प्रायः इसमें विद्यमान हैं। ऐतिहासिकता का रक्षण चतुरता से किया गया है। रचना सरस और वर्णन-शैली हृदयग्राही है। इस खण्ड-काव्य में भारत का भव्य अतीत बोल रहा है—"उसके एक-एक भग्न में मुझे भारत की आत्मा झलकती दीखी। एक-एक खण्डहर मानो कोई पुराना किन्तु अस्पष्ट तथा करुणा-भरा गीत गा रहा था। एक-एक स्तूप मे, एक-एक भग्न भूमि मे करुणा की सूक्ष्म लहर उठ रही थी।"[१]

इसके अतिरिक्त भट्ट जी ने तक्षशिला के खण्डहरो से दर्दभरी कहानी भी सुनी—"मुझे तक्षशिला के खण्डहर अपनी दर्दभरी कहानी सुनाते मालूम पडते हैं और मानो आज भी अपनी वैभव-कहानी याद करके तथा अपनी हीनावस्था पर दुःखी होकर जमीन मे गड़ गये है।[२]

इन्ही भावों से प्रभावित होकर भट्ट जी ने इस कृति की रचना की है। इस खण्ड-काव्य के प्रथम स्तर में तक्षशिला की भूमिका है। इसके अनन्तर नगर का भूगोल, उसकी स्थापना, उसकी बनावट तथा उसका वैभव वर्णित है। द्वितीय और तृतीय स्तर मे महाराज भरत के छोटे भाई महाराजा बाहुबली का राज्य-वर्णन तथा अद्भुत वीरता और एकान्त साधुता के कारण महत्त्वाकांक्षी भरत के प्रति उपेक्षा भाव, दोनों भाइयों का परस्पर द्वन्द्व-युद्ध ही इन दो स्तरों का सार है। चतुर्थ स्तर में अलक्षेन्द्र का आक्रमण, चन्द्रगुप्त का नन्दवंश द्वारा निर्वासित होकर तक्षशिला की ओर प्रस्थान, आम्भी को पद-दलित करके मौर्य साम्राज्य की स्थापना, बिन्दुसार का राज्यारोहण और तक्षशिला में विप्लव होना और सुषिम का राज्य से उपरत होना आदि का वर्णन है। पंचम स्तर में अशोक का शासन, नगर-व्यवस्था, प्राचीन यूनिवर्सिटी का पुनरुद्धार आदि की कथाएँ हैं। षष्ठ स्तर में अशोक का राज्य-विस्तार, बौद्ध-धर्म-दीक्षा, कुणाल का तक्षशिला-शासन, तिष्यरक्षिता द्वारा कुणाल का निर्वासित और अन्धे होकर अपनी स्त्री कांचनमाला के साथ गिरि-नदी-कानन, जन-पदों में घूमना, मगध राज्य में जाकर पिता से मिलना, अशोक का न्याय और कुणाल के पुत्र सम्प्रति का तक्षशिला का शासक बनाया जाना आदि कथाएँ है।

इसके पश्चात् परिशिष्ट स्तर में ग्रीक, कुशान, पार्थियन, हूण राजाओं के आक्रमण व तक्षशिला का ध्वस लिखा है। उपसंहार में तक्षशिला वैभव का तथा उसका पतन वर्णित है।

'तक्षशिला' काव्य की रचना का विषय भारत का अतीत है। इसमें अतीत-गौरव

[१] भट्ट जी : 'तक्षशिला'—भूमिका, पृ० १।

[२] वही, पृ० १–२।

और तक्षशिला के खण्डहरों का विशद और भावमय चित्रण किया गया है। यह सद्-वृत्तियों का उद्बोधनात्मक काव्य और नवीन जागृति का आह्वान है।

मानसी (खण्ड-काव्य—सन् १९३३ ई०)

मानसी में विश्व का यथार्थ दर्शन है। उसमें सुख-दुःख का उद्गम, उसकी स्थिति और उसके व्यापक रूप की अनुभूतिमय विवेचना है :

"कुसुम अरे, देखो दुःखों को,
नर ने उपजाया निज कर से
अपने आप जला भी दी है
इसने चिता साध के पर से।"[3]

कवि की जिज्ञासा भी स्पृहणीय है :

"थे तारे गिन सके न मेरी
आहों को, ऋतु बदल न पाया
मैं हूँ कौन, बोलता भीतर
जो मेरा जीवन बन आया।"[4]

कवि प्रकृति के उल्लास को देखकर आत्म-विभोर हो जाता है। फूल हँसते हैं। सरिता आनन्द से बही जा रही है और कोकिला भी मस्ती में अपना गान गाती है :

"मैं न जानती जग की रानी
क्यों गाती हूँ—क्या गाती हूँ।"[5]
"जाओ, गाने दो औरों को
रहा किसी का नहीं जगाना।"[6]

'मानसी' का कुहू-गीत हिन्दी लोक की अनुपम रचना है।

मानसी में जहाँ दैव-वाद की भर्त्सना है वहाँ परोक्ष शक्ति का सर्वथा विस्मरण भी नहीं है :

"चलते जाओ, बढ़ते जाओ
खींच रहा कोई आकर्षण।"[7]

मानसी की काव्य-धारा मानव को अपनी शक्ति का परिचय और वर्तमान कर्म-क्षेत्र में साहस के साथ प्राकृतिक नियमों के पालन की प्रेरणा देती है। भट्ट जी ग्रीक क्लासिकल कवि के सदृश हिन्दी-साहित्य में सुख-दुःख का उद्घोष करके उसे

[3] 'मानसी'—विवशता, पृ० ३३।
[4] वही, पृ० ८१।
[5] वही, पृ० २२।
[6] वही, पृ० २६।
[7] वही, पृ० ५६।

ज्योतिर्मय बनाना चाहते है । 'मानसी' मे प्रकृति ने अपना रूप सँवारा है जो कर्त्तव्य प्रेरणा को जागृत करता है । उसमें मानव को निश्चित रूप से आशामय सन्देश मिलता है । वास्तव में मानसी दु:ख और पीड़ा को हँसी, आशा और आत्म-गौरव की विभूति से भर देना चाहती है ।

'मानसी' में परोक्ष-संकेत द्रष्टव्य है :

> **"वह अपनी आँखों के मद से**
> **सींच रही है जग फुलवारी**
> **उसके कभी मुस्कराते ही**
> **हँस उठती है क्यारी-क्यारी ।"**[८]

साथ ही वह जगत् को जीवन की इति भी नही मानता :

> **"यह पथ अभी विराम कहाँ है**
> **चलते जाओ, चलते जाओ ।"**[९]

संक्षेप में, कवि ने मानसी में जीवन-समस्याओं की अन्तर-धारा को स्पर्श कर उसे आशा, उत्साह और कर्म के पथ पर अग्रसर किया है । सामयिक विचार-लहरी का स्वर उसमें स्पष्ट गूँज रहा है, प्रकृति में फैले हुए यथार्थ को वह मानव-जीवन में ढालना चाहता है । कहीं-कहीं वह आवेग न रहकर प्रबुद्ध प्रेरक जरूर बन गया है । परन्तु इससे मानसी की राग-व्यथा पर कोई प्रभाव नहीं पडा है । इसमें कवि की कल्पना भी सरल है । वस्तुत: यह भट्ट जी की अनुपम कृति है ।

कौन्तेय-कथा (खण्ड-काव्य—सन् १९५० ई०)

भट्ट जी ने 'कौन्तेय-कथा' की रचना भारवि के प्रसिद्ध काव्य 'किरातार्जुनीय' के आधार पर नवीन दृष्टिकोण से की है । प्रथम सर्ग 'हिमालय' मे हिमालय को शिव तथा शिव-संस्कृति का मूल स्रोत मानकर उस पर उत्पन्न मानव सृष्टि का वर्णन किया है । शेष कथा महाभारत के आधार पर है । जुए मे हार कर दु:खी पाण्डव लोग द्रोपदी के साथ जब द्वैतवन में रहते थे, उस समय एक बार वेदव्यास महर्षि वहाँ आये । उन्होंने पाण्डवों की दुरवस्था देखकर बहुत दु:ख प्रकट करते हुए कहा कि मदान्ध कौरवों से बँटवारे की आशा करना व्यर्थ है, अत: युद्ध अवश्यम्भावी है । इसलिए मैं तुम्हें प्रति-स्मृति मन्त्र विद्या देता हूँ । इसकी सहायता से अर्जुन इन्द्र और युद्ध के आराध्य देवता रुद्र को प्रसन्न कर सकेंगे और उनसे अस्त्र प्राप्त कर युद्ध में विजयी होंगे ।

अर्जुन युधिष्ठिर की आज्ञा प्राप्त कर इन्द्रनील पर्वत पर इन्द्र की उपासना करने चले गये । इन्द्र ने प्रसन्न होकर अर्जुन से शिवोपासना के लिए कहा । फलत: अर्जुन शिव की उपासना में तत्पर हो गये । परीक्षार्थ शिव किरात के वेश में वहाँ

८ 'मानसी'—दर्शन, पृष्ठ ७ ।
९ वही, पृष्ठ ५९ ।

आये और शूकर पर प्रथम बाण चलाने के वाद-विवाद में अर्जुन का उनसे युद्ध हुआ :

जितने प्रवेग से अर्जुन सन् सन् शर छोड़ रहे थे।
उन्मत्त किरात सकौतुक निर्वेग छिन्न शर करते।[१०]

इसके अतिरिक्त :—

क्रोधाकुल जितने अर्जुन उतने किरात पुलकित थे।
वे देख रहे थे लीला अर्जुन के रण-कौशल की।[११]

युद्ध के पश्चात् शिव, अर्जुन से प्रसन्न होकर कहते हैं :

हे वत्स, परीक्षा में तुम उत्तीर्ण हुए हो मेरी,
सुरपति ने मुझको सारा विस्तृत सन्देश दिया है।
मैं परख रहा था तुममें संयम कितना, बल कितना,
सचमुच तुम जीत सकोगे, कौरव दल को निज बल से।[१२]

इस पर अर्जुन कहता है :

हे देव, आप जनता के शिव के कारण ही शिव हैं।
संहार किया करते हैं तामस भावों का जग में।[१३]

शिव कहते हैं :

मेरी ही शिव-संस्कृति ने मानव को शक्त किया है।
अन्यथा जन्म पाते ही वे लड़-कटकर मर जाते।[१४]

अन्त मे शिव ने अर्जुन को अपराजेय अस्त्र दिये।

इस काव्य में कवि ने शिव-संस्कृति का प्रतिपादन गम्भीर आस्था के साथ करते हुए अपने विचार व्यक्त किये हैं :—

"प्रस्तुत काव्य में मैंने शिव तथा अर्जुन की कथा द्वारा शिव संस्कृति का चित्रण करने का प्रयास किया है।[१५]

अन्तर्मन्थन (चार-चित्र : लघु-कथा—सन् १९६० ई०)

इस लघु काव्य मे कैकेयी, रावण, वैदेही और राम के अन्तर्मन्थन के चार चित्र है। इनमें इन महानुभावों के विशेष संघर्ष-क्षणों के चिन्तन का चित्रण है। इतना तो सत्य है कि ऐसे क्षण प्रत्येक के जीवन में आते हैं। अतः इनके जीवन में भी उनका आना अवश्यम्भावी था। शब्द-योजना, तर्क का क्रम, अभिव्यक्ति चाहे जो कुछ

[१०] 'कौन्तेय-कथा', पृष्ठ ६७।
[११] वही, पृष्ठ ६७।
[१२] वही, पृष्ठ ६१।
[१३] वही, पृष्ठ ६३।
[१४] वही, पृष्ठ ७५।
[१५] वही—निवेदन, पृष्ठ ६।

रही हो परन्तु सोचने का ढंग आत्म-चिन्तन-प्रधान ही रहा होगा।

चित्रकूट में राम, सीता और लक्ष्मण को वनवासी अवस्था में देखने के बाद समय-समय पर अभिव्यक्त कैकेयी के अन्तर्मथित शोकोद्‌गार द्रष्टव्य है :

राम भरत को कभी न माना दो कभी,
एक शाख के फूल सुगन्धित मानती।[१६]
मन जलता तन जलता जलते श्वास हैं,
धूँ, धूँ करके जलता यह संसार है।
सोच नहीं पाती हूँ यह क्या हो गया,
कोई तो कुछ कहे कि अब मैं क्या करूँ?[१७]

स्वभाव से उद्धत एवं अहम्मन्य होने के कारण मूर्च्छा से जागते हुए रावण कहता है :

निर्बल है मेरा वर्तमान संबल भी मेरे पास नहीं,
बीते जीवन के तिरस्कार का ग्रीष्मानल, मधुमास नहीं।[१८]

सीता-वनवास के समय ऋषि वाल्मीकि के अनुरोध पर अपने पति के पास जाने को तैयार होती हैं और स्वय राम भी सीता के लौटने की प्रतीक्षा में उत्सुक थे, किन्तु इस पर भी दोनों मिल नहीं पाते :

दण्ड दिया मुझको निज आत्मा ही समझ
स्वयं कष्ट सहता है ज्यों नर अपरहित।[१९]

बालि-वध, सीता-भू-प्रवेश एवम् शम्बूक-वध के कारण राम उद्विग्न हैं :

आज सोचता हूँ वह मेरा सीता-त्याग अगर्हित था क्या,
औ शम्बूक तपस्वी का वध व्यक्ति रूप से उचित हुआ था ?[२०]

यह कृति भट्ट जी को अत्यधिक प्रिय थी। इसके सभी पात्र पूर्व धारणाओं से प्रायः भिन्न हैं। इसमें भट्ट जी ने रावण को अन्तर्मुखी अधिक चित्रित किया है, ऐसा पूर्व कवियों द्वारा नहीं किया गया :

अनुभव के इत कह रहे जो कर्मों के चरण दूर उनसे,
जलते हैं चिन्ता के श्मशान आगत की आग दूर उनसे।[२१]

अन्त मे रावण युद्ध में पहुँच जाता है :

फिर भी अपराजित अजित अहं अप्रतिहत उद्धत अथ सभाव,
इति-सा उदग्र, यश-सा चंचल, आश्वस्त सिंह, नद-सा उफान।

१६ अन्तर्मन्थन, पृष्ठ ३।
१७ वही, पृष्ठ ५।
१८ वही, पृष्ठ ५०।
१९ वही, पृ० ६६।
२० वही, पृ० ८५।
२१ वही, पृ० ५०।

जा पहुँचा रण में प्रण-सा दृढ़ कल्पित जय-यश की सरा पूर्ण,
निज और मोड़ने को भविष्य पूरी करने इच्छा अपूर्ण।[२२]

रावण का चिन्तन भी दर्शनीय है :

मुझको चिन्ता है नहीं तनिक वैभव चरणों का अनुचर है,
कामना दबाती पैर रही पौरुष उमंग का सहचर है।
मैं नहीं भीख में लाया हूँ है भाग्य स्वयं-निर्मित मेरा,
जिस जगह चरण रक्खे मैंने उस जगह विभव ने पथ हेरा।[२३]

भट्ट जी ने कैकेयी, रावण, वैदेही और राम का अपार्थिव रूप प्रस्तुत किया है। वह जो महाकाल की सीमाओं का उल्लंघन कर हमारे वर्तमान विचारों से तादात्म्य रखता है। इस लघु-काव्य में कहीं कैकेयी राम के वन-गमन की पीड़ा से दु:खी है तो कहीं रावण अपनी पराजय और वंश-विनाश से विक्षुब्ध है। यही स्थिति राम और वैदेही की है :

वैदेही—घटित हो रही आज अकल्पित कामना,
सुनती हूँ जो नई-सी बात यह—
पिता कह रहे वाल्मीकि—बेटी सुना—
व्यग्र राम हैं पुनः स्वीकरण के लिए,
तुम पवित्र हो गंगासम निर्मल अमल
साक्षी पावक, पवन, वरुण, दिन-मणि अरुण,
साक्षी तारक, चन्द्र, कालवलयित धरा।[२४]

राम— कुण्ठित है विवेक भी मेरा, हृदय न उत्तर दे पाता है।
प्राण-वाहिनी शिरा जर्जरित, मूलहीन है तर्क-वल्लरी।
ज्ञान असंख्य निर्झरों के सम दृष्टि-ऊर्मियों में बहते हैं।
सभी दिशाओं को पथ जाते सभी ओर हैं चिह्न पैर के।[२५]

और भी— जीवन को आगे करने को मानव के तर्कों का क्रम है,
चिन्तन द्वारा जीर्ण कर्म की केंचुल तज वह आगे बढ़ता।
जिन कर्मों के परिणामों से जीवन-प्राणों को बल मिलता
वे ही प्रेरित करते रहते मानव को आगे बढ़ने हित[२६]

वस्तुतः यह रचना मौलिक है। इसमें भट्ट जी की आत्मा मुखरित हो रही है। उन्होने अपने चिन्तन और कल्पना के आश्रय से प्रत्येक पात्र को नवीनता के रंग मे रंग दिया है। रावण को तो पूर्णतया नवीन रूप सौंप दिया है। यह नवीनता ही

[२२] वही, पृ० ५२।
[२३] वही, पृ० ४६।
[२४] वही, पृ० ५५।
[२५] वही, पृ० ८७।
[२६] वही, पृ० ९३।

इस कृति की बेजोड़ एवं अनुपम विशेषता है।

कणिका (मुक्तक-माल–सन् १९६१ ई०)

'कणिका मुक्तक-माल भट्ट जी के भाव-कणों का संग्रह है। मुक्तकों का इतिहास बहुत पुराना है। एक भाव को एक ही श्लोक या मन्त्र में कह देने के कारण वेदों एवम् संस्कृत के अन्य ग्रन्थों में इसके रूप मिलते है। शृंगार-रस-प्रधान 'आर्यासप्तशती', 'अमरुकशतक' आदि ग्रन्थ मुक्तको के प्रचलन का प्रमाण है।

भट्ट जी ने इस सम्बन्ध में लिखा है—"मुक्तक लिखने का मेरा प्रयास बहुत पुराना है। ठीक समय तो याद नही, फिर भी मै समझता हूँ जब मैंने मुक्तक लिखना प्रारम्भ किया उन दिनो हिन्दी में इस ढंग के मुक्तक लिखने की परिपाटी शायद नही चली थी।"[२७]

हिन्दी में कबीर, तुलसी, रहीम, वृन्द आदि कवियो की रचनाओं में मुक्तकों के विभिन्न रूप मिलते हैं। भट्ट जी के मुक्तक अनुभूतिपरक अधिक हैं :

दिन पिघले गिन-गिन काट रहा हूँ मैं,
काले उजले सब छाँट रहा हूँ मैं,
स्मृतियों में बस गये उन्हें चुन-चुन कर,
आने वालों को बाँट रहा हूँ मैं।[२८]

इस सम्बन्ध में भट्ट जी के विचारानुसार—आज हिन्दी में मुक्तकों का काफी प्रचलन है और इस दिशा में हिन्दी-साहित्य पर्याप्त समृद्ध भी हुआ है। मुझे मुक्तक लिखने की प्रेरणा कैसे हुई इसका कोई उत्तर मेरे पास नही है।[२९]

कवि के मुक्तक भी भाव और भाषा की दृष्टि से समृद्ध हैं :

देते हो समुपदेश बहुत भोले हो,
हर नए दोष देख सदा बोले बोले हो,
अपने कभी झाँक कर भीतर भी देखो तो,
कितना हलाहल इन प्राणों में घोले हो।[३०]

भट्ट जी का मानव वादी दृष्टिकोण कितना भावमय है :

खेती करो धरा पर जीवन की जीने की,
बोओ आस्था बीज प्रेम का श्रद्धा बल का,
तपने दो जीवन धरती को प्राण तपन से,
वहीं उगेगा कल्प-वृक्ष मानव के फल का।[३१]

२७ 'कणिका'—भूमिका, पृ० १।
२८ वही, पृ० १।
२९ वही पृ० २।
३० वही, पृ० २५।
३१ वही, पृ० २०।

भट्ट जी के मुक्तकों में जीवन-दर्शन, मानवता, अनुभूति, उदात्त भावों के प्रति गम्भीर निष्ठा, रस का परिपाक एवं अभिव्यक्ति का कौशल सर्वत्र दीख पड़ता है। वास्तव मे भट्ट जी के मुक्तक बडे भावमय और श्लाघ्य हैं।

राका (कविता-संग्रह सन्—१९३० ई०)

'राका' लीरिक काव्य में भट्ट जी का प्रथम प्रयास है। इस पुस्तिका मे जीवनोत्साह के गीत प्राय. नही है। हाँ, निराशा, विवशता और घुटन के भाव अधिक मात्रा मे है, परन्तु निराशा भी बहुत अधिक कडवी नहीं है, वह भी स्निग्ध और स्वस्थ है। कवि ने कहा भी है :

देख लिया जीवन का मेला
जीवन मेला सपना री।[३२]

कवि अज्ञात सत्ता के प्रति अपने भाव व्यक्त करता है :

मैं क्या बतलाऊँ कहाँ वास
अति दूर क्षितिज से दूर दूर
अनुमान—दौड़ थक हुए चूर
होते समाप्त जब कि गरूर
रहती जग की जगमग निराश –
उस ओर उधर कवि का निवास।[३३]

इस प्रकार की कविताएँ जीवन में शिथिलता उत्पन्न अवश्य करती हैं परन्तु इस कवि में शुभ मालूम हुई हैं :

किसने तुझको बहलाया,
जो राह भूल कर आया।
इन काँटों की दुनिया में
कह किसने जी बहलाया।[३४]

कवि ज्ञानी और द्रष्टा माना जाता है। कवि अनुरंजक कदापि नहीं है, विश्व-यश का प्रयोक्ता अवश्य है। भट्ट जी इस कविता-पुस्तक में इस सत्य पर आरूढ़ चाहे न हों, परन्तु उसकी पहचान उन्हें हुई अवश्य है :

मैं हूँ इस विराट तन्त्री की तारों का मन्द स्वर,
जिसकी भेद भरी ध्वनि से जग गूंज रहा उत्सुकतर।[३५]
इस जीवन के रथ पर मुझको किसने बिठलाया है,
आया कौन दिशा से जाता समझ नहीं पाया है ?

३२ 'राका'—जीवन-स्वप्न, पृ० १३।
३३ वही—'उस ओर', पृ० ७९।
३४ वही—'अपने से', पृ० ५।
३५ वही —'मैं', पृ० ३८।

जहाँ कल्पनाएँ थक जातीं तर्क विश्व सोता है।
उस अन्नत आलोक किरण में अहंवाद होता है।
विश्व में मेरा गीत महान्
मैं छविमान् मैं छविमान्।[३६]

इन कविताओं मे दु:ख और वेदना का स्वर भी बलवान् हैं :

पतझड़ ही अन्त यहाँ है
तेरे वसन्त का राही।
हँसना ही तो रोना है
खिलना मुरझा जाना ही।[३७]

और भी—

सोने दे, सोने दे, अनुभव,
स्मृति के नाम भुला दे
कुसुम-पतन की कथा न कहना
जीवन-तरी चला दे।[३८]

इस कविता-संग्रह में उनतीस कविताएँ संगृहीत हैं। इनमें 'राका' पहली कविता है तो 'उस ओर' अन्तिम कविता है। इन सभी कविताओं मे निराशा के भाव और कवि की दुर्बल अभिव्यक्ति का परिचय मिलता है।

विसर्जन (कविता-संग्रह—सन् १९३१ ई०)

'विसर्जन' भट्ट जी की कविताओं का एक संग्रह है। इसमें अधिकतर कविताएँ अनुभूतिमय हैं। ऐसा दीख पड़ता है कि प्रकृति के अन्तराल की चेतना कवि के हृदय की धड़कन से एकाकार होकर उच्छ्वसित हो उठी है। इन कविताओं में भट्ट जी की अभिव्यक्ति भी शालीनता से ओत-प्रोत है। कदाचित् सुख और दु:ख जीवन की अभिव्यक्ति के अन्तरंग और बहिरंग बनकर एक अदृश्य प्रेरणा के रूप में मुखरित हो रहे हैं, क्योंकि यह जीवन में अवश्य अपनी क्रीड़ा करते रहते हैं चाहे आशा में हों या निराशा में, हास्य में हों या रुदन में, प्रगल्भता में हों या मौन मे। इसके अतिरिक्त इन कविताओं में भट्ट जी ने परिवर्तन और उथल-पुथल को जीवन के चिह्न स्वीकार किये हैं, मरण के नहीं। इस सम्बन्ध में भट्ट जी ने स्वयं लिखा है—"आज के मानव का चेतना-कंकाल संघर्ष की रगड़ खाकर अधिक मूर्तिमान हो उठा है। औरों की बात मैं नहीं कहता, मेरे कवि ने इसे सब देखा है। इसीलिए वह इस ओर भी गया है। वहाँ से कभी लौटने की बारी आवेगी यह अभी दूर की बात है।"[३९]

[३६] वही—'मैं', पृ० ३९-४०।
[३७] वही—'अपने से', पृ० ७।
[३८] वही—'तू', पृ० १२।
[३९] 'विसर्जन'—अपने पाठकों से, पृ० ग।

भट्ट जी ने जीवन के रहस्य को कितने कौशल से अभिव्यक्त किया है :

इसमें जीवन मृत्यु नहीं है
यह मद नहीं उतरने वाला
सदा खोजती राख रहेगी
मेरी उसी नशे की लाली।[४०]

छायावादी शैली भी 'विसर्जन' में द्रष्टव्य है :

इसका यौवन सदा अमर है
अमर हो गया मेरा यौवन
आज भर गया है प्राणों में
शत-शत स्वर्गों का सुख जीवन।[४१]

कवि ने जगत् के रहस्य के सम्बन्ध में भी अपने विचार व्यक्त किये हैं :

इस जग में किसका हँसना
सबका आना, रोते आना
ठहर-ठहर कर हँसते आना
ठहर-ठहर कर रोते जाना।[४२]

सुख-दु:ख के सम्बन्ध में कवि के भाव द्रष्टव्य हैं :

जागृति में, आहों में जलकर
राख उमंगों का हो जाना
नित्य हृदय का आँसू बन कर
टप-टप बहना, बहते जाना।
　　क्या जागृति इसको कहते हैं
　　इससे तो अच्छे हैं सपने
　　परवशता जीवन-परिभाषा
　　सपनों में सब अपने-अपने।[४३]

कवि 'किसलय-कथा' में भी अपनी अनुभूति ही अभिव्यक्त कर रहा है :

फूल मेरे अंक में खिल
पी रहे अनुराग मेरा
केशरों में सो रहे थे
स्वप्न बन सब रंग मेरे
　　प्यास मेरी छीन कर
　　अभिव्यक्त आँसू बन ढली थी

४० वही—कवि का आत्म-समर्पण, पृ० ३।
४१ वही, पृ० २।
४२ वही—प्रारम्भ, पृष्ठ ६।
४३ वही, पृ० ६–७।

गुदगुदाने आ रहे सुख
देख मुख मेरे मरण का ।[४४]

इसी प्रकार की अनुभूतिपरक कविताएँ 'विसर्जन' मे संगृहीत है ।

अमृत और विष (कविता-संग्रह—सन् १९४४ ई०)

इस कविता-सग्रह में युद्ध के समय की कविताएँ संगृहीत है । इसमे प्राय: सभी कवितायें मुक्त वृत्त मे है। इस सम्बन्ध मे भट्ट जी ने लिखा है—"ये कविताएँ मैने उन दिनो लिखी थीं जब संसार का वातावरण दूसरे युद्ध से विक्षुब्ध था । इसीलिए अधिकतर रचनाएँ युद्ध की विभीषिका लिये हुए है ।"[४५]

उठो उठो, शोषित की धारें,
रोक नहीं पायेंगी पथ को ।
नभ-चुम्बी अंगार दहकते,
रोकेंगे क्या मनु के रथ को ?[४६]

इन कविताओं में आत्म-बलिदान के स्वर भी प्राणवान् हैं

झाँकती संहार में नव-सृष्टि की कोई कहानी ।
आज उठ अंगार से शृंगार कर मेरी जवानी ।।

प्राय: सभी कविताओं में जीवन का अमृत और विष दोनों ही भरा पड़ा है, क्योंकि विभीषिका दोनों रूप लिये हुए होती है । यह मनुष्य पर निर्भर है कि वह उसे अपने जीवन में कैसे स्वीकार करता है :

वरण करता स्वर्ग वह, जो मरण से डरता नहीं है,
मरण पाकर भी कभी क्या, वीर भी मरता कहीं है ?[४८]

इसके अतिरिक्त—

आँधी के नीचे भू-कम्पन,
जिनमें सुप्त बवण्डर जागे,
सौध-विभव के अन्तर से उठ,
हँसते खण्डहर आये आगे ।[४९]

इन कविताओं में कहीं सैनिक का त्याग बोल रहा है तो कहीं बंगाल की दयनीय स्थिति का वर्णन है ; कहीं रिफ्यूजी अपनी विवशता से दु:खी है, तो कहीं मानव अभावों के झकोरों से पीड़ित है । युद्ध के समय समाज में जो विषम

४४ वही—किसलय-कथा, पृ० १९ ।
४५ 'अमृत और विष'—दो शब्द, पृ० १ ।
४६ वही, पृ० १ ।
४७ वही—'आज का जीवन यही है, आज की है यही वाणी', पृ० ४ ।
४८ वही, पृ० ६ ।
४९ वही, पृ० ६ ।

वातावरण और बेचैनी उत्पन्न हो जाती है वही इन कविताओं का मूल स्वर है। हाँ, 'सैनिक' कविता में कवि के मनोवैज्ञानिक चिन्तन का परिचय उपलब्ध होता है। बेलजियम युद्ध के पश्चात् एक सैनिक लाशों के ढेर के नीचे दबा पड़ा है और उसके विक्षत शरीर पर बर्फ गिर रही है। वह स्वप्न में कहता है :

मैं कौन हूँ, मैं कौन ?
मै बोलता या मौन ?
क्या साँझ है सब ओर ?
चीत्कार कैसा घोर ?[५०]

'लुई-सुई शेंकाई' कवि की प्राणवान् कविता है। इसमे लुई-सुई जापान की एक तरुणी है। वह शेंकाई चीनी व्यक्ति से विवाह कर लेती है और जापान चीन पर आक्रमण कर देता है। उसका पति पर्याप्त सोचने के पश्चात् युद्ध में चीन की ओर से सम्मिलित हो जाता है। युद्ध में लुई-सुई की मृत्यु पर शेंकाई कहता है :

हाय, प्रिय लुई-सुई,
हम मिले अन्त में अनन्त-धाम-पथ पर।[५१]

'रिफ्यूजी' कविता मे बूढ़ा श्वसुर प्राण बचाये हुए गर्भिणी पुत्र-वधू के साथ भागा जा रहा है :

जा रहा उन्हीं में तो
एक वृद्ध अति वृद्ध
रमणी ले पुत्र-वधू
यौवन की दुन्दुभी-सी
वारुणी सी, चाँदनी-सी,
छवि-सी, अनंग-भार
पति गया जिसका था
त्याग घर युद्ध पर।[५२]

इस प्रकार कुल मिलाकर बारह कविताएँ संगृहीत हैं। सभी कविताएँ मुक्त-वृत्त में हैं। परन्तु मुक्त-वृत्त में जो लय और गति अपेक्षित है, वह इनमें नहीं है। हाँ, ओज की कोई कमी नहीं है।

पूर्वापर (कविता-संग्रह—सन् १९४८ ई०)

इसमें 'युगदीप', 'यथार्थ और कल्पना' की प्राय: सभी कविताएँ संगृहीत हैं। 'युगदीप' में कुछ कविताएँ युद्ध से पूर्व की हैं और शेष युद्धकाल की। इसीलिए उनमें मनुष्य की वैयक्तिक आशा-निराशा अधिक बोल रही है। यथा—

५० वही—'सैनिक', पृ० १६।
५१ वही—'लुई-सुई शेंकाई', पृ० ६४।
५२ वही—'रिफ्यूजी', पृ० ८४-४६।

"अन्धकार, अन्धकार, अन्धकार चीर चल ।
उग रही उषा उधर, उग रहा दिन सकल ।
रोक मत प्रकाश को, रोक मत विकास को,
रोक अश्रुहास को—मानव उच्छृङ्खल ।"[५३]

'पूर्वापर' कवि-जीवन के चरम यौवन-कुसुम का उदग्र ग्रन्थ है। इसीलिए इन कविताओं में भविष्यत् की प्यास, वास्तविकता के प्रति तीक्ष्ण दृष्टि, चरम एवम् पूर्ण विश्वासों के प्रति आस्था है। समाज, धर्म, राजनीति के ऊपर मानव के रूप की अदम्य निष्ठा और कवि के चिन्तन क्षणों में ज्योतिर्मय भविष्य के विभिन्न रूप प्रस्फुटित हुए हैं। साथ ही काव्य का रूप उसकी आलोकित उपलब्धियाँ है। कवि की दृष्टि में युग-युगान्त जागरूक हो उठे हैं। इसीलिए मनुष्य की दुर्बलता के प्रति स्वाभाविक दया अभिव्यक्त करना प्राय: प्रत्येक कविता का सौन्दर्य है। इसके अतिरिक्त इन कविताओं में भट्ट जी ने मानव के आवेग-क्षणों का अन्तर्मन्थित फेन अधिक बुद्-बुद् किया है जिसमें मिलन-वियोग, आवेग-उद्वेग, तृप्ति-अतृप्ति का संवर्त है :

"उलझन गीत बनी, स्मृतियाँ सब
प्राण प्राण की साँस बनीं,
संशय की सब नग्न आँधियाँ
हृदय बनीं, विश्वास बनीं ।"[५४]

और भी—

"उन्माद कहीं, अवसाद कहीं,
जीवन में जो कुछ कर न सके
अपने घावों को भर न सके।"[५५]

युद्ध की विभीषिकाओं से त्रस्त होने पर भी कवि ने युद्ध को स्वीकार नहीं किया है। भौतिकवाद को भी साधन के रूप में ही स्वीकार किया है। भट्ट जी के विचारानुसार—"इन कविताओं में मेरा स्वर सिद्ध का न होकर साधक का है, उपास्य का न होकर उपासक का है।"[५६]

कवि की दृष्टि में भौतिकवाद जीवन का अन्तिम लक्ष्य नहीं हो सकता—मनुष्य के 'मैं' और समाज के 'हम' से आगे जहाँ हमारा आत्मानुभूति का पड़ाव है वहाँ भी हम हमेशा जाकर ठहरते हैं और वहाँ के सौन्दर्य से हमारा साहित्य प्रफुल्लित हुआ है, जिसमें स्फटिक स्वच्छ सरोवर-तट पर सुचिन्तन के आत्मविभोर कल्हारों का मधुर मकरन्द आज भी भीनी-भीनी सुरभि लेकर श्रान्त पथिकों को तृप्ति प्रदान

५३ वही, पृष्ठ १।
५४ वही, पृष्ठ ४१।
५५ वही, पृष्ठ ४५।
५६ वही—भूमिका, पृष्ठ च।

करता आ रहा है, उसे भूल जाना भी तो जीवन की बड़ी भूल होगी।[५७] युद्ध की विभीषिका पर व्यंग्य वाली कविता द्रष्टव्य है :

"रक्तलिप्त, विषदग्ध धरा को नव नव जीवन प्राण चाहिए,
कुण्ठित गति, लुण्ठित संस्कृति को अपना पथ निर्माण चाहिए।"[५८]

आगे बढ़ने वाले युवक के चरण न तूफान से विचलित होते है और न प्रलय से काँपते है :

"प्रलय में, तिमिर में न तूफान में भी
कदम ये रुके है न रुक पाएँगे ही।"[५९]

इसी भाव की एक और कविता :

"मैं पन्थी, पृथ्वी-सागर का लक्ष्य यहाँ मँझधार नहीं,
रुकना कहीं बीच में मेरा ध्येय नहीं व्यापार नहीं।
मैं संघर्षों का प्राणी हूँ, भय से लूँ भिक्षा कैसी,
मरण अगर त्यौहार न होता जीवन की दीक्षा कैसी।"[६०]

इस प्रकार की अनेक कविताएँ 'पूर्वापर' में संगृहीत हैं। 'ये तूफानी चरण जवानी के', [६१] 'हार का अगला कदम ही जीत बन जाना'[६२] 'आज हम स्वतन्त्र हैं',[६३] शीर्षक कविताओं में यही भाव उपलब्ध होते हैं।

कवि ने इन कविताओं में प्रगतिशील तत्त्वों को भी स्वीकार किया है—"मैं प्रगतिवाद में विश्वास करते हुए भी, उसकी आर्थिक-योजना की महत्ता को स्वीकार करते हुए भी भारतीय जीवन के परम्परा-प्राप्त विवेक के सुसंस्कृतालोक में विश्वास करने को बाध्य हूँ।"[६४]

अतः इस कविता-संग्रह में प्रायः यथार्थ की पोषक, प्रगतिशील और मानवीय उदात्त भावों वाली कविताएँ संगृहीत हैं।

इत्यादि (कविता-संग्रह—सन् १९६१ ई०)

इस कविता-संग्रह में भट्ट जी की भिन्न-भिन्न प्रकार की कविताएँ संगृहीत है जो वस्तु, रूप-विधान, शैली, कथ्य तथा भाव की दृष्टि से समय-समय पर अपना रूप बदलती रही हैं। यथा—

५७ वही, पृष्ठ च।
५८ वही, पृष्ठ ७६।
५९ वही, पृष्ठ १०४।
६० वही, पृष्ठ १०८।
६१ वही, पृष्ठ १११।
६२ वही, पृष्ठ ६४।
६३ वही, पृष्ठ ११५।
६४ वही,—भूमिका, पृष्ठ च।

"कालिदास सपना है
मेरा घर अपना है
मुझे पगडण्डी पर पनपना है।" [६५]

और भी—

मधुमास आया और गाये बिन गीत गया,
प्राण का प्रयोजन पर भर-भर कर रीत गया। [६६]

इसके अतिरिक्त—

सर-सरिता से कहूँ,
धार बनकर बहूँ
प्राण अब भी जले जा रहे प्यास से
टूटती आस से। [६७]

कवि का 'गीत' कितना सुन्दर है :

उतर आई अर्घ्य देने प्राण को उन्मादिनी,
दूध से न्हाये नयन में उमड़ती मधु चाँदनी। [६८]

इन कविताओं में कवि की परिपक्व चेतना का गम्भीर एवम् गहन दर्शन, जीवन के व्याप्त अनुभवों की काव्यात्मक संपुष्टि, चरम आवेग के क्षणों का अन्तर्दर्शन, मानवात्मा का आह्वान आदि सभी अनुभूति-रूप चित्रों की प्रौढ़ि समाहित है।

जो जलते हैं सतत इसलिए—
जलना जलना ही जीवन है,
लेते हैं अंधेरे में हँस
क्योंकि सतत लड़ते रहना ही—
बस जीवन है। [६९]

इसमें सभी कविताएँ भाव और भाषा की दृष्टि से भिन्न-भिन्न हैं :

"हार यदि है जिन्दगी में जीत भी तो है सही,
रात है तो चाँदनी का गीत भी तो है कहीं?
झाँकता है शिशिर तो मधुमास भी आता,
दुःख है, आनन्द आशातीत भी तो है। [७०]

जीवन के सम्बन्ध में—

६५ 'इत्यादि'—आत्म-निवेदन, पृ० १।
६६ वही—'कविकर्म', पृ० ३।
६७ वही—'तुम सजग साँस दो, मुक्त मधुमास दो', पृ० २०।
६८ वही—'गीत' पृ० २२७।
६९ वही—'ये दीपक', पृ० १०५
७० वही—'हार', पृ० ८२।

धन से मत नापो जीवन, बल से मत नापो जीवन,
मानव की मन-सुषमा से, जीवन से नापो जीवन ।[७१]

इसी प्रकार जीवन की नश्वरता के विषय में :

निगल लेती सभी यौवन, काल की रातें,
या सनकती मौत की यम से, नई बातें ।[७२]

इसके अतिरिक्त भी—

मनुज जो प्रीति से अब तक अधूरे हैं, अधूरे ही रहेंगे क्या ?
चरण जो गीत के अब तक अधूरे हैं, अधूरे ही रहेंगे क्या ?[७३]

'वरदान' कविता मे कवि की अनुभूति कितनी गहरी है :

दे नहीं सकता तुम्हें वरदान, वरदान मुझसे दूर,
जल रहा हूँ तुम्हारे शाप में ही चूर
जिन्दगी का जहर सारे पाप मेरे पास
मैं बटोरे चला आता हूँ तुम्हारी प्यास ।[७४]

इस प्रकार इस संग्रह मे अड़तालीस कविताएँ संगृहीत हैं, जिनमें मानव के विविध मनोभावों का अभिव्यक्ति है। सभी कविताएँ सरस, मधुर और मन में आशा और उत्साह का संचार करने वाली हैं। भट्ट जी का वैविध्यपूर्ण रचना-कौशल इन कविताओं में समाहित है।

मुझमें जो शेष है (कविता-संग्रह—सन् १९६५ ई०)

यह भट्ट जी की कविताओं का अन्तिम संग्रह है। इसमें नयी कविता के रूप, शैली, कथ्य तथा भाव वाली कविताएँ संगृहीत हैं। ये कवितायें समाजपरक कम, और व्यक्ति की अनुभूतिपरक अधिक हैं। इनमें कवि की परिपक्व एवं प्रगतिशील चेतना का उन्मेष है। अनुभूति प्रौढता, छन्द और काव्य की अजस्र गतिशीलता तथा जीवन दर्शन के प्रति चरम आस्था स्वरूप और कवि की निरन्तर साधना में भाव-भूमि का नया द्वार खोलती हैं। इसके अतिरिक्त इन कविताओं में कवि का सम्पूर्ण व्यक्तित्व भी अभिव्यक्त हो रहा है :

कवि का जीवन-वृत्त उसके व्यक्तित्व-निर्माण का बाह्य उपादान है और जीवन-दर्शन आभ्यन्तर उपादान। काव्य में कवि का सम्पूर्ण व्यक्तित्व अभिव्यक्त होता है।[७५]

[७१] वही—'दूर न उससे मजिल', पृ० ७८।
[७२] वही—'मानव के विजय दीप', पृ० ७०।
[७३] वही—'गीत के चरण', पृ० ५४।
[७४] वही—'वरदान', पृ० ५५।
[७५] "The work of so and so is good because it is the perfect expression of its personality"—दशरथ ओझा : 'समीक्षा शास्त्र', पृ० ३१।

ये कविताएँ कवि के क्रियात्मक जीवन, मानसिक संकल्प-विकल्प तथा स्वभाव की भी परिचायक है, यथा :

लहरें आती हैं,
लहरें गाती हैं,
प्राणों के संगीत का उपहार—
लेके हर बार
प्यार से तट को भेंट लाती हैं।[७६]

और भी :

साँप, तुम सच्चे हो,
भय है, गरल है,
मरण है महत्तर है
जो कुछ है स्पष्ट है इसीलिए अच्छे हो।[७७]

इसके अतिरिक्त भी

तुमने जो दिया
प्राण,
मन,
कामना, मैंने सर्वांग से लिया,
रूप, रस, गंध
उग्र-उग्र, मन्द-मन्द जीवन से पिया।[७८]

अनुभूतिपरक कविता भी द्रष्टव्य है :

किन्तु :
आज लगता है कहीं उड़ गये हैं सब
धुआँ धुआँ ही शेष
कहीं कुछ नहीं विशेष,
और मैं वैसा ही खाली हूँ
जैसा सुबह चला था।[७९]

इन सभी कविताओं में कवि के नये-नये प्रयोग और अनुभव की गहराई व्यक्त हो रही है।

दृष्टिकोण

भट्ट जी की प्रबुद्ध चेतना भारतीय संस्कृति के अतीत कालीन स्वरूप की ही

७६ 'मुझमें जो शेष है', पृ० १।
७७ वही, पृ० ४।
७८ 'मुझमें जो शेष है', पृ० ३०।
७९ वही, पृ० २०।

मुखापेक्षी नही रही, बल्कि उसके विकासशील मानवीय गुणों से प्रेरणा भी ग्रहण करती रही है। उनका काव्य-निर्माण सोद्देश्य है और समाज-सापेक्ष और समय-सापेक्ष भी। उनका अतीत-प्रेम वर्तमान युग के लिए है और यही उसकी सार्थकता है। यह उनकी व्यापक राष्ट्र-भावना ही है, जो नवोत्थान के कारण अतीतोन्मुख हुई है। भट्ट जी अपने युग के प्रति सदैव सहानुभूतिशील और जागरूक रहे हैं। उसके बदलते हुए स्वरूप के विकासशील तत्त्वों का वे आकलन कर सके हैं और साथ ही साथ अपना वैचारिक विकास भी।

उन्होंने सामाजिक उत्कर्ष की चाह के साथ-साथ आधुनिक सांस्कृतिक संघर्ष का चित्रण भी किया है। उन्हे कर्तव्य-पालन, स्वावलम्बन और सद्गुणों का उपार्जन अधिक प्रिय है। यह मानवतावादी विचारणा का ही परिणाम है कि उनके काव्य में पुरुषार्थ, स्वदेश-प्रेम और करुणा की अन्त:प्रेरणा विद्यमान है। भट्ट जी की काव्य-कृतियाँ विविध विषयक तथा अनेक रूपात्मक हैं। काव्य-कला में उनकी प्रयोग-कालिक साधना सफल है। उसमें काव्याध्ययन की प्रवृत्ति, जीवन-वैविध्य-जनित व्युत्पत्ति और कवि-प्रतिमा की दीप्ति भी है। कवि दु:ख, निराशा और क्षोभ को जीवन में स्वीकार तो करता है पर परिणामस्वरूप निराश, खिन्न और अकर्मण्य बैठे रहने के प्रति अनास्था व्यक्त करता है। इसीलिए कवि ने आशा, उत्साह को काव्य मे विशेष महत्त्व दिया है। सत्य के प्रति निष्ठा और जीवन का दार्शनिक अनुशीलन काव्य की मूलभूमि है। परिपक्वकाल में भट्ट जी ने वैविध्यपूर्ण कविताओं की रचना की थी पर अधिकतर कविताओं में किसी न किसी रूप में कवि की दार्शनिक प्रौढ़ता का भव्य निदर्शन और मानववाद के स्वर भी स्फुरित हुए हैं। इसके अतिरिक्त काव्य-कृतियों में जीवन-दर्शन समुन्नत, काव्य-क्षेत्र सुविस्तृत और अनुभूति गम्भीर एवं उदात्त दीख पड़ती है। उनकी बहुमुखी काव्य-प्रवृत्तियाँ और विविध प्रकार की काव्य-कृतियाँ उनके विकासोन्मुख काव्य का निदर्शन करती हैं। उनका व्यक्तित्व भी उनके काव्य में स्पष्ट रूप से दीख पड़ता है और इसीलिए काव्य कवि-व्यक्तित्व-वैशिष्ट्य-समन्वित है। उनके काव्य में उनकी निजी मान्यताएँ अधिक व्याप्त हैं। सामाजिक उत्कर्ष और मानवीय गुणों का अभ्युदय एवं विकास उनके काव्य का वास्तविक प्रतिपाद्य है। उनकी अधिकतर रचनाएँ भाव-प्रधान हैं पर उनमें लम्बे वर्णनों के विधान का प्राय: अभाव है। कवि की काव्याभिव्यक्ति में अर्थ-गाम्भीर्य और भावों की मधुरिमा एवं अनुभूति की गहराई अधिक आकर्षक है। अधिकतर कविताओं में कवि की युग-चेतना, उत्थान और देश-भक्ति की भावना अभि-व्यक्त हुई है। हाँ, सहानुभूति का कोष भी अक्षय है जो सबके लिए खुला है और मानव-वेदना को स्वाभाविकता प्रदान करता है। वस्तुत: भट्ट जी नयी भाव-भूमियों के पालक और व्यापक जीवन के भावक हैं।

निष्कर्ष

भट्ट जी की काव्य-साधना में उनकी काव्य-कला का अविरत रूप से विकास तो हुआ ही, पर यह भी ज्ञात होता है कि उनके व्यक्तित्व, जीवन-दर्शन, अनुभूति, अध्ययन, विधायक कल्पना आदि का भी क्रमशः उत्कर्ष होता गया है। उन्होंने अपनी काव्य-सीमा को पर्याप्त मात्रा में व्यापकता देने का सफल प्रयास किया है। उनका काव्य अधिकतर प्रत्यक्ष जीवन पर आधारित है, मानवता की भावना से परिपोषित है और भारतीयता के गुणों से उद्‌बुद्ध है। वे आधुनिक काव्य की सांस्कृतिक और नैतिक काव्य-धारा के तथा युगीन काव्य-प्रवृत्तियों के सफल कवि थे। उनके काव्य में व्यापक जीवन का सन्निवेश हुआ है। सृजन के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी, प्रबुद्ध और रसचेता स्रष्टा थे। ऐसे कवि की सर्जना पर चिन्तन-मनन का प्रभाव होना नितान्त आवश्यक है। समस्या का गहन अध्ययन, विषय-वस्तु का सूक्ष्म चयन, मार्मिक गठन और प्रवाहमयी अर्थगर्भित शैली का अनूठापन ही उनके काव्य की विशेषता है। भट्ट जी के अनुभूतिपरक मुक्तक हिन्दी-लोक की अक्षय और अमर निधि हैं।

भट्ट जी के नाटक

भट्ट जी बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे। उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं द्वारा साहित्य की श्रीवृद्धि की। विषय-वैविध्य और शैली की नवीनता नाटकों का जीवन और स्पन्दन है। उनकी रचनाओ का हिन्दी नाट्य-लोक में विशेष स्थान है। आपकी कुल मिलाकर सत्ताईस के लगभग नाट्य कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। वस्तुतः नाटक-क्षेत्र में भट्ट जी का स्थान उल्लेख्य है। इनके नाटकों में एक ओर वर्तमान का यथार्थ चित्र है तो दूसरी ओर अतीत का गौरव पाठकों को नवीन स्फूर्ति और चेतना प्रदान कर रहा है।

भट्ट जी ने अपने नाटकों में प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक युग के सभी सांस्कृतिक चित्र एवं समस्याएँ प्रस्तुत की है। उनके नाटकों के विषय में कहा गया है—"भट्ट जी ने तत्कालीन सामन्ती आदर्शों के खोखले और मानवीय मुलम्मे में अमानवीय रूप को स्पष्ट कर इस रूप में सामने रखा है कि हम सामन्ती युग की सीमाओं को जाँच-परख सकें, प्राचीन आदर्शों को नवीन संदर्भ में ग्रहण करते समय उनके उचित-अनुचित की परख कर सकें।"[८०]

वर्ण्य-विषय के आधार पर भट्ट जी के नाटकों का विभाजन निम्न प्रकार से किया जा सकता है :—

१. पौराणिक नाटक :

(१) विद्रोहिणी-अम्बा, (२) सगर-विजय, (३) नहुष-निपात।

२. ऐतिहासिक नाटक :

८० रामगोपाल सिंह चौहान : 'हिन्दी-नाटक : सिद्धान्त और समीक्षा', पृ० १५५।

(४) विक्रमादित्य, (५) दाहर अथवा सिन्ध-पतन, (६) मुक्ति-दूत (७) शक विजय ।

३. सामाजिक नाटक :

(८) कमला, (९) पार्वती, (१०) अन्तहीन अन्त, (११) नया समाज ।

४. राजनीतिक नाटक :

(१२) क्रान्तिकारी ।

५. पद्य नाटक :

(१३) एकला चलो रे ।

विद्रोहिणी-अम्बा (पौराणिक नाटक—सन् १९३१ ई०)

'विद्रोहिणी-अम्बा' भट्ट जी का वियोगान्त शैली में लिखा हुआ पौराणिक नाटक है। इसकी कथा का आधार श्रीमद्भागवत है। इसमें काशिराज की तीन पुत्रियों अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका का वर्णन है। काशिराज ने स्वयंवर के समय हस्तिनापुर के राजा विचित्रवीर्य को धीवर-कन्या सत्यवती का पुत्र होने के कारण निमन्त्रण नहीं भेजा था। जब सत्यवती ने यह बात भीष्म से बताई तो वे स्वयं स्वयंवर में गये और सब राजाओं को हराकर काशिराज की तीनों पुत्रियों को हर लाये। अम्बा पहले ही सौभ के राजकुमार शाल्व को वर चुकी थी। जब इस रहस्य का ज्ञान भीष्म को होता है तो उसे शाल्व के पास जाने की अनुमति दे दी जाती है :

"महाराज शाल्व, मेरा विवाह नहीं हुआ है। देवव्रत ने यह जानकर कि मैंने पूर्व ही शाल्वराज को अपना पति चुन लिया है, मुझे तुम्हारे पास आने की आज्ञा दे दी।"[८१]

"सब कुछ ठीक होते हुए भी क्षत्रिय जूठन नहीं खाते।"[८२]

शाल्व से यह सुनकर अम्बा निराश भाव से अपमानित होकर परशुराम जी के समीप जाती है और उनका भीष्म से युद्ध भी करवा देती है। परशुराम युद्ध में पराजित हो जाते हैं। अन्त में अम्बा शिवोपासना में लीन होकर शिव से भीष्म की हत्या का वरदान प्राप्त कर लेती है—"तू इस शरीर से उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। दूसरे जन्म में शिखण्डी बनकर तू भीष्म का नाश कर सकेगी। तुझे अपनी प्रतिज्ञा दूसरे शरीर में भी याद रहेगी।"[८३]

इन विचारों में जो सच्चाई है उससे आँखें नहीं हटाई जा सकतीं। महाभारत-काल में भी स्त्रियों का अनादर हुआ है इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। वास्तव में इस नाटक के स्त्री-पात्रों ने संसार भर की स्त्रियों की दुर्दशा का प्रति-

[८१] 'विद्रोहिणी-अम्बा', पृ० ७६।
[८२] वही, पृ० ७६।
[८३] वही, पृ० ९४।

निधित्व किया है। इस नाटक में नारी अपने अधिकारों के प्रति जिज्ञासाशील दीख पड़ती है। नाटक के अन्त में अम्बा शिखण्डी बनकर भीष्म की मृत्यु का कारण बनती है—"हो गया, सब कुछ हो गया। यही चाहती थी, अ हा हा'''और कुछ भी नहीं चाहिए। भीष्म, उस दिन मेरा छोटा-सा संसार जला था और आज विश्व जल रहा है।

"अहाहा'''।"[८४]

"अम्बा में भी चिरन्तन नारीत्व की समस्या अत्यन्त तीखे रूप मे हमारे सामने आती है।"[८५]

"मेरे पात्रों ने यदि महाभारत की गुफा से निकलकर वस्तुस्थिति को ठोक-बजाकर जाँचा और वर्तमान के जीवन में घुसकर एक नई दिशा देखी तो इसमे आश्चर्य ही क्या ?"[८६]

"पौराणिक क्षेत्र के भीतर से वह ऐसे पात्र खोजकर लाए हैं, जिनके चारों ओर जीवन की रहस्यमयी विषमताएँ बड़ी गहरी छाया डालती हुई आती हैं। ऐसी विषमताएँ जो वर्तमान समाज को भी क्षुब्ध करती हैं।"[८७]

"उन्होंने समाज के रूढ़ि-विरोधी व्यक्तियों की पुराण से अवतारणा कर भारतीय समाज को उसका मुख उसके ही दर्पण में दिखा दिया है।"[८८]

इस नाटक का नाम पहले 'अम्बा' था पर बाद में भट्ट जी ने श्रद्धेय गुरुवर डा० गोवर्धननाथ शुक्ल के आलोचनात्मक सारगर्भित पत्र से प्रभावित होकर 'विद्रोहिणी-अम्बा' रखा। वस्तुतः इस नाटक में विद्रोह की भावना अत्यधिक बलवान् है।

सगर-विजय (पौराणिक नाटक—सन् १९३२ ई०)

'सगर-विजय' भट्ट जी का पौराणिक वियोगान्त नाटक है—"आधुनिक युग में कतिपय उत्तम नाटक लिखे गये हैं। पं० उदयशंकर भट्ट का 'सगर-विजय' उनमें से एक है।"[८९]

राजा बाहु अयोध्या के राजा थे, विशालाक्षी और बर्हि उनकी दो रानियाँ थी। दुर्दम ने राजा बाहु को सिंहासन से च्युत कर स्वयं राजगद्दी पर अपना अधिकार जमा लिया। बाहु रानी विशालाक्षी के साथ वन को चले गये पर ईर्ष्यालु बर्हि ने समय पाकर विष दे दिया। परिणामतः राजा बाहु की मृत्यु हो गई पर विशा-

८४ वही, पृ० ९८।
८५ डा० नगेन्द्र : 'आधुनिक हिन्दी नाटक', पृ० १२१।
८६ 'विद्रोहिणी-अम्बा'—अपनी बात, पृ० १४।
८७ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ० ३६९।
८८ डा० सत्येन्द्र : 'हिन्दी-एकांकी', पृ० ६५।
८९ डा० दशरथ ओझा : 'हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास', पृ० ५२८।

लाक्षी वैद्य के उपचार से बच गई। ऋषि वशिष्ठ उसे अपने आश्रम में ले गये और वहीं पर सगर का जन्म और पालन-पोषण हुआ। एक दिन बर्हि चुपचाप सगर को उठाकर ले गयी पर बालक के प्राण लेने के समय त्रिपुर और कुन्त ने बालक की रक्षा की और अन्त में बर्हि आत्म-ग्लानि के कारण नदी में डूब कर मर गई। यह सुनकर विशालाक्षी बोली—हा बहन! तुमने मुझसे अकारण द्वेष किया। मैंने तो कुछ भी बिगाड़ा नही, कभी तुम्हारा विरोध नहीं किया।"[६०]

सगर ने दुर्दम को परास्त किया और बन्दीगृह मे डाल दिया जहाँ पर उसकी मृत्यु हो गई। इसी बीच में विशालाक्षी की मृत्यु हो जाती है। माँ की मृत्यु का समाचार सुनकर सगर कह उठता है—"मैं संसार मे पितृ-विहीन उत्पन्न हुआ। मिथ्या की तरह आश्रयहीन, छाया, कंकाल की तरह मातृहीन होकर पोषित हुआ।"[६१]

इसके अतिरिक्त त्रिपुर से गुरुवर वशिष्ठ और देवी अरुन्धती की तीर्थयात्रा का समाचार सुनकर बोले—"अब मैं अयोध्या नहीं जाऊँगा, त्रिपुर नहीं जाऊँगा। मेरा वहाँ कोई नहीं रहा। एक माता थी—हृदय का आश्रय, दु:ख का सहारा, प्राणों का धीरज, वह भी नहीं रही। माता नहीं, गुरु वशिष्ठ नहीं, मुझे पालने वाली देवी अरुन्धती नहीं...।"[६२]

इस पर त्रिपुर ने उत्तेजित होकर कहा—"नहीं जाना था कि पर्वतों की चट्टानें भी पानी पड़ते ही बालू की तरह बैठ जायेंगी, समुद्र का प्रकाश-स्तम्भ नदी का झोंका भी न सहार सकेगा।"[६३]

इतना सुनते ही सगर का वैराग्य भाव हवा हो जाता है और कर्तव्य-पथ पर आरूढ़ होकर कहता है—"मैं क्या कह रहा था! कितनी भूल थी! नहीं, अब नहीं। यह सम्पूर्ण वसुमती, जिसने मेरा लालन किया, माता विशालाक्षी की प्रतिमा बनकर मेरी ओर देख रही है। ये सरिताएँ और वे महासागर उस माँ के मन्द हास हैं, उसकी प्रतिध्वनि हैं, उसे अट्टहास में बदलना होगा। ये भूधर उसकी इच्छायें हैं, उन्हें और भी ऊँचा उठाना होगा। मेरी सारी साध माँ के आँसू पोंछने में होगी। मैं माँ की धूलि मस्तक पर चढ़ाकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेरा रोम-रोम उसकी सेवा के लिए होगा।"[६४]

अन्त में यही सगर अपने पराक्रम से चक्रवर्ती राजा बनता है।

नहुष-निपात (पौराणिक नाटक—सन् १९३१ ई०)

'नहुष-निपात' भावात्मक एवं यथार्थवादी पद्य-शैली में लिखा गया पौराणिक

६० 'सगर-विजय', पृ० १०२।
६१ वही, पृ० १०८।
६२ वही, पृ० १०९।
६३ वही, पृ० १०९।
६४ वही, पृ० ११०-११।

नाटक है। नहुष कर्तव्यच्युत कामवासना का प्रतीक है। भट्ट जी के विचारानुसार—"आज के जीवन में नहुष की चेतना, उसका कार्य-कलाप, उसका प्रच्छन्न लक्ष्य जैसे मनुष्य का अवान्तर रूप बन गया है जिसे वह अपने अन्तरतम की अवचेतना में सहज आबद्ध पाता है। इसके साथ ही इस प्रकार के साहित्य का युगीन प्रभाव भी जैसे पाठक के लिए हमदर्दी है, उसी के मन की बात है। मेरे इस पद्य-नाटक मे नहुष उसी कामान्धता का प्रतीक है जिसको आज के जीवन में मनोविज्ञान का शास्त्रीय आधार मिल गया है।"[६५]

सबसे पहले नहुष में ब्रह्म बनने की भावना उदित होती है :

> **हटो ब्रह्म बनने की मुझमें कामना,**
> **उदित हुई है, ब्रह्म बनूँगा मैं स्वयं।**
> **सब प्रपंच मेरे अनुशासन में रहें,**
> **मुझमें सृष्टि-स्थिति की क्षमता जागती।**
> **तब जग मेरे नाचेगा संकेत पर।**[६६]

उर्वशी को देखकर ब्रह्म बनने की भावना काफूर हो जाती है और वह कहने लगते हैं :

> **ऐसा प्राणातीत दृश्य देखा नहीं**
> **पुलकित है मन, प्राण, ज्ञान सब उर्वशी**
> **रोम-रोम के नेत्रों से मैंने पिया—**
> **स्वर्गलोक का अमृत अमर उल्लास मद।**
> **किन्तु..................।**[६७]
> **जैसे कोई बात याद आ गई हो ।**
> **कुछ समय पश्चात् ।**

नहुष एक सुन्दरी को देखकर उर्वशी से पूछते हैं कि शीघ्र बताओ वह कौन थी :

> **देव, वही है इन्द्राणी, अमरेश्वरी**
> **नित्य स्नान करती स्वर्गंगा नीर में**
> **तथा अर्घ्य देती है करके प्रार्थना**
> **वे ही होंगी देवकन्यकागण घिरी।**[६८]

अब इन्द्राणी-प्राप्ति की चाह जाग जाती है पर शची एक शर्त रख देती है :

> **सप्त ऋषि द्वारा वाहित यदि पालकी**
> **आवें उसमें बैठ आप प्रासाद में।**[६९]

६५ 'नहुष-निपात'—भूमिका, पृ० १।
६६ वही, पृ० १४।
६७ वही, पृ० २०।
६८ वही, पृ० २२।
६९ वही, पृ० ३६।

इस पर नहुष के आदेशानुसार सप्त ऋषि पालकी में बैठा कर चल देते हैं। पर उनके शीघ्रता करने से क्षुब्ध होकर एक ऋषि उन्हें शाप दे देता है :

सर्प दंश सा हुआ सर्प हो, सर्प हो।[१००]

ऋषि लोग पालकी गिरा देते हैं और नहुष भी दुःखी मन से क्षमा मांगता हुआ कहता है :

पाप जघन्य हुआ यह मुझसे क्षम्य हूँ
क्षमा करो ऋषिगण ! मुझको, मै क्षम्य हूँ।[१०१]

जीवन मे सदैव शाश्वत मूल्य ही सनातन रहते है और इन्ही के आश्रय से मानव अपने गन्तव्य पर पहुँच सकता है। भट्ट जी ने नहुष को काम-प्रतीक बनाकर इसे कौशल के साथ सिद्ध कर दिया है। इसके अतिरिक्त यह नाटक वर्णन-वैचित्र्य, संवादों का चुटीलापन, भाव-गोपन में विशेष आनन्द देने वाला है।

विक्रमादित्य (ऐतिहासिक नाटक—सन् १९२९ ई०)

आहवमल्लदेव कल्याण का राजा था। उसके सोमेश्वर, विक्रमादित्य और जयसिंह तीन पुत्र थे। एक बार पिता ने विक्रमादित्य को राज-सिंहासन देने का विचार प्रकट किया तो विक्रमादित्य ने राज्यभार संभालने में असमर्थता प्रकट की और न्याय के आधार पर सोमेश्वर के राज्य-सिंहासन का समर्थन किया। अपने आप पिता की आज्ञानुसार दिग्विजय को चल दिया और कुछ समय में ही चोल, पाण्ड्य, काची, गौड़, कामरूप, सिंहल आदि प्रदेशों में अपने पिता की धाक जमा दी। विक्रमादित्य ने दिग्विजय से लौटते हुए तुंगभद्रा के किनारे पिता की मृत्यु का दुःखद समाचार सुना तो सुनते ही मूर्छित हो गये और कल्याण की ओर चल दिए। कुछ समय यहाँ रहे, पर सोमेश्वर भीतर ही भीतर द्वेष और विनाश के उपाय सोचता रहता था। इसी सोमेश्वर द्वेष के कारण चोल देश के पराजित राजा के पुत्र ने विक्रमादित्य को अपने यहाँ बुला लिया और अपनी बहन चन्द्रलेखा से विवाह भी कर दिया। इस पर सोमेश्वर ने विक्रम का नाम लेना भी राज्य में दण्डनीय घोषित कर दिया। जब विक्रम को दैवज्ञ द्वारा यह समाचार मिला तो बोले—"विवेकहीन स्वातंत्र्य मनुष्य को क्या कुछ नहीं बना देता। मेरा नाम भी कोई न ले, वह दंडनीय समझा जायगा—इतनी प्रतिस्पर्धा ! छोटे भाई को इतना क्रूर दंड···?"[१०२]

इसी समय एक ज्योतिषी द्वारा कल्याण-राज्य के समाचार के साथ-साथ अपने साले की पराजय और मृत्यु की हृदय-विदारक सूचना भी मिली। विक्रमादित्य ने चोल राज्य की रक्षा के लिए प्रस्थान की घोषणा कर दी। उधर सोमेश्वर ने चण्डाशुक को आज्ञा दी कि वह विक्रमादित्य का शरीररक्षक बन कर उसकी मृत्यु का षड्यन्त्र

[१००] वही, पृ० ४४।
[१०१] वही, पृ० ४५।
[१०२] 'विक्रमादित्य', पृ० २२।

रचे। यह दुर्भाग्य से विक्रम का शरीर-रक्षक भी बन गया। इधर चन्द्रलेखा और अनंगमुद्रा ने सिंघल के दो राजकुमार बनकर चेंडी के गुप्त रहस्यों का पता लगा लिया। पर दुर्भाग्य से मार्ग-विहीन हो जाने के कारण विक्रमादित्य को कुछ न बता सकी। चण्डांशुक विक्रमादित्य को भाई जयसिंह के घायल होने का समाचार सुनाकर बीहड़ वन के भीतर ले जाने में सफल हो जाता है, और वहाँ पर सब ओर से आक्रमण होने के परिणामस्वरूप विक्रम घायल हो जाता है। उस समय सेनापति सुवेग ने विक्रम की रक्षा की और वीर सेनापति चण्डांशुक के साथ-साथ चन्द्रकेतु को भी पकड़ लिया।

चन्द्रकेतु संन्यासी वेश में था। उसने छल द्वारा अपने को विक्रमादित्य का सहायक सिद्ध किया। विक्रमादित्य ने उसे क्षमा कर दिया। वह पुनः शत्रु-पक्ष से मिलकर लकड़हारे के रूप में विक्रम को सिंह द्वारा अपने स्त्री-पुत्र के खाये जाने का समाचार सुनाकर कालीवन के प्रान्त में ले जाने में सफल हो गया। पर इस बार चन्द्रलेखा और अनंगमुद्रा सावधान थीं। इस बार सोमेश्वर ने अपने तीर से विक्रमादित्य को घायल कर दिया पर चन्द्रलेखा ने बाण मार कर सोमेश्वर के प्राण-पखेरू उड़ा दिए। दुर्भाग्य से विक्रम ने सोमेश्वर की दुःखभरी आवाज सुनकर अपने बाण द्वारा चन्द्रलेखा को मृत्यु की अंकशायिनी बना दिया। इसके साथ-साथ अनगमुद्रा ने चेंगी और चन्द्रकेतु को मौत के घाट उतार दिया और स्वयं भी चेंगी के बाण से मारी गई। अन्त में केवल विक्रमादित्य ही बचे, उन्होंने चोल राज्य मन्त्री साम्ब को दिया और स्वयं कल्याण आकर राज्य करने लगे—"कल्याण का राजसिंहासन आखिर सम्भालना ही पड़ा। राजतन्त्र से छुटकारा भी न मिला। हृदय-सर्वस्व गँवाकर राज्य की बाग-डोर हाथों में लेनी पड़ी। भाई छूटा, स्त्री छूटी ! राज्य मिला ! पर राज्य की मुझे इच्छा ही कब थी ?......! रानी ने कर्तव्य का पालन किया। शक्ति के सहारे, धर्म के बल पर, कर्तव्य की ओट में उसने अनश्वर सुख प्राप्त किया...... ।"[१०३]

दाहर अथवा सिंध पतन (ऐतिहासिक—सन् १९३० ई०)

ईसा की छठी शताब्दी में साहसीराय नाम का राजा सिन्ध मे राज्य करता था। इसका प्रधान मन्त्री चच था। इसके मन्त्रीत्व में साहसीराय ने बगदाद के खलीफाओं को कई बार परास्त किया। साहसीराय की मृत्यु के पश्चात् स्वय चच राजा हो गया। अपने शासन-काल मे उसने पुरानी जातियो, लोहान, जाट, गुर्जरों को पदच्युत कर नीचे गिरा दिया और सभा मे बैठने का अधिकार भी छीन लिया। चच की मृत्यु के पश्चात् उसका भाई चन्द्र गद्दी पर बैठा जो बौद्ध विचारों का था। इसके बाद दाहर ने गद्दी सम्भाली। जिस समय अरब के खलीफा का दूत अरबी-व्यारा को स्वतन्त्र करने की बात कहता है तो दाहर उत्तर देता है—"हम लोग आर्य हैं, हममें क्षत्रियत्व है, एक बगदादी राजा की तो बात ही क्या, यदि समस्त संसार

[१०३] वही, पृ० ८८।

भी दाहर पर अनुचित प्रभाव डालकर उसके देश को छीनने की चेष्टा करेगा तो दाहर उसके दाँत खट्टे कर देगा।"[१०४]

हैजाज दूत की बात सुनकर सिन्ध को परास्त करने के लिए सेनापति अब्दुल्ला को भेजता है पर वह युद्ध में मारा जाता है। इसी समय देशद्रोही ज्ञानबुद्ध अब्दुल्ला की मृत्यु का शोक प्रकट करने के लिए हैजाज के पास जाता है और उसे सहायता का वचन भी दे आता है।

अन्त मे मुहम्मद-बिन-कासिम देश पर आक्रमण करता है। युद्ध में दाहर अत्यन्त वीरता के साथ लड़ने पर भी मारा जाता है और सिन्ध का विध्वंस हो जाता है। कासिम दाहर की दोनों लड़कियों सूर्यदेवी और परमालदेवी को पकड़कर बगदाद के खलीफा के पास भेज देता है। उन्हें वलीद देखकर कहता है—"बड़ी शहजादी, मैं पहले तुझसे निकाह करूँगा, उसके बाद इससे।"[१०५] इस पर सूर्यदेवी कहती है—"खलीफा साहब, अब हमारे हृदय नहीं, प्रेम नहीं है, जीवन नहीं है—! उस नीच, कृतघ्न, पापी मुहम्मद-बिन-कासिम ने छल से हमारा घर उजाड़ डाला है—।"[१०६]

यह सुनकर वलीद कहता है—"तुम नापाक हो। मैं तुमसे निकाह नहीं कर सकता। मैंने उस कुत्ते की लाश को खाल में भरवा कर मंगाई है। और इस्लाम के मालिक की इतनी तौहीन।"[१०७]

जब मुहम्मद-बिन-कासिम की लाश बगदाद पहुँच गई तो हैजाज ने खलीफा से कहा—"क्या आपको पूरा विश्वास है कि कासिम ने लड़कियों को अपवित्र किया होगा ? मुझे तो इस नौकर की कही बातों से मालूम होता है कि कासिम नेक रहा होगा।"[१०८]

इस पर खलीफा ने सूर्यदेवी से पूछा—"क्यों री लड़की, जो तूने कहा वह सच है न ?"[१०९]

सूर्य—"खलीफा, सच न होने पर भी सच। मैं जो चाहती थी, वह हो गया। आज मेरी कामना पूर्ण हो गई। पिता का, माता का, देश का बदला चुक गया।"[११०]

इस पर वलीद ने कहा—"इनकी बोटी-बोटी काटकर कुत्तों को खिला दो।"

[१०४] 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन', पृ० १५।
[१०५] वही, पृ० १०२।
[१०६] वही, पृ० १०२।
[१०७] वही, पृ० १०३।
[१०८] वही, पृ० १०६।
[१०९] वही, पृ० १०६।
[११०] वही, पृ० १०६।

"तू क्या मारेगा ले ! (दोनों एक-दूसरे के खंजर भोककर मरते हुए) मृत्यु हमारे लिए खेल है ।"[१११]

भट्ट जी के विचारानुसार—"जिस समय मैंने सूर्यदेवी की प्रतिहिंसा अग्नि मे कासिम को जलते देखा,'उस समय मुझे भारतीय स्त्रियों में चमकती हुई यही सान्ध्य-लालिमा दिखाई दी······ ।"[११२]

अन्त में दाहर के लड़के जयशाह ने सिन्ध पर पूर्ववत् अधिकार करना चाहा पर विफल रहा ।

मूक्ति-दूत (ऐतिहासिक—सन् १९४४ ई०)

यह भट्ट जी का सुन्दर ऐतिहासिक नाटक है । नाटक का कथानक सिद्धार्थ से सम्बन्धित है जिसमें उसकी चिन्तनशील प्रवृत्ति, वैराग्य-भावना, गृह-त्याग, ज्ञान-प्राप्ति तथा उपदेश आदि की घटनाओं का वर्णन है । नाटककार ने सिद्धार्थ के चरित्र का मनोहर चित्रण किया है । वह सरल-हृदय, उदार और प्राणि-मात्र का स्नेही है । वह जो कुछ भी सुनता अथवा देखता है, उसके मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है । हंस के सम्बन्ध में सिद्धार्थ के विचार द्रष्टव्य है—"पक्षी में भी वैसे ही प्राण हैं जैसे मुझमें । दुःखी के प्रति दया दिखाना मेरा कर्त्तव्य है, मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है । यदि देवदत्त इसकी रक्षा का वचन दें तो उन्हें यह पक्षी देने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है ।"[११३]

यज्ञ में दी गई बलि हिंसा का विरोध करते हुए कहते हैं—"हिंसा सब जगह हिंसा है । चाहे वह यज्ञ में हो अथवा और कहीं । धर्म हिंसा का उपदेश नहीं देता ।"[११४]

संसार की असारता से प्रभावित होकर सिद्धार्थ सोती हुई गोपा को छोड़कर चले जाते हैं । गोपा यही कहती रह जाती है—"प्राणनाथ इतने सवेरे क्यों चले गये ?"[११५] पर जब उसे स्वामी के वन जाने का समाचार मिलता है तो वह मूर्छित होकर गिर पड़ती है । उसकी यह दीन दशा देखकर गौतमी कहती है—"ज्ञात होता है यह राजकुमार के वियोग में प्राण दे देगी ।"[११६]

सिद्धार्थ वन में समाधि लगा लेते हैं और जब समाधि भंग हो जाती है तो दूर-दूर से एकत्रित हुए लोगों को उपदेश देते हैं—"हे मनुष्यगण, जिस क्षुद्र अह बुद्धि ने तुमको संसार की एकता से पृथक् कर रखा है, उस भेद-बुद्धि को छोड़ दो ।

[१११] वही, पृ० १०६ ।
[११२] वही—नाटक की कला, पृ० ६ ।
[११३] 'मुक्ति-दूत', पृ० १८ ।
[११४] वही, पृ० २६ ।
[११५] वही, पृ० ६५ ।
[११६] वही, पृ० ६७ ।

बुद्धि को स्थिर करके तुम शील ग्रहण करो। जब तक मन में शान्तिलाभ नहीं कर सकोगे तब तक धन, सम्पत्ति, भोग, सुख, प्रतिष्ठा आदि कुछ भी तुमको वास्तविक आनन्द नहीं दे सकेंगे।"[११७] अन्त मे बुद्ध नगर में आकर नगरवासियों, महाराज शुद्धोदन आदि को उपदेश देते हैं—"जीवनलाभ करो, जीवन के महत्त्व को समझो, धर्म ही जीवन है। धर्म ही संसार है। संसार के कल्याण में धर्म का कल्याण है। मनुष्य जगत् का एक अंश है, महान् का एक भाग है।"[११८]

शक-विजय (ऐतिहासिक—सन् १९४८ ई०)

यह इतिहास-सम्मत नाटक है। "यहाँ पर शक-विजय का प्रयोग दो अर्थों में किया गया है—शकों की विजय और शकों पर विजय। आज देश धर्म से भी महान् है, व्यक्ति और समाज से भी बृहत्तर है, इस भावना को जागृत करने की आवश्यकता है, देश की स्वतन्त्रता, उसका सुख सर्वोपरि है, इस प्रकार के विचारों के प्रचार में जो मानसिक असन्तुलन उत्पन्न होते हैं उनमें हमें किसको स्वीकार करना चाहिए और किसको अस्वीकार इत्यादि बातों को पाठकों तथा सर्वसाधारण के सामने रखने के हेतु स्वरूप मेरा यह क्षुद्र प्रयत्न है।"[११९]

कथानक इस प्रकार है कि अवन्ती के महाराज गन्धर्वसेन कालकाचार्य की भगिनी सरस्वती को जो सती-साध्वी थी बन्दी बना लेते हैं। कदाचित् कारण यह था कि नगर के युवक सरस्वती के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर जैन धर्म को स्वीकार करने लगे थे। यह कार्य महाराज गन्धर्वसेन ने योगिराज मंखलिपुत्र की अनुमति से किया था। परन्तु कालकाचार्य और नगर के लोग इस बात से परिचित नहीं थे।

कालकाचार्य के मन में इतनी प्रतिशोध और प्रतिक्रिया की भावना भभकी कि आक्रान्ता शकों को देश पर आक्रमण हेतु बुला लाया और साथ-साथ साधन जुटाकर उनके आक्रमण को सफल भी करा दिया।

स्वार्थ और प्रतिक्रिया सदैव पराजित होते हैं। शकराज भी सरस्वती को देखकर आकर्षित हो गया और भोग हेतु उस पर अधिकार करने के लिए कटिबद्ध हो गया। अधिकार-लोलुप गणराज्य भी देखते के देखते रह गये। कालक भी निराशा और दुःख की पीड़ा से आहत होकर, शकों की क्रूरता और नृशंसता को देखकर अपने किये पर पश्चात्ताप और भूल का परिष्कार करने के लिए हिमालय की कन्दरा में तप करने को चला गया।

सरस्वती भी विवशभाव से अपने सतीत्व की रक्षा हेतु आत्महत्या कर लेती है।

गन्धर्वसेन के सहायक शकों की पराजय के लिए प्रयत्नशील होते हैं, जैन और

[११७] वही, पृ० ७६।

[११८] वही, पृ० ८१।

[११९] 'शक-विजय'—प्रारम्भिक, पृ० ८।

बौद्ध भी शकों के अत्याचारों से पीड़ित होकर उनके विरुद्ध हो जाते है ।

नाटककार ने वरद की अवतारणा करके शकों की पराजय का कार्य सम्पादित करवाया है—"तो चलो, वीर यौधेयों की सेना, अवन्ती पर आक्रमण करके शको को देश से निकाल दें । इस समय देश-देशान्तरों के गणराज्यों की सेनायें इस पवित्र उद्देश्य के लिए नर्मदा के तट पर एकत्रित हो रही है । चलो ।"[120]

अन्त मे वरद मंखलिपुत्र से कहता है—"गुरुदेव, आपके आशीर्वाद से हम शकों को पराजित करने मे सफल हुए ।"[121]

इस प्रकार वरद शकों को पराजित कर राष्ट्र को उनसे मुक्त और स्वतन्त्र कर देता है ।

सामाजिक नाटक

कमला (सामाजिक—सन् १९३५ ई०)

भट्ट जी ने 'कमला' मे अनमेल विवाह की समस्या के साथ-साथ पुरुष की संशयमयी प्रवृत्ति का चित्र अंकित किया है । अंग्रेजी शासन में जमीदारों का अह कितना विषैला था, वह किस तरह जनता पर अत्याचार करते थे, वंश का अभिमान उन्हें कितना अधिक था, आदि का वर्णन किया है ।

नाटक में वृद्ध देवनारायण गाँव का जमीदार है । वह कमला से विवाह कर लेता है । देवनारायण अपनी ही मनोवृत्ति के कारण कमला के चरित्र पर सन्देह करने लगता है । वह स्त्री को विलास और भोग का साधन समझता है ।

"जमींदार मनुष्य है, स्त्री विलास की सामग्री । वह पुरुष के—यदि वह धनी है तो—उपभोग की वस्तु है ।"[122]

देवनारायण की शंका का कारण था अनाथ बालक शशिकुमार, जिसे कमला अनाथालय से लाकर पुत्रवत् स्नेह करने लगी थी । इसलिए अनाथालय के स्वामी से भी कह देती है—"तुम इसे नहीं ले जा सकते । जाओ, खबरदार जो हाथ बढ़ाया ...... । नहीं, यह लड़का मेरे पास ही रहेगा । मैं इन राक्षसों के हाथों में इसे नहीं पड़ने दूंगी ।"[123] इस पर देवनारायण का सन्देह विश्वास में परिवर्तित हो जाता है कि शशिकुमार कमला का अवैध पुत्र है । देवनारायण कमला को घर से निकालता हुआ कहता है—"राक्षसी, डायन, चुड़ैल, चली जा यहाँ से । मैं तेरा मुँह देखना नहीं चाहता । यह तेरा लड़का है और तू छिपाती है । कुलटा ! निकल मेरे घर से । स्त्री, तुम्हारे इस सौन्दर्य में इतना विष है यह मैं नहीं जानता था । तुम्हारी मुस्कान में

१२० वही, पृ० १०८ ।
१२१ वही, पृ० १११ ।
१२२ 'कमला', पृ० ३ ।
१२३ वही, पृ० ५८ ।

इतना पाप है, यह मैंने आज जाना। जाओ, जाओ, जाओ। इस जमींदार के कुल पर इतना कलंक!"[१२४]

कमला अपमान का घूंट पीकर और निराश एवं दुःखी होकर नदी में डूब कर मर जाती है। इसके बाद शशिकुमार की भी मृत्यु हो जाती है। अन्त में जब देवनारायण को सत्य ज्ञात हो जाता है कि शशिकुमार उसके बड़े पुत्र यज्ञनारायण की अवैध सन्तान थी तो पश्चात्ताप करता हुआ कहता है—"आग! चारों तरफ आग! पाप जीवन की साँसों में इतना गहरा छिपा है, जाना न था।"[१२५]

अन्त-हीन अन्त (सामाजिक—सन् १९३८ ई०)

यह नाटक विचार-प्रधान है। नाटक में समस्या एक के बाद दूसरी आती रहती है और नाटककार भी सहानुभूतिपूर्वक विचार करता हुआ आगे बढ़ता चला जाता है। नाटक में दो धारायें सतत रूप से बह रही हैं—एक शोषक-वर्ग के कार्य-व्यापारों की और दूसरी शोषितों की। नाटक के अन्त में शोषित और निर्दोष लोगों की विजय होती है। एक स्थल पर देवेन्द्र जमुना से कहता है—"जब लोग भूखों मरेंगे, उन पर धनी लोग अत्याचार करेंगे और अपने वैभव का जाल फैलाकर उन्हें दबायेंगे तो स्वाभाविक रूप से समाज का वह भाग दुर्दम बनने तथा विद्रोह करने पर उतारू होगा।"[१२६]

इसी तरह अनाथालय का चित्र सूर्यकुमार के शब्दों में—"अनाथालय से रुपया चुराकर खा जाते हो। वह मन्त्री पूरा बना हुआ है। उसने धनपतमल के यहाँ से आई ईंटें और चूना हड़प लिया है। एक बोरी आटे की भी घर भिजवाने को कह गया है।"[१२७]

इस सचाई के कहने पर सूर्यकुमार को जेल जाना पड़ता है और जिस समय सूर्यकुमार का मुकदमा मजिस्ट्रेट की अदालत में पेश होता है तो मैनेजर की स्त्री सत्य को सामने रख देती है—"ये सब लोग मिलकर रुपये उड़ाते थे। जब सूर्य ने इनका भण्डा फोड़ने की धमकी दी तो चोरी के अपराध में उसे फँसाकर जेलखाने भिजवा दिया। इस बेईमान मैनेजर ने मन्त्री के साथ मिलकर खूब रुपया खाया। रोज घी बेचा जाता था, आटा बेचा जाता था, बर्तन बेचे जाते थे। एक बार सेठ धनपतमल के यहाँ से ईंटें मकान बनाने के लिए आईं वे मन्त्री के घर गईं। आटे की बोरियाँ मन्त्री के घर जाती रही हैं।"[१२८]

अन्त में सेठ कन्हैयालाल भी कहता है—"आज मेरी आँखें खुल गईं। मैंने

[१२४] वही, पृ० ६५।
[१२५] वही, पृ० ८३।
[१२६] 'अन्त-हीन अन्त,' पृ० १२।
[१२७] वही, पृ० २१।
[१२८] वही, पृ० ८३।

आज समझा कि धन ही सब कुछ नहीं है। मनुष्यत्व संसार में सबसे बड़ी वस्तु है।''[129]

इस नाटक में ऐसी समस्याएँ निरूपित की गई है जिनका अन्त होना प्रायः कठिन है। इसीलिए ये सब अन्तहीन ही है। नाटक विचार-प्रधान होते हुए भी यथार्थ का समुचित पोषण कर रहा है।

नया समाज (सामाजिक—सन् १९५५ ई०)

इस नाटक में भट्ट जी ने समाज का नया रूप चित्रित किया है। आज का समाज रूढ़ि के बन्धन, विचारों की दासता और लकीर के फकीर होने की बात स्वीकार नहीं कर सकता। भट्ट जी के विचारानुसार—''आज से पूर्व मनुष्य में अपने प्रति चेतना का जागरण इतना कभी नही हुआ था। आज जो कुछ टूट रहा है, छिन्न-भिन्न हो रहा है, उसका व्यामोह, नए के प्रति रुचि का आकर्षण, उठने, चलने और दौड़ने की क्षमता मे जीवन अपने अर्थ की, अपनी स्थिति की समस्याओं को हल कर लेना चाहता है।''[130]

इस नाटक की विषयवस्तु नवीन है। इस सम्बन्ध मे भट्ट जी ने भी विचार व्यक्त किए हैं—''आज नाटककार को अपना कंटेंट बदलने की आवश्यकता है, वस्तु का रूप जीवन-व्यापी बनाने की आवश्यकता है। केवल मनोरंजन-प्रधान, समय बिताने वाले नाटकों का युग नहीं है। जबकि आज का युग पुराने और नवीन की देहली पर खड़ा है तब हमें प्रकाश की आवश्यकता है। मनुष्य को अचेतन और उपचेतन मन के भीतर की वृत्तियों को कुरेदकर उन्हें अपने रूप को समझने देने की आवश्यकता है।''[131]

इस नाटक में मनोहरसिंह जमींदार का चित्रण किया गया है जिसमें जमींदार वाली सभी दुर्बलताएँ विद्यमान हैं—''देख, बाहर जितने असामी बैठे है, उनसे कह दे रुपया लेकर आवें। एक भी कम दिया तो खाल खींचकर भुस भरवा दूँगा।''[132] इस पर रूपा कहती है—''सरकार, असामी फर्शी सलाम झुकाकर अर्ज करते है कि इस बार फसल कमजोर है, माफी की जाय। अगले साल कौड़ी-कौड़ी चुका देंगे, सरकार।''[133]

रूपा की यह बात सुनकर मनोहर कड़ककर कहता है—''माफी, कैसी माफी ? हर साल माफी ! अभी तो परसाल की लगान बाकी है। मै एक पैसा नहीं

१२९ वही, पृ० ८८।
१३० 'नया समाज', पृ० १।
१३१ वही, पृ० १४।
१३२ वही, पृ० १५।
१३३ वही, पृ० २५।

छोड़ूँगा ।"[१३४]

मनोहर का पुत्र चन्द्र ठीक इसके विपरीत है । पुराने विचारों में उसकी आस्था नहीं है और इसीलिए वह कभी ईसाई लड़की रीटा से विवाह की बात कहता है तो कभी रूपा नौकर के स्त्री वेश से परिचित होकर विवाह की तैयारी करता है । यह रूपा उसके बाप के पाप की सन्तान थी और अन्त में जिसका विवाह घीरू बाबू से हो जाता है । इस नाटक में पुराने और नवीन युग का अच्छा खाका खींचा गया है ।

पार्वती (सामाजिक—सन् १९५८ ई०)

यह नाटक आज की अर्धशिक्षित और पाश्चात्य वैभव में पली नारी पर व्यंग्य है । हमारे जीवन में अधूरे ज्ञान से जो विकृतियाँ भर जाती हैं वे व्यक्ति के दर्शन में, उसके व्यवहार में, समय आने पर उसे ही काटने लगती हैं । गुलाब इसी तरह की नारी है । रीता ठीक उसके विपरीत है। पार्वती अपढ़ होती हुई भी पुरानी मर्यादाओं और नये जीवन की आवश्यकताओं के प्रति जागरूक है । परमानन्द विवशता से जूझता है, मार्ग उसे नहीं मिलता, फिर भी माँ के द्वारा आदर्श के प्रति निष्ठा उसे घोर संकट से मुक्ति देती है । कर्त्तव्य के प्रति जागरूक रहने के कारण भूल करता हुआ भी वह सम्भल जाता है । समाज परिस्थिति की प्रतिध्वनि है जिससे व्याघात पाकर प्राणी अपनी भूल पहचानता है ।

इस सामाजिक नाटक में जीवन के विभिन्न पहलुओं का संघर्ष लहरों की तरह विकारों के थपेड़ों से टकराकर अपने में एकरस हो जाता है । यही इसकी कहानी है । लक्ष्य के प्रति अन्विति नाटक का सौन्दर्य है ।

नाटक का समापन सुन्दर ढंग से हुआ है और अन्त में गुलाब जिसने पहले अपनी सास पार्वती को अपमानित करके घर से निकाल दिया था कहती है—"माँ, मुझे क्षमा करो ।"[१३५]

जिस समय परमानन्द गुलाब को प्याला देता है और गुलाब परमानन्द को, तभी माँ पार्वती प्रवेश करती हुई कहती है—"मैं इसी दिन की इन्तजार में थी बेटा परमानन्द ! यह मेरी बहू का असली रूप है ।"[१३६]

अन्त में गुलाब पार्वती के पैर स्पर्श करती हुई कहती है—"तुम"'तुम मेरी माँ हो ।"[१३७]

[१३४] वही, पृ० १५ ।
[१३५] 'पार्वती,' पृ०, ९६ ।
[१३६] वही, पृ० ९६ ।
[१३७] वही, पृ० ९७ ।

राजनीतिक नाटक

क्रान्तिकारी (राजनीतिक—सन् १९५३ ई०)

यह भट्ट जी का राजनीतिक नाटक है। इसमें उन्होंने क्रान्तिकारी दल की गतिविधियों का वर्णन बड़े कौशल के साथ किया है। भट्ट जी ने स्वयं लिखा है—"मेरा क्रान्तिकारी नाटक उसी सामूहिक जागरण की एक झाँकी-मात्र है, क्योंकि यह युग स्वयं अपने में कई छोटे-छोटे युगों को समेटे हुए है।"[१३८]

यह नाटक दिवाकर के चारों ओर घूम रहा है। दिवाकर ही क्रान्तिकारी दल का नेता है। इसकी पत्नी रेणु और माँ दयामयी भी पुलिस के अत्याचारों से पीड़ित हैं। इस सम्बन्ध में सुमित्रानन्दन पन्त ने लिखा है—"समस्त नाटक जैसे दिवाकर के पूर्ण बलिदान के लिए एक उत्तप्त यज्ञकुण्ड हो, जिसकी आत्माहुति उसकी अप्रतिहत चारित्रिक दृढ़ता को निखारती है, घटना चक्र की निर्मम नृशंसता को भी द्रवीभूत कर उसके अमानुषीय हत्याकाण्ड एवं रक्त-तर्पण को एक प्रकार की निष्ठा तथा पवित्रता प्रदान कर देती है।"[१३९]

दिवाकर सी० आई० डी० अफसर मनोहरसिंह के घर रहकर वीणा को देश भक्त बना देता है पर उसके दल के लोग इस अपराध मे उसे प्राण-दण्ड की सजा देते हैं :

स्वामी—पार्टी ने दिवाकर को प्राणदण्ड दिया है।

वीणा—प्राणदण्ड क्यों ?

स्वामी—कारण जानने की आवश्यकता नहीं।

वीणा—दिवाकर को प्राणदण्ड !

यह वही वीणा है जिसे दिवाकर ने देशभक्त बनाया था और जिसने अपने पति मनोहरसिंह के गोली मारकर अपनी माँग का सिन्दूर अपने ही हाथों से विनष्ट किया है।

अन्त में दिवाकर भी ट्यूडर को गोली से मारकर स्वयं मर जाता है। जब उसकी मृत्यु का समाचार उसके दल के लोगों को यासीन द्वारा मिलता है :

"*सब लोग*—रक्त-तर्पण !

स्वामी—अपने रक्त-तर्पण द्वारा हम प्रतिज्ञा करते हैं कि हम उनके पद-चिह्न पर चलकर माँ को बन्धन-मुक्त करेंगे।"[१४०]

इसी स्थल पर दिवाकर की पत्नी रेणु भी मूर्छित होकर सदा के लिए गहरी

१३८ 'क्रान्तिकारी'—दो शब्द, पृ० ६।

१३९ वही—विचार (सुमित्रानन्दन पंत), पृ० १।

१४० वही, पृ० ६९।

नींद सो जाती है।

राजेन्द्र—स्वामी, दा के साथ भाभी भी चली गई।[१४१]

स्वामी—देख रहा हूँ, रेणु का त्याग दिवाकर दा से किसी प्रकार कम नहीं है। इनको भी उसी स्थान पर पहुँचाओ, राजेन्द्र, उसी स्थान पर।"[१४२]

अन्त में पुलिस के आने के कारण सब भाग जाते हैं। यह भट्ट जी की सफल रचना है। इसमें कथा-उपकथाओं की अन्विति तथा दृश्य-विधानों में संगति होने के कारण नाटक अध्येता को तन्मय कर लेता है। इसके अतिरिक्त सन्देह क्रान्ति के लिए कितना घातक होता है और बहुमत कितना भ्रामक हो सकता है यह भी बादलों में बिजली की तरह कौंध उठता है।

पद्य-नाटक

एकला चलो रे (पद्य—सन् १९४८ ई०)

इस पद्य-नाटक में भट्ट जी ने वर्णन किया है कि संसार के महापुरुषों ने कितने कष्ट, विभीषिकाओं और झंझावातों का सामना करके मानव-लोक का मार्ग प्रशस्त किया है। भट्ट जी ने स्वयं लिखा है—"संसार के सभी महापुरुष, जिन्होंने मनुष्य जाति का पथ प्रशस्त किया है, भयाक्रान्त, पीड़ित, मानसिक, सामाजिक, राजनीतिक रोगियों को स्वस्थ जीवन, कर्त्तव्य की भावना, सद्बुद्धि, सद्विवेक, सदाशयता प्रदान की है, जिन्होंने बीहड़ पथों, घने जंगलों में भटकते, तूफानी नदियों में भ्रान्त, बिजलियों से कड़कते, मूसलाधार वर्षा से मग्न और अग्निदाह से प्रज्वलित संसार में मानव जाति की कल्याण-कामना से ऊर्जस्वित होकर नवीन पथ, नवीन दिशा, नवीन प्रकाश, नवीन ज्ञान के द्वारा विश्व के लोगों को प्राणदान दिया है—वे सब संसार की चिन्ता किए बिना अपनी आत्मा से निर्धारित, विवेक से प्रकाशित, चिन्ता से उद्भूत अपना अकेला मार्ग बनाकर चले हैं, वे कभी सामाजिक गर्हा, कुधर्म के आडम्बर, रूढ़ियों की परम्परा से प्रभावित नहीं हुए और सदा अकेले ही चले हैं। राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद और गांधी ने संसार में उसके कल्याण के लिए नवालोक दिया। गांधी जी की नोआखाली-यात्रा ने किस प्रकार जातीय वैमनस्य के सागर में डूबते, क्रोध, ईर्ष्या, राग-द्वेष के विष से मृत भारतीयता को प्राणदान किया, यही इस पद्य-नाटक में दिखाने का प्रयास किया है।"[१४३]

वस्तुतः इस नाटक में नाटककार ने इन महापुरुषों के महान् कर्त्तव्यों का वर्णन करते हुए बताया है कि अकेला मनुष्य भी संसार के कल्याण के लिए पर्याप्त काम कर सकता है।

१४१ वही, पृ० ८२–८३।
१४२ वही, पृ० ८३।
१४३ 'एकला चलो रे'—प्रारूप, पृ० १।

इसीलिए भट्ट जी ने नाटक में 'एकला चलो रे' का अनुरोध किया है।

दृष्टिकोण

भट्ट जी ने पौराणिक नाटकों मे वर्तमान समाज की समस्याओं को प्रस्तुत किया है। महाभारत की अम्बा 'विद्रोहिणी-अम्बा' में वर्तमान युग की नारी समस्याओं का अद्भुत विद्रोह के साथ बखान कर रही है। अम्बिका के स्वर भी अम्बा से ही मिलते-जुलते हैं। अम्बालिका की भी इनके विचारों मे पूर्ण आस्था है। इस नाटक में नारी के शुद्ध हृदय की फुफकार, प्रतिहिंसा की मूर्ति और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की आह व्याप्त है।

'सगर-विजय' मे भी नाटककार ने सत् और तामस् भावों का संघर्ष दिखाकर सत् की जीत तथा तामस् की पराजय दिखाई है। वास्तव मे लेखक समाज को ऐसी भावभूमि सौंपना चाहता है, जहाँ ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, गृह-कलह आदि प्रवेश न पा सकें और समाज में सर्वत्र प्रेम, स्नेह और शान्ति हो।

'नहुष-निपात' में लेखक ने नहुष को काम-प्रतीक बनाकर काम को जीवन मे हेय और पराजय का सहचर स्वीकार किया है। भट्ट जी का यह दर्शन, फ्रायड के दर्शन के पूर्णतः विपरीत है।

भट्ट जी के ऐतिहासिक नाटकों का कथानक भारतीय इतिहास से सम्बन्धित है और पात्र दूर-दूर से ढूंढ कर बौद्ध और जैन ग्रन्थों से निकाले गये है। इनमे देश के पतन के कारणों पर अधिक प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त इन नाटकों में भारतीय संस्कृति, मानवता और राष्ट्रीय गौरव की कहानी भी संहित है। इनसे लोक को अपने अतीत के ज्ञान के साथ-साथ वर्तमान को अनुकूल और भविष्यत् को महान् बनाने की प्रेरणा मिलती है। इनमें अधिकतर नाटक वियोगान्त शैली में लिखे गये हैं, इसीलिए ये पाठक को आकर्षित करने में समर्थ हैं। वियोग के क्षण सभी को भाव-विभोर कर देते हैं। वस्तुतः ये सभी नाटक मानव में देश-भक्ति के भाव जगाने में समर्थ हैं।

भट्ट जी ने सामाजिक नाटकों में समाज का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत किया है। समाज के सभी वर्गों की बातें वहाँ कही गई है। भट्ट जी का मन सभी के प्रति संवेदनशील है। हाँ, पूँजीपति और विशेषकर शोषक वर्ग के प्रति रुख कुछ कठोर है। उनका विश्वास था कि मानव मूल-रूप में श्रेष्ठ है, पर परिस्थितियाँ उसे सब कुछ करने के लिए बाध्य कर देती है। नाटककार ने भाव और कर्म के सामंजस्य की भावना से प्रेरित होकर इन नाटकों की रचना की है। इनमें अधिकांशतः सामाजिक दुर्बलताओं, मनहूसियत, समाज के विचार-वैभिन्न्य, विचार-स्वातन्त्र्य, मूढ़ताओं, कुप्रथाओं और रूढ़िवादी रीति-रिवाजों की सच्ची तस्वीरें दिखाकर पाठकों को लज्जित किया गया है। इसके अतिरिक्त समाज कैसे उन्नति के पथ पर आरूढ हो सकता है इसका समुचित वर्णन किया गया है। लेखक का स्पष्ट मन्तव्य है कि हम दुर्गुणों और दुर्बल-

ताओं को छोड़कर और समुचित गुणों का विकास करके प्रगतिशील समाज की रचना कर सकते हैं।

भट्ट जी ने समाज के यथार्थ चित्रण के साथ-साथ युग की क्रान्तिकारी पार्टी की गतिविधियों का अभिव्यंजन अपने राजनीतिक 'क्रान्तिकारी' नाटक में किया है। समस्त नाटक दिवाकर के बलिदान के लिए यज्ञकुण्ड बना हुआ है। वीणा और रेणु अपनी परिस्थितियों के वैषम्य के कारण अन्त में सब कुछ दिवाकर पर ही निछावर कर देती हैं।

निष्कर्ष

भट्ट जी ने नाटकों में युग की और मानव-जीवन की विभिन्न समस्याओं को समाधान सहित प्रस्तुत किया है। भट्ट जी ने आदर्शवादी कल्पना के द्वारा लोक और जीवन का सही-सही चित्र खींचा है। इनकी नाट्य रचनाओं में एक आदर्श है जो जन-जीवन में नवीन उल्लास, स्फूर्ति और स्पन्दन उत्पन्न करता है। उन्होंने सामन्ती युग का चित्रण करके नए युग की आँख खोली है। नाटकों में भट्ट जी की भारतीय संस्कृति, पुनीत कर्मों और उदात्त भावों के प्रति गम्भीर निष्ठा है। नाटकों में सभी युग, सभी धर्म और वर्गों का आख्यान विद्यमान है। हाँ, मध्यवर्ग का चित्रण अन्य वर्गों की अपेक्षा कुछ अधिक है। इन नाटकों में अनुभूति के साथ-साथ ईमानदारी और सचाई भी पर्याप्त मात्रा में है। कहीं-कहीं पर भट्ट जी ने व्यंग्यों का आश्रय भी लिया है पर वे स्निग्ध और सरल हैं, कड़वे कदापि नहीं हैं। इसके साथ-साथ उनके नाटकों में दासता-वृत्ति और हीनता के भावों का अभाव है और उनमें स्वतन्त्र विचारों तथा स्वतन्त्र दृष्टिकोण का विकास अधिक हुआ है। नाट्य-विधान के क्षेत्र में प्रायः उन्होंने मौलिकता से काम लिया है। उच्चस्तरीय कलापूर्ण जीवित अभिनय का सौन्दर्य उनके नाटकों में अनुपम है। वस्तुतः भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से उनके नाटक सफल हैं।

'विश्वामित्र और 'दो भाव-नाट्य' (सन् १९३४-३५ ई०)

भाव-नाट्य में हृदय के भावों का वर्णन होता है। इसमें पात्र प्रायः प्रतीक मात्र होते हैं। अन्तर्मन के भावों और गम्भीर अनुभूति की अभिव्यक्ति काव्य के द्वारा ही सम्भव है, क्योंकि भावों को तरंगायित करने की क्षमता गद्य की अपेक्षा पद्य में अधिक है। इनमें न घटना, न कथा प्रत्युत अन्तर्जगत् के भावों का संघर्ष बड़ा मधुरिम होता है। शारीरिक प्रदर्शन प्रायः शान्त पर मन की भावना बड़ी उन्मुक्त एवं बलवती होकर क्रीड़ा करती है। प्राकृतिक दृश्यों की योजना उद्दीपन रूप में होती है। भट्ट जी के विचारानुसार—"मन के विकारों को मनोभाव कहते हैं। दूसरे शब्दों में ये मानसिक आवेग हैं। इनसे आन्तरिक सृष्टि का संचालन होता है। इन्हीं भावों का चित्रण भाव-नाटकों में है। इसी से मैंने इनकी संज्ञा भाव-नाटक दी है, गद्य की

अपेक्षा पद्य मे भावों के सूक्ष्म चित्रण, कल्पना का योग रहने तथा मर्मस्पर्शिता का अवसर अधिक रहता है।"[१४४]

"भाव-नाट्य वे रचनायें है, जिनमे भावमयता, अनुभूति की तरलता और पात्रों के आन्तरिक संघर्ष का विशेष ध्यान रखा जाता है। दूसरे शब्दों में, भाव नाट्य वह नाटक है जो अपने आन्तरिक अनुभवों से प्रेरित होकर बाह्य जगत् मे अपना मानस रूप स्थापित करता है।"[१४५]

"यद्यपि गीति और भाव-नाट्य दोनों मे ही गीत-तत्व उनका प्राण-स्पन्दन होता है तो भी भाव-नाट्य के लिए अथ से इति तक गीत अपेक्षित हैं।"[१४६]

"पात्र ऐतिहासिक हो या पौराणिक, वह किसी शाश्वत मनोभाव का प्रतीक होता है। गीत ही इसके भी माध्यम होते है, क्योंकि अन्य काव्य-रूप इस प्रकार की भावानुभूति का व्यक्तिकरण कर ही नही सकते।"[१४७]

"यह कलात्मक सृष्टि है जिसमे भाव, हलचल, गति, सजीवता मानो जीवन और समस्याओं का एक कटा हुआ टुकड़ा है।"[१४८]

"गीति-नाट्य से ही बहुत कुछ मिलते-जुलते कतिपय अन्य नाटक भी हिन्दी में हैं जिन्हें हम आसानी से भाव-नाट्य कह सकते है। इनमें घटना की मासलता नही है, भावना की सरलता है।"[१४९]

"इनमें भावों का एकीकरण तथा अन्तर्जगत् के भावो की उथल-पुथल अथवा संघर्ष ही प्रधान होता है। उनमें शारीरिक प्रदर्शन की अपेक्षा मानसिक चिन्तन की ही प्रधानता होती है।"[१५०]

विश्वामित्र

इसमें केवल तीन पात्र हैं। विश्वामित्र मानव दम्भ के प्रतीक है। उर्वशी मानव के प्रति स्त्री की विवश उपेक्षा की प्रतीक है और मेनका सौन्दर्य, स्त्रीत्व और मातृत्व की प्रतिमा है। नाटक का प्रारम्भ हिमालय की तलहटी में देवदारु के वृक्ष के नीचे बैठे हुए तपस्वी विश्वामित्र से होता है। विश्वामित्र अपने अहंकार से प्रभावित होकर कहते हैं :

१४४ 'विश्वामित्र और दो भाव-नाट्य'—स्पष्टीकरण, पृ० 'क'।
१४५ श्री रामगोपालसिंह चौहान : 'हिन्दी नाटक—सिद्धान्त और समीक्षा', पृ० ३६६।
१४६ श्री विनयमोहन : 'दृष्टिकोण', पृ० ११४।
१४७ डा० मनमोहन गौतम : 'उदयशंकर भट्ट : व्यक्ति और साहित्यकार'—भट्ट जी गीति-नाट्य और भाव-नाट्य, पृ० ८०।
१४८ श्री रामचन्द्र महेन्द्र : 'एकांकी और एकांकीकार', पृ० १३७–३८।
१४९ डा० नगेन्द्र : 'आधुनिक हिन्दी नाटक', पृ० ११७।
१५० 'समालोचक', मार्च १५, १९५८, पृ० १५।

बुझ सकते रवि मेरे भृकुटि निपात से।"[१५१]

इस अहं-प्रधान पुरुष के सम्मुख दो नारियाँ है। एक मेनका है जो पुरुष के जीवन को अपने स्नेह, सौन्दर्य और माधुर्य से आलोकित करती है और दूसरी उर्वशी है जो मानव की शक्ति, बल और दर्प से टक्कर लेते को प्रस्तुत है :

मैं करती हूँ घृणा मनुज से इसलिए,
जग का साधन हमें बना सुख ले रहा।"[१५२]

मेनका ठीक इसके विपरीत शुद्ध नारीत्व का प्रतीक है :

मैं न घृणा करती हूँ नर से हे सखी,
वह तो मेरे रूप हृदय की प्यास है।"[१५३]

मेनका को देखकर विश्वामित्र का अहं भी पिघल जाता है :

जाने जाने क्या सोता-सा जागता,
तुझे देख मन में लहरें उठ रहीं।"[१५४]

इसी प्रकार प्रेम का उदय होता है। मेनका कुछ समय के लिये अन्तर्धान हो जाती है तो विश्वामित्र पागल-से होकर आँख बन्द कर अनुभव करने लगते हैं :

बाहर हो तुम नहीं हृदय में छिप रहीं
आँखों में ही झूम रही हो क्यों प्रिये।"[१५५]

मेनका के प्रकट होते ही प्रेम की परिणति हो जाती है। फलतः शकुन्तला का जन्म होता है। मेनका भी भाव-विभोर होकर गाने लगती है :

इसके सम्मुख स्वर्ग, सुधा, सुख हेय है
हेय मान, सम्मान, ज्ञान, अपवर्ग भी।"[१५६]

इसमें भी उर्वशी नारीत्व का अहं जगाती है :

भूल गई क्या अपने ही उद्देश्य को
भूल गई क्या जीवन की मृदु रागिनी।"[१५७]

उर्वशी की इस बात को सुनकर मेनका आहत-सी होकर विश्वामित्र से कहती है :

लो यह पाप पुण्य जो भी कहो,
मैं जाती हूँ तुम्हें तुम्हारा सौंपकर।"[१५८]

१५१ 'विश्वामित्र और दो भावनाट्य'—विश्वामित्र, पृ० ३।
१५२ वही, पृ० ८।
१५३ वही, पृ० ११।
१५४ वही, पृ० १८।
१५५ वही, पृ० २५।
१५६ वही, पृ० ३१।
१५७ वही, पृ० ३३।
१५८ वही, पृ० ३४।

अन्त में ऋषि भी दुःखी होकर कहने लगते है :

मैं बनने ब्रह्मर्षि चला था, दुःख हाँ,
राजा बनने चला भिखारी हो गया
हीरा बनने चला कोयला हो गया।"[१५९]

बालिका को विश्वामित्र भी छोड़कर चले जाते है और इस प्रकार इस भाव-नाट्य मे नर और नारी के अहं, आकर्षण और विकर्षण की कहानी व्याप्त है।

मत्स्यगन्धा

'मत्स्यगन्धा' भट्ट जी का सबसे सुन्दर और प्रिय भावनाट्य है। इसकी कथा का मूलाधार महाभारत की सत्यवती का प्रेमाख्यान है। इस भावनाट्य मे मत्स्य-गन्धा यौवन की प्रतीक है और अनग उसका सहायक मित्र ! शान्तनु ससार है तो पराशर यौवन और मनुष्य की कमजोरी है। नाटक का प्रारम्भ मत्स्यगन्धा और उसकी सखी सुभ्रु के नदी-किनारे के उपवन में सन्ध्या-समय पुष्प चुनने के दृश्य से होता है।

सुन्दर महान् सब
नित्य देखती हूँ सखि, मुक्त-गुच्छ-तारिका का।"[१६०]

शैशव के उपरान्त यौवन के आगमन पर मत्स्यगन्धा उन्मत्त-सी होकर अपनी सखी सुभ्रु से कहती है :

जाने कैसा हो रहा, कैसा यह हो रहा है,
मेरी सब इच्छा की सीमायें बिखरती हैं।"[१६१]

काम-वासना-पूर्ति की आशंका से तडित्वत् मत्स्यगन्धा कहने लगती है :

ओ अनंग, ओ अनंग।
मैं दरिद्र केवट की बेटी हूँ उपाय-हीन
एक उल्कापात-सी निरर्थ धराधाम पर।[१६२]

मत्स्यगन्धा का हृदय आत्म-समर्पण के लिए विकल हो जाता है पर समर्पण से पूर्व समाज, धर्म, लोक-लज्जा सभी का भयावह रूप उसके सामने आता है। पराशर समझाते हुए कहते है :

ऊँच-नीच कोई नहीं, पाप-पुण्य कहीं नहीं
कर्माकर्म कुछ नहीं, ओ अनंगरंजिते।[१६३]

ऋषि अपनी वासना की तृप्ति कर मत्स्यगन्धा को अनन्त मद-राशि होने का

१५९ वही, पृ० ४०।
१६० 'विश्वामित्र और दोभाव नाट्य'—मत्स्यगन्धा पृ० ४६।
१६१ वही, पृ० ४८।
१६२ वही, पृ० ५२।
१६३ वही, पृ० ६१।

वरदान देकर चले जाते हैं और साथ-साथ यह भी कह देते है कि नारी-प्रिय भी सदा प्रिय नहीं रहता है ।

मत्स्यगन्धा के यौवनाधार महाराज शान्तनु आखेट के समय सिंह के आक्रमण से घायल होकर मर जाते हैं । जब सुभ्रु उनकी मृत्यु की सूचना मत्स्यगन्धा को देती है तो वह चौंक पड़ती है और करुण क्रन्दन करती हुई कहती है :

लौटाओ, लौटाओ प्रभु, क्षण भी युगान्त है
यौवन का वेग ऐसा प्राणहीन देखा कब ।[१६४]

अन्त में मत्स्यगन्धा अनंग से चिर-यौवन का वरदान समाप्त करने का अनुरोध करती है :

ले लो यह वरदान (ले लो यह अभिशाप)
लौटाओ अनंग यह वेदना समुद्र-सी ।
सीमाहीन, अन्त-हीन, मन-हीन, प्राण-हीन ।[१६५]

अनंग से प्रार्थना अस्वीकृत हो जाने पर मत्स्यगन्धा निराश होकर विपन्न भाव से कह उठती है :

हाय, मेरे जीवन का कैसा यह अपरूप
अपमान दीप्त है । न अन्त है अनंग रंग ।[१६६]

जब आँखें खोलकर देखती है तो कहीं भी कुछ नहीं दिखाई देता । तब निराशा की घनीभूत पीड़ा से आहत होकर कहने लगती है :

डूबो नभ, डूबो रवि, डूबो शशि, तारिकाओ ।[१६७]

बस यह कह कर मूर्छित हो जाती है और सर्वत्र सन्नाटा छा जाता है ।

राधा

'राधा' भावनाट्य में नारी का परम सात्विक रूप है । कदाचित् यह 'मत्स्यगन्धा' का पूर्ण विलोम है । श्रीकृष्ण अनिर्वचनीय रसस्रष्टा और प्रेम-सौन्दर्य के प्रतीक है । नारद भक्ति के अहम् के प्रतीक हैं । राधा में नारी के अनुराग का आध्यात्मिक स्वरूप है । अनुराग की उत्पत्ति बड़े ही सहज और अनजाने ढंग से हो गई है :

और कहती जा रही अज्ञात पथ में भूल सब कुछ,
भूल सब अपना-पराया स्मृति विकल का भार लेकर,
ढो रही हूँ क्या न जाने क्या न जाने खो रही हूँ ।[१६८]

वासना का उसमें स्पर्श नहीं है :

१६४ वही, पृ० ७४ ।
१६५ वही, पृ० ७६ ।
१६६ वही, पृ० ७७ ।
१६७ वही, पृ० ७७ ।
१६८ 'विश्वामित्र और दो भाव-नाट्य'—राधा, पृ० ८३ ।

मग्न थी बहती चली आ रही अनजान पथ से
कुछ न लेकर कुछ न पाकर ।[१६६]

सात्विकता इतनी है कि बदले मे वह कुछ नहीं चाहती :

चाहिए मुझको न कुछ भी प्रेम का प्रतिदान उनके ।[१७०]

अन्त में नारद द्वारा राधा का विश्लेषण इस प्रकार किया गया है :

राधिका थी और कोई नहीं प्रकृति-सुन्दरि,
स्नेह की, सुख की, स्पृहा की, त्याग की अनुराग-वाणी ।[१७१]

इसके अतिरिक्त नारद और भी कहते हैं :

कृष्ण के संग ही तुम्हारा नाम होगा, धाम होगा,
प्राण होगा, कर्म होगा, विभव होगा, कामना भी ।[१७२]

धीरे-धीरे सूर्यास्त हो जाता है। सर्वत्र अंधकार छा जाता है और राधाकृष्ण की प्रतिच्छवि उसी अंधेरे में चमकती दिखाई पड़ती है। राधा का यह सायुज्य रूप है जिसमें वह अपने को भूल गई है और उसका अस्तित्व भी कृष्णमय हो गया है। यह आदर्श प्रेम-क्षेत्र में सर्वथा नवीन, राष्ट्रीयता और देश-प्रेम की भावना से भरा हुआ है।

दृष्टिकोण

'विश्वामित्र' भाव-नाट्य में भट्ट जी ने पुरुष के अहम् की नारी के सम्मुख पराजय दिखाई है। नारी के सौन्दर्य को देखते ही मानव-मन में काम का उदय होता और काम से मानव का अहंकार नष्ट हो जाता है। अहंकार का पराभूत होना ही प्रेम का उदय है। इस प्रकार इस नाट्य में संसार से निवृत्त विश्वामित्र मेनका के सौन्दर्य पर आसक्त होकर सांसारिक बन जाते हैं। मेनका के चले जाने पर विश्वा-मित्र भी पुन: लोक-निवृत्ति का मार्ग अपना लेते हैं। इस प्रकार इस भावनाट्य में निवृत्ति प्रवृत्ति में और प्रवृत्ति निवृत्ति में क्रीड़ा करती है। मानव के इन्हीं संचारी भावों की उथल-पुथल को प्रतीक रूप में इस भावनाट्य में निरूपित किया गया है।

'मत्स्यगन्धा' भट्ट जी का अत्यधिक भावमय और श्लाघ्य भावनाट्य है। इसमें मत्स्यगन्धा के जीवन में शैशव के उपरान्त यौवन के समागम, काम के मधुर संगीत की ध्वनि और वासना का उदय एवं आनन्द-लाभ का स्वाभाविक चित्रण है। यौवन की अतृप्ति से उठी हुई मन की हलचल भी बड़ी मनोहारी और संवेदनशील है। अन्त में मत्स्यगन्धा इसी अतृप्त लालसा से आहत होकर मूर्छित हो जाती है। इस भावनाट्य में आदि से अन्त तक भावों का संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व बड़ी ही सफल गति से अभिव्यक्त

[१६६] वही, पृ० ८५।
[१७०] वही, पृ० १२३।
[१७१] वही, पृ० १२६।
[१७] वही, पृ० १२८।

हुआ है। प्रकृति के भव्य चित्र और अनुपम काव्यशक्ति ने इसे बड़ा ही प्राणवान् बना दिया है। गीतों की मनोवेगों और मानसिक संघर्ष को अभिव्यक्त करने की शक्ति ने नाटक में चार चाँद लगा दिये हैं। वास्तव में यह भावनाट्य भट्ट जी की अमर रचना है और हिन्दी लोक के पास अक्षय निधि है।

'राधा' भावनाट्य में अन्तर्द्वन्द्व और संघर्ष का अभाव है। भाव की मधुरिमा और भाषा में गति होने के कारण पाठक को पर्याप्त आनन्द मिलता है। राधा ने इसमे अपने शुद्ध और सात्विक प्रेम का आदर्श प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष

तीनों भावनाट्यों का कथानक पौराणिक होते हुए भी पात्रों का उदात्त चरित्र और विपुल भावों की सरिता को बहाता हुआ समीचीनता का परिचायक है। भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से भावनाट्य सफल है पर 'मत्स्यगन्धा' इन सब में अनुपम और भावमय है। यौवन की तरंग तीनों भावनाट्यों में हिलोरें मार रही है। विश्वामित्र चपेट में आ ही जाते हैं, मत्स्यगन्धा मूर्छित होकर गिर पड़ती है और राधा सायुज्य रूप धारण कर अपने शुद्ध एवं सात्विक प्रेम का परिचय देती है। इन भावनाट्यों के नाम भट्ट जी ने मुख्य पात्र के आधार पर रखकर कला-मर्मज्ञता का परिचय दिया है और इन सब में भावनाट्य के गुण भी विद्यमान हैं।

कालिदास (तीन ध्वनि-रूपक—सन् १९४८ ई०)

प्रस्तुत संग्रह में तीन ध्वनि-रूपक 'कालिदास', 'मेघदूत' और 'विक्रमोर्वशी' संगृहीत हैं। तीनों रूपकों का दिल्ली रेडियो स्टेशन द्वारा प्रसारण भी हो चुका है। ये ध्वनि-रूपक कुछ हेर-फेर के साथ स्टेज-नाटक का रूप भी धारण कर सकते हैं।

कालिदास

इसमें भट्ट जी ने महाकवि कालिदास के प्रसिद्ध ग्रन्थों के उद्धरण देकर उनकी प्रतिभा का और विलासवती के प्रेरक स्वरूप का चित्रण किया है। कवि ने 'ऋतु-संहार' में न केवल ऋतुओं का ही वर्णन किया है अपितु मानव जीवन के सुख-दु:ख, आचार विचार और प्राकृतिक सुषमा का मनोवैज्ञानिक ढंग से वर्णन किया है। 'मेघदूत' में यक्ष मेघ से अपनी पीड़ा कहकर अपनी प्रिया यक्षिणी को सन्देश भेजता है। अन्त में दोनों के मिलन के पश्चात् प्रेम की पीर शान्त हो जाती है। 'कुमार-सम्भव' में पार्वती के शृंगार-वर्णन के साथ शिव का उसकी तपस्या से प्रभावित होना भी निरूपित किया है। 'मालविकाग्निमित्र' में मानव के सौन्दर्य और उसकी सुख-दु:ख की भावना का बड़े कौशल के साथ वर्णन किया है। 'विक्रमोर्वशी' में उर्वशी को देवलोक की अप्सरा के साथ-साथ मानवी चरित्र से भी अलंकृत किया है। इसके पश्चात् 'अभिज्ञान शाकुन्तल' की रचना की जो महाकवि की अमर कृति है। अन्त में कवि ने अपनी

प्रियतमा विलासवती को रघुवंश की रचना करके शान्त किया। इस ध्वनि-रूपक का आख्यान महाकवि कालिदास की कृतियाँ ही हैं।

मेघदूत

यह महाकवि कालिदास का महाकाव्य है। इसमें यक्ष का मन पुष्प चुनते हुए यक्षिणी को देखकर आकृष्ट हो जाता है। अतः यथासमय कुबेर पर पुष्प नहीं पहुँच पाते तो कुबेर क्रोध मे यक्ष को शाप देता है :

एक वर्ष का निर्वासन है
तुझको दिया गया इस क्षण से,
जाओ उस रामाद्रि शिखर पर
एक वर्ष तक रहो यक्ष, तुम।[१७३]

परिणामतः यक्ष अपनी प्रेयसी यक्षिणी से एक वर्ष के लिए दूर हो जाता है। यक्ष अपनी प्रेयसी के पास मेघ को दूत बनाकर अपना सन्देश भेजता है। मेघ प्रिय का सन्देश प्रेयसी को दे देता है। धीरे-धीरे अवधि-काल और शाप का अस्तित्व भी विलीन होता जा रहा था। अवधि की समाप्ति और शाप के मोचन होने पर यक्ष अपनी प्रियतमा से आकर मिलता है :

यक्ष आ गया मृत जीवित सा
स्मरण मात्र कंकाल देह सा
दोनों मिले हृदय भर दम्पति
शक्ति और विश्वास मिल गये।[१७४]

इस पर यक्षिणी कहती है :

तुम मिले सुख सृष्टि मानो आ गई।[१७५]

अन्त मे दोनों मिलकर सम्मिलित गान गाते हैं :

मिल गये दो प्राण फिर से मिल गये,
खिल गये दो पुष्प फिर से खिल गये।[१७६]

विक्रमोर्वशी

उर्वशी को कैलाश पर्वत से इन्द्रलोक लौटने पर केशी राक्षस सताता है। महाराज पुरूरवा इस दैत्य से उर्वशी का उद्धार करते है पर प्रथम मिलन में ही उर्वशी की छवि महाराज के मन में समा जाती है। महाराज उर्वशी को उसके सम्बन्धियों पर छोड़कर अपने मन का रहस्य विदूषक को बता देते हैं। इसी समय महाराज को

१७३ 'कालिदास' (तीन ध्वनिरूपक)—मेघदूत, पृ० ४५।
१७४ वही, पृ० ७६।
१७५ वही, पृ० ७६।
१७६ वही, पृ० ७६।

उर्वशी का वल्कल पर लिखा हुआ प्रणय-सन्देश भी मिलता है। तभी भरत मुनि एक नाटक के अभिनय में उर्वशी से उसके भावी पति के विषय में प्रश्न पूछते हैं तो उर्वशी अपना पति पुरूरवा को स्वीकार करती है। इस पर भरत मुनि कुपित होकर उर्वशी को मृत्युलोक में जाने का शाप दे देते हैं। इन्द्र इस शाप की अवधि पुत्र-दर्शन-पर्यन्त तक निश्चित कर देते हैं। सखियाँ महाराज की मनोव्यथा का अनुभव कर उर्वशी को मृत्युलोक में छोड़कर चली जाती हैं। दुर्भाग्य से एक दिन उर्वशी महाराज पुरूरवा से रूठकर कार्तिकेय के गन्धमादन उद्यान मे चली जाती है जहाँ प्रवेश वर्जित था। वहाँ वह लता के रूप में परिवर्तित हो जाती है। पुरूरवा उसके वियोग में अत्यधिक विलाप और रुदन करते है। इसी बीच मे आकाशवाणी होती है कि यदि पुरूरवा संगमनीय मणि को अपने पास रखकर उर्वशी रूपी लता का आलिगन करे तो उर्वशी को अपना पूर्व रूप प्राप्त हो सकता है। पुरूरवा तदनुकूल उर्वशी को प्राप्त कर लेता है और सुखपूर्वक राजधानी में जीवन-यापन करने लगता है। एक दिन अचानक कोई वनवासिनी स्त्री अल्पवयस्क युवक के साथ राजदरबार में उपस्थित होती है। वह अल्प-वयस्क युवक ही उर्वशी का पुत्र और राज्य का उत्तराधिकारी घोषित किया जाता है। फलतः उर्वशी कहती है :

> **आज्ञा दो अब नाथ विदा दो,**
> **बस इतना ही संग साथ था।**[१७७]

इस पर पुरूरवा कहते हैं :

> **जाओ प्रिये, स्वर्ग को जाओ,**
> **मैं भी तप के हित जाता हूँ।**[१७८]

यह सुनकर उर्वशी दुःखी मन से कहती है :

> **मुझे भूल मत जाना हे प्रिय,**
> **आओ पुत्र भेंट लूँ तुमसे।**[१७९]

इसी अवसर पर एक व्यक्ति नारद-आगमन की सूचना देता है। स्वयं नारद आकर पुरूरवा और उर्वशी को यह सन्देश देते हैं :

> **देवी उर्वशी यहाँ रहेंगी**
> **और आप भी अभी न जायें**
> **वन को, क्योंकि युद्ध होना है**
> **सुर-असुरों में निकट काल में,**
> **सुरपति पर प्रभावित हैं नृप,**

१७७ वही—विक्रमोर्वशी, पृ० ११८।
१७८ वही, पृ० ११८।
१७९ वही, पृ० ११८।

परम पराक्रम से नृपवर के,
यह सन्देश दिया सुरपति ने ।[१८०]

इस प्रकार उर्वशी को जीवन-पर्यन्त महाराज पुरूरवा की सहधर्मचारिणी होने का वरदान प्राप्त हो जाता है ।

दृष्टिकोण

भट्ट जी ने 'कालिदास' रूपक में कवि के समय और ग्रन्थ-प्रणयन की प्रेरणा का सुन्दर ढंग से प्रतिपादन किया है । इस रूपक में महाकवि कालिदास. के ग्रन्थो के साथ-साथ तत्कालीन भारतीय संस्कृति की महिमा का वर्णन भी किया है ।

नाटककार ने 'मेघदूत' में स्वतन्त्रता से काम लिया है और यक्ष के वियोगालाप को मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है । रूपक में प्रसंगानुकूल गीतों की योजना बडी ही मधुर है ।

'विक्रमोर्वशी' रूपक तो प्राय: मूल नाटक के ही समान है पर भट्ट जी ने इसमें स्वतन्त्रता से पर्याप्त मात्रा में काम लिया है ।

निष्कर्ष

'कालिदास' (तीन ध्वनि-रूपक) में भट्ट जी ने कालिदास प्रणीत ग्रन्थों की महत्त्वपूर्ण व्याख्या की है । इसके साथ-साथ तत्कालीन समाज, सभ्यता एवं सस्कृति, धर्म, पारस्परिक मानवीय सम्बन्धो का चित्र भी सफलता के साथ अंकित किया है । भाव, भाषा और कला की दृष्टि से भी तीनों ध्वनि-रूपक सफल है ।

अशोकवन-बन्दिनी तथा अन्य गीति नाटक (सन् १९५८ ई०)

गीति-नाट्य शुद्ध काव्य है । इसमें भावों की प्रधानता रहती है और रस इसकी आत्मा है । इसमें आन्तरिक भावों और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति गीतों द्वारा होती है । गीति-नाट्य मानस-भावों की सरिता है जिसमे अन्तर्द्वन्द्व का कौतुक बड़ा वेगवान् और आनन्द देने वाला होता है । इसमें भावों की तीव्रता और गीतो की अजस्र धारा के द्वारा ही नाटकीय कौशल अपने उत्कर्ष पर पहुँचता है । अत: इन नाटकों में गीत और भाव प्रधान होते है और वर्ण्य-वस्तु प्राय: गौण ।

"It will only be poetry when the dramatic situation has reached such a point of intensity that poetry becomes the natural utterances, because then it is the only language in which the emotions can be expressed at all"[१८१]

"There is however another kind of drama, poetic drama, in

[१८०] वही, पृ० १२० ।

[१८१] T. S. Eliot, 'Selected Prose', Penguin Books, page 70.

which the dramatists are trying to pluck his individual from the mass and set him against the background of life itself."[१८२]

अशोक-वन-बन्दिनी

सीता बन्दिनी के रूप में अशोक-वाटिका में चारों ओर से राक्षसियों से घिरी बैठी है। राक्षसियाँ उसे भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रलोभन दे रही हैं पर सीता के लिए ये प्रलोभन व्यर्थ थे। राम की स्मृति उसे वेदना बन कर दण्ड दे रही थी। उसकी इस राम-तन्मयता से प्रभावित होकर त्रिजटा अन्य राक्षसियों से कहती है :

जाओ जाकर कहो जो कि कहना तुम्हें,
मैं छोडूंगी नहीं सत्य का पक्ष जो।[१८३]

इसी समय रावण प्रवेश करके कहता है—"मैंने विनय नहीं सीखी है सीखा करना शासन।"[१८४] सीता रावण की इस आत्मश्लाघा और वैभव को कुछ नहीं समझती और राम के सम्मुख उसे तुच्छ मानती है। रावण इस पर क्रुद्ध होकर सीता को खड्ग से मारने के लिए तत्पर होता है :

मन्दोदरी—**क्या करते हो, शौर्य इसी में रह गया, यह अबला है—**
रावण—**विष इसके मुख में भरा।**
मरने दो, मरने दो, आगे से हटो,
लौट नहीं सकता अब पीछे खड्ग यह।
मन्दोदरी—**लो, मेरा शिर नत है खड्ग-प्रहार को।**
देख नहीं सकती मैं लांछित नाथ को
कीर्ति कलंकित होगी लंकाधीश की।[१८५]

इस पर रावण कहता है :

एक मास की अवधि मैं दे रहा हूँ,
इसी बीच में यदि तूने बदला मन नहीं,
तो तेरा वध निश्चित ही है जान ले।[१८६]

दूसरे दृश्य में सीता अशोक-वृक्ष के नीचे बैठी है और राम की स्मृति में अत्यधिक व्याकुल है और राक्षसियाँ भी उसे वेदना और यातना देने में क्रियाशील हैं। यहाँ तक कि मन्दोदरी भी यह कहती है :

[१८२] Priseilla Thouler, 'Modern Poetic Drama', page 9.
[१८३] 'अशोक-वन-बन्दिनी तथा अन्य गीति-नाटक', पृ० १२।
[१८४] वही, पृ० १२।
[१८५] वही, पृ० २३–२४।
[१८६] वही, पृ० २६।

बाँध चली आई क्यों गठरी रूप की,
आग लगा दी तूने मेरे महल में।[१८७]

इस पर सीता उसे स्त्री की महत्ता को ही समझाती है और अन्त में मन्दोदरी प्रभावित होकर यह कहती है :—

सचमुच तुम हो धन्य, जानकी धन्य तुम,
धन्य अयोध्या, मिथिला की भू पूत है।[१८८]

इस गीति-नाट्य में सीता का अन्तर्द्वन्द्व, स्थिति-परवशता में आत्मनिपीड़न और संवेदना का भावमय वर्णन किया गया है।

सन्त तुलसीदास

इस गीति-नाट्य मे वस्तु-विधान की अपेक्षा तुलसी के चरित्र के पीछे-पीछे घटनाएँ स्वयं चल रही है। तुलसीदास अपनी पत्नी रत्ना से अत्यधिक स्नेह करते हैं। रत्ना का भाई कई बार लेने के लिए आया पर एक बार भी न ले जा सका। इसी-लिए दो सखियाँ आपस से एक दूसरे से कहती हैं :

कई बार आकर लौटा है
रत्ना का भाई उस घर से,
नहीं चाहते स्वामी उसके
उसे भेजना माता के घर।[१८९]
पत्नी है यदि उनकी तो
कन्या भी तो किसी पिता की।[१९०]

इस प्रकार दो सखियों के वार्तालाप से नाटक प्रारम्भ होता है। एक दिन तुलसीदास जी की अनुपस्थिति में रत्ना का भाई उसे अपने घर ले जाता है पर पीछे-पीछे तुलसीदास जी भी वहाँ पहुँच जाते हैं :

बिन कहते बिन बोले उसने
रत्ना को आबद्ध कर लिया।[१९१]

इस पर रत्ना दुःखी होकर बोली :

यद्यपि तुमको लाज नहीं है
पर मैं तो निर्लज्ज नहीं हूँ।[१९२]

इस पर तुलसी उत्तर देते हैं :

[१८७] वही, पृ० ३८।
[१८८] वही, पृ० ४५।
[१८९] वही—सन्त तुलसीदास, पृ० ५२।
[१९०] वही, पृ० ५३।
[१९१] वही, पृ० ५५।
[१९२] वही, पृ० ५७।

प्रेम जानता नहीं लाज को,
प्रिये, प्रेम अन्धा होता है।[१६३]

अन्त में रत्ना भभक कर कहती है :—

भोग भोग ही क्या जीवन है ?[१६४]

इतना ही नहीं इससे आगे भी कहती है :

प्रेम क्यों न करते उससे
जो अनश्वर सुन्दरतम है।[१६५]

रत्ना के इन शब्दों को सुनकर तुलसी की आँखें खुल जाती हैं और स्वयं कहने लगते हैं :

धन्य हुआ हूँ धन्य, आज मैं
तुमने मेरी आँखें खोलीं।
महाज्ञान दे दिया मुझे है,
किन्तु बिदा दो मैं जाता हूँ।[१६६]

तुलसी राम-भक्त होकर चले जाते हैं। रत्ना रोकने का प्रयास करती है पर तुलसी का मन प्रताड़ना खाकर वैरागी हो चुका था। उन्हें अब संसार का कोई मोह और आकर्षण बन्धन में नहीं बाँध सकता था। इस गीति-नाट्य में मानस-संघर्ष और मनोदशाओं के उतार-चढ़ाव का सुन्दर वर्णन किया गया है।

गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण

इस गीति-नाट्य में गुरु द्रोण से सम्बन्धित महाभारत की कुछ घटनाओं का उल्लेख है। नाटक के प्रारम्भ में गुरु द्रोण दुर्योधन के क्रूरतम और व्यंग्य भरे हुए इन वाक्यों को सुनकर दुःखी मन से आत्म-चिन्तन कर रहे हैं :

करना जो यही था क्यों न कह दिया हमें
सावधान होते हम विषधर, आप से ?
आपके ही कारण तो जयद्रथ मारे गये
भस्म हुआ मेरा सैन्य-दल घास-फूस सा।[१६७]

यह अपशब्द सुनकर गुरुदेव पश्चात्ताप में डूब जाते हैं। उनकी अन्तरात्मा की छाया भाव-विभोर कर देती है और जीवन की घटनाएँ एक-एक करके उनके अन्तर्मन पर नाचने लगती हैं। छाया उनसे कहती है :

१६३ वही, पृ० ५७।
१६४ वही, पृ० ५६।
१६५ वही, पृ० ६१।
१६६ वही, पृ० ६५।
१६७ वही—गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण, पृ० ७७–७८।

अन्न त्याग कर देते ?
किसने कहा था तुम्हें पापी का साथ दो ।[१९८]

इसके अतिरिक्त उनके मानस में अर्जुन को विशेष रूप से शिक्षित करना, द्रुपद के प्रति प्रतिशोध और प्रतिहिंसा की भावना, अपने पुत्र अश्वत्थामा के साथ विशेष व्यवहार और भील पुत्र एकलव्य को यह कह देना :

नहीं नहीं, जाओ तुम तुम हो अयोग्य सुत,
अधिकारी नहीं तुम शस्त्र-ज्ञान दान के ।[१९९]

द्रोपदी के चीर-हरण को तटस्थ भाव में बैठे हुए देखते रहना, आदि अनुचित कृत्य पीडा पहुँचा रहे हैं

हाय, सब व्यर्थ हुआ, जीवन निरर्थ हुआ ।[२००]

इस आत्म-विश्लेषण नाटक में गीति का रूप निखर गया है और छाया ने अपने प्रभाव से नाटक में विशेष कौतूहल और जिज्ञासा उत्पन्न कर दी है। इस गीति-नाट्य में गुरु द्रोण के उन अद्‌भुत क्षणों का सिंहावलोकन किया गया है जिन्हें उन्होंने कभी सर्वोत्तम माना था ।

अश्वत्थामा

अश्वत्थामा गुरु द्रोण के पुत्र थे । अश्वत्थामा सदय, पण्डित, ज्ञानवान् होते हुए भी क्रूर और प्रतिहिंसा की अग्नि में जल रहे थे । इस गीति-नाट्य मे अश्वत्थामा का मनोवैज्ञानिक चित्रण है । वह पराजय की आग में झुलसने के कारण भूल जाता है कि उसमें कोई ज्ञान या विवेक नाम का कोई स्फुलिंग शेष है । इसीलिए वह प्रतिहिंसा से कहता है :

तू भी जल, अरी जल, मैं भी जलता ही रहूँ,
तू प्रबल, तू अतुल, प्रतिहिंसे ! तू सबल ।[२०१]

रात्रि में अश्वत्थामा ने उल्लू को पक्षियों के नीड़ों से उनके बच्चे निकाल-निकाल कर खाते देखा तो वह भी सोते हुए पाण्डवों की मृत्यु के लिए कटिबद्ध हो गया । इस पर उसके मामा कृपाचार्य और कृतवर्मा ने क्रमशः समझाया :

नहीं, नहीं यह अधर्म तुम क्यों करोगे तात ?
पिता द्रोण देख तुम्हें स्वर्ग से कहेंगे क्या ?[२०२]
सो जाओ अश्वत्थामा, यह विनाशकालरात्रि,

१९८ वही, पृ० ८५ ।
१९९ वही, पृ० ९६ ।
२०० वही, पृ० १०५ ।
२०१ वही—अश्वत्थामा, पृ० १४४ ।
२०२ वही, पृ० ११२ ।

जागने से जागेंगी प्रवृत्तियाँ कलुष की ।[२०३]

पर अश्वत्थामा कहाँ मानने वाला था ! वह सोते हुए द्रौपदी के पाँच शिशुओं, धृष्टद्युम्न और उत्तमौजा की हत्या कर देता है और शिविर में आग भी लगा देता है । यह सूचना पाकर दुर्योधन प्रसन्न होता है पर भ्रम-निवारण हो जाने पर कि वे पांचाली-सुत थे और पाण्डव अन्यत्र गये हुए थे महाशोक के कारण प्राण त्याग देता है । दूसरी ओर से पाँचों पाण्डव खोज करते हुए व्यास मुनि के आश्रम पर पहुंच जाते हैं जहाँ अश्वत्थामा भी मिल जाता है । अर्जुन उसे युद्ध में परास्त कर और ज्ञान-मणि निकालकर गुरुपुत्र होने के नाते क्षमा कर देते है । अब अश्वत्थामा मणिहीन सर्प के समान बेचैन होकर पश्चात्ताप के समुद्र मे डुबकियाँ लगाने लगा । अतः इस गीति-नाट्य मे अश्वत्थामा प्रतिहिंसा के क्षणों का अत्यन्त उद्ग्रीव रूप है ।

दृष्टिकोण

'अशोक-वन-बन्दिनी' गीति-नाट्य में भट्ट जी ने स्त्री के उदात्त भाव, निष्कलंक चरित्र और उसे विश्व की संचालिका शक्ति के रूप में वर्णित किया है । समस्त गीति-नाट्य में सीता के अन्तर्मन की राम के प्रति ऊर्जस्वित आस्था के कारण गीतों में भाव-प्रवणता और अद्भुत नाटकीय कौशल आ गया है ।

'सन्त तुलसीदास' में मानव-मन में क्रीड़ा करने वाले विभिन्न भावों के द्वन्द्व का चित्रण भावमय गीतों में सम्पादित किया गया है । लौकिक प्रेम किस प्रकार अलौकिक प्रेम में परिवर्तित हो सकता है इसका अत्यधिक कुशाग्रता से वर्णन नाटक में अत्र-तत्र बिखरा पड़ा है ।

'गुरु द्रोण' का अन्तर्निरीक्षण गीति-नाट्य में उनके अन्तर्द्वन्द्व का वर्णन बड़ा ही भावमय और श्लाघ्य है । आत्म-विश्लेषण के कारण अनुभूति की संवेदना ने गीतों में नवीन जीवन, लय और गत्यात्मकता भर दी है । मन में उठने वाले भावों की ऐसी यथार्थ कलात्मक अभिव्यक्ति अन्यत्र दुर्लभ है ।

'अश्वत्थामा' में प्रतिहिंसा से उत्पन्न ईर्ष्या की अग्नि प्रज्वलित हो रही है । इसमें कथा का अभाव है पर मानव-मन के संघर्ष और प्रतिक्रिया के स्वर वेग के साथ ध्वनित हो रहे हैं ।

निष्कर्ष

इन गीति-नाट्यों में भट्ट जी की नाट्य कला को बहुत उभार मिला है । अनुभूति को गीति और सुन्दरतम अभिव्यक्ति मिली है । सम्भवतः अन्तर्मन की बात गीति के आश्रय से इतनी भावमय कह देने का कौशल हिन्दी के किसी अन्य कलाकार के पास नहीं है । भट्ट जी के गीति-नाट्यों में भावों को यौवन के साथ-साथ परिष्कृति भी मिली है । इसीलिए नाटकों के संवादों में चुटीलापन, भाव-प्रवणता, गीति के मधुर

[२०३] वही, पृ० ११२ ।

स्वर, ओज, प्रसाद और गतिशीलता भरी पडी है। निःसन्देह भट्ट जी का गीति-नाट्य में कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है।

एकांकी नाटक

भट्ट जी सफल एकांकीकार थे। आपका आधुनिक एकांकी लेखकों में गौरव-शाली स्थान है। आपके एकाकी रचना-कौशल की दृष्टि से समृद्ध, रोचक और सजीव हैं। आपने अन्तर्द्वन्द्व और घटनाओं के घात-प्रतिघात को एकांकी की आत्मा, स्पन्दन और गति के रूप में स्वीकार किया है। प्राचीन शैली के बन्धन को ढीला करते हुए जीवन की समग्रता को नवीन शैली मे अभिव्यक्त किया है। आपने एकांकी, रूपक, रेडियो-रूपक और प्रतीक-एकांकी भी बड़े ही मनोहर एव भावमय लिखे है। युग की सभी समस्यायें आपके नाटकों में प्रतिबिम्बित हो रही हैं, जैसे सभी समस्याये आपकी अपनी निजी समस्यायें थी। यह उनके युगद्रष्टा और लोक-तन्मयता का परिचायक है।

हमें उनके एकांकियों में भारत के आदिम युग से आज तक का पूर्ण परिचय उपलब्ध होता है। उनमें भारत का भव्य अतीत और सांस्कृतिक महिमा, मध्य-युगीन सामन्ती युग का खाका और आधुनिक युग की समस्त समस्याये मुखरित हो रही हैं। कहीं मानव का विकृत अहं उसे पीडा पहुँचा रहा है तो कही स्त्री की स्वतन्त्रता-प्रियता और स्वच्छन्दता उसे उच्छृखंल बनाये हुए है। कहीं पूँजीपति गरीबो का खून चूस रहा है तो कहीं समाज का यथार्थ अत्यधिक वेगवान् होकर स्वयं बोल रहा है। इन सभी बातों को भट्ट जी ने अपने सामाजिक और व्यंग्य-प्रधान एकांकियों द्वारा समाधान सहित बड़े ही विवेक के साथ चित्रित किया है। इन सभी एकांकियों में भट्ट जी ने मानव के विविध पक्षों के चित्रांकन के साथ-साथ रूढ़ियों और व्यामोह को किसी न किसी रूप में तिरस्कृत भाव से देखा है। समाज के कल्याण की कामना इनमें बलवती है। भट्ट जी के अनेक एकांकी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें पचास के लगभग केवल एकांकी ही हैं। अतः अब इन एकांकी नाटकों की भावभूमि मे विचरण करना आवश्यक है।

आपके उपलब्ध एकांकी-संग्रह निम्नलिखित हैं:—

१. अभिनव एकांकी २. आदिम युग और अन्य नाटक
३. स्त्री का हृदय ४. समस्या का अन्त
५. धूमशिखा ६. अन्धकार और प्रकाश
७. पर्दे के पीछे ८. आज का आदमी
९. जवानी और छः एकांकी १०. सात प्रहसन।

अभिनव एकांकी (सन्—१९३५ ई०)

इसमें पाँच एकांकी संगृहीत हैं। इनमें युग का यथार्थ और समस्याएँ अनुप्रा-

णित हैं—"अभिनव एकांकी में आपने विस्मयात्मक अन्त तथा संवाद की प्रगल्भता पर बल दिया है। नाटक के सौन्दर्य-बोध के साथ वस्तु के अभिनव ग्रथन को नाटक का उत्कर्ष मानकर चलने का प्रयास किया है। चमत्कार, जो नाटक की अन्विति का मूल है, उस के साथ जीवन के यथार्थ भावों को लाने की चेष्टा की है।[२०४]

दुर्गा

इस एकांकी में ऐतिहासिक आधार पर युग की विकृतियों और अनैतिकता को चित्रित किया गया है। दुर्गा के पिता विजयसिंह को अफीम का व्यसन है। जब उसके पिता की अफीम के अभाव में मृत्यु होने लगती है तो—"मैं पिता की प्राणरक्षा के लिए क्या अपने को होम नहीं सकती। जरूर जाऊँगी। मैं जाती हूँ। दुर्जन निःशंक होकर मुझ पर अत्याचार करें। सब सहूँगी।"[२०५]

दुर्गा के चले जाने का समाचार जब उसके वृद्ध पिता को मिलता है तो शिथिल-सा होकर कहता है—"हाँ, हाँ, गई। आग में जलने, दुर्जन की वासना के समुद्र में डूबने, कुत्सित अभिलाषाओं के पहाड़ से अपने कोमल हृदय को टकराकर चूर-चूर करने।"[२०६]

विजयसिंह उसी अवस्था में दुर्जनसिंह के समीप जाकर कहता है—"यह लो अपनी अफीम, दुर्जनसिंह। मेरी लड़की को छोड़ दो, मैं पापी हूँ, मुझे सजा दो।"[२०७] यह कह कर वह दुर्जनसिंह के पैरों पर गिर जाता है। इस पर दुर्जनसिंह कहता है—"मैं जो कुछ किया उसके लिए लज्जित हूँ। मुझे क्षमा करो।"[२०८]

अन्त में दुर्जनसिंह और दुर्गा का विवाह हो जाता है। इस मिलन से दो रियासतें ही नहीं मिलतीं, अपितु दो चिर शत्रु भी मित्र हो जाते हैं।

नेता

इस एकांकी में आज के नेता और समाजसुधारक पर कटु व्यंग्य है। इसमें व्यक्ति के सामाजिक समीकरण की दुहरी मनोवृत्ति को पर्दा खोलकर दिखाया गया है। यह नाटक चरित्र-प्रधान न होकर एक विशेष टाइप-सा है—"यह एकांकी चरित्र-प्रधान न होकर टाइप प्रधान है, विशेष कोटि के व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाला है।"[२०९]

इसमें पुरुषोत्तम एक समाज-सुधारक है। वह वर्तमान वर्ण-व्यवस्था को

[२०४] श्री रामचरण महेन्द्र: 'साहित्यानुशीलन', पृ० २७७।
[२०५] 'अभिनव एकांकी', पृ० ९।
[२०६] वही, पृ० १०।
[२०७] वही, पृ० १३।
[२०८] वही, पृ० १५।
[२०९] डा० सत्येन्द्र : 'हिन्दी एकांकी', पृ० १४८।

विनष्ट करके नवीन समाज की रचना करना चाहता है पर जब उसका पुत्र शिक्षित जाटव-कन्या मनोरमा से विवाह करना चाहता है—"नहीं, मैं इस प्रकार की आज्ञा नहीं दे सकता। यह समाज-सुधार नहीं, समाज की हत्या है, संस्कृति का पतन है। हमारा समाज अभी इस काम के लिए...... ।"[२१०]

यह एकांकी वास्तविकता और समाज के यथार्थ से अनुप्राणित है।

उन्नीस सौ पैंतीस

यह एक दृश्य का एकांकी नाटक है। इसमे ग्रेजुएट सुरेन्द्र की बेरोजगारी का वर्णन बड़ा ही करुणात्मक है। वह एक दिन ग्रेजुएट की माँग का विज्ञापन देखता है और तुरन्त प्रार्थना-पत्र भेज देता है। नौकरी अवश्य मिलने की आशा और संकट-समाप्ति के स्वप्न देखने लगता है। भावी सुखी जीवन की कल्पना के लोक मे विचरण करने लगता है। अपनी माँ और पत्नी को यह सूचना देकर प्रसन्नता की लहरों से तरंगायित कर आनन्दमय बना देता है। जब उसे ज्ञात होता है कि वह विज्ञापन उन्नीस सौ पैंतीस का है तो दुःखी होता है और उसकी प्रसन्नता का लोक शोक मे विलीन हो जाता है। भट्ट जी ने एकांकी में युग की वास्तविकता को बेबसी के आँसुओं से भिगोकर आकर्षक और मार्मिक बना दिया है।

वर-निर्वाचन

इस एकांकी में भट्ट जी ने आज की शिक्षित लड़कियो की वर-निर्वाचन प्रथा का उपहास करते हुए ऐश्वर्य-लोलुप पश्चिमी विचारधारा पर व्यंग्य कसा है। इसमें के० पी० चौधरी एक विख्यात बैरिस्टर हैं और शारदा चौधरी की लड़की है। शारदा भूल से पिता के मुवक्किल मनमोहन को इंगलैण्ड रिटर्न आई० सी० एस० सिटी मजिस्ट्रेट जुगलकिशोर समझकर अपना वर निर्वाचित कर लेती है। जब जुगल-किशोर बाबू का चपरासी पत्र देकर जाता है तो भेद खुलता है कि वे आज एक्सीडेण्ट के कारण नहीं आ सके। इस पर शारदा कहती है—

"पिता जी ! क्या फिर मैं इन्हीं से...... ।"[२११]

"चुप रहो। यह निर्वाचन मुझे पसन्द नही।"[२१२]

इस एकांकी में भविष्य में होने वाले अनिष्ट की ओर संकेत है कि बालि-काओं के वर-निर्वाचन की स्वतन्त्रता के परिणाम विवेकजन्य नहीं होंगे।

सेठ लाभचन्द

इस एकांकी में सेठ लाभचन्द का नाम श्लेषात्मक है, जो कंजूसी और मूर्खता

२१० 'अभिनव एकांकी', पृ० १५।
२११ वही, पृ० ६७।
२१२ वही, पृ० ६७।

का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें समाज के धनी लोगों को शोषक के रूप में व्यक्त किया गया है। सेठ लाभचन्द इसी प्रकार का व्यक्ति है, जिसे दया छूकर नहीं गई, मानवता, धर्म जिसके लोक में कोई स्थान नहीं रखते। कोई मरे या जीवे पर सेठ साहब की एक पाई भी कम नहीं होनी चाहिए। एक बार सेठ ठगों की चाल में आकर नागोजा की महारानी के आभूषण को सात हजार रुपये में गिरवी रख लेता है। पुनः पुलिस के वेश में आकर वे ही ठग उसी आभूषण को लेकर नौ दो ग्यारह हो जाते हैं। कहाँ तो कंजूस सेठ ने महादीन की संकटमयी परिस्थितियों को जानते हुए भी उसे एक पाई तक नहीं दी और कहाँ ठगों को सात हजार रुपये दे बैठता है। यह एकांकी यथार्थ से पुष्ट होता हुआ भी धनिक लोगों की वृत्तियों का अच्छा पर्दाफाश करता है।

आदिम युग तथा अन्य एकांकी (सन् १९३५-३६ ई०)

इस एकांकी संग्रह में आदिम-युग, प्रथम विवाह, वैवस्वत मनु और मानव तथा कुमारसम्भव, क्रान्तिकारी विश्वामित्र, शशिलेखा और सौदामिनी एकांकी संगृहीत हैं। इनकी कथा का मूल आख्यान पौराणिक है और भिन्न-भिन्न सामाजिक संस्कृतियों के चित्र हैं। यह सब नाटक वैदिक युग से लेकर मध्य युग तक के विभिन्न चित्र उपस्थित करते हैं। इसके साथ-साथ भारतीय संस्कृति की उदात्तता और भारतीय आदर्श भी इनमें प्राणवान् हैं जिनसे पाठकों को भारत के भव्य अतीत और सृष्टि के आदि का परिचय उपलब्ध होता है। इन नाटकों का कथानक श्रीमद्भागवत, पुराणों और ब्राह्मण ग्रन्थों के शाश्वत सिद्धान्तों से व्याप्त है।

आदिम युग

'आदिम-युग' एकांकी की कथा का प्रारम्भ सृष्टि-निर्माण के प्रारम्भ से होता है। हिमालय के वन-प्रदेश मे नर और नारी की उत्पत्ति अन्य जीव-जन्तुओं के साथ होती है। इसी समय ज्वालामुखी का विस्फोट होता है और सर्वत्र अन्धकार छा जाता है, फलतः जीव व्याकुल होकर इधर-उधर भागते हैं। इसी समय नर-नारी एक दूसरे से टकराते हैं और पूर्णतया आकर्षित हो जाते हैं। दोनों एक दूसरे के साथ रहना प्रारम्भ कर देते हैं। छाया रूप में ब्रह्म दोनों को परस्पर मिलने और आनन्द-लाभ का ज्ञान देता है। परिणामतः उनके अनेक पुत्र और पुत्रियाँ उत्पन्न होते हैं। उनमें से नर का नाम स्वयंभुव मनु और नारी का नाम शतरूपा रखा जाता है। उनकी सन्तति विभिन्न विचार वाली होने के कारण आपस में संघर्ष करती है और अपने माता-पिता को छोड़कर चली जाती है। मनु भी शतरूपा को छोड़कर तप करने चले जाते हैं पर शतरूपा अपनी बालिकाओं के पालन-पोषण में ही रत रहती है। मारीच के मानस-पुत्र कर्दम के समझाने पर मनु को शतरूपा को छोड़कर चले आने पर पश्चात्ताप होता है। तभी शतरूपा वहाँ आ जाती है और मनु से घर चलने का अनुरोध करती है

और मनु भी घर चलने की स्वीकृति दे देते हैं। मनु की दुर्बलता देखकर शतरूपा और उसकी कन्यायें उनकी सेवा करती हैं। मनु के पुत्र भी घर वापिस आ जाते हैं। अन्त में मनु की मृत्यु हो जाती है। मनु की मृत्यु पर शतरूपा कहती है कि मानव-मन को संयत रखने के लिए मृत्यु अत्यन्त आवश्यक है। इस एकांकी में भट्ट जी ने मनु और शतरूपा को प्रतीक मानकर सृष्टि के आदि समय का चित्र प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मा को स्वयंभुव मनु और शतरूपा को चिन्तना शक्ति माना है। नाटककार ने ब्रह्म की कल्पना की विषय वस्तु एकता हेतु की है क्योंकि इसके अभाव में पात्रो का निर्वाह कदाचित् असम्भव था।

प्रथम विवाह

नाटककार ने यह एकांकी वेदो के यम-यमी सूत्र के आधार पर लिखा है। इस नाटक में काद्रवेय और काद्रवेयी का चित्रण संसार के सीधे और सच्चे मनुष्यों का चित्र है। काद्रवेय आर्य भ्रमण करते हुए भारत में आ जाते है जहाँ उनका परिचय भारतीय आर्यों से होता है। इनमें से परिवार के कुछ लोग भारतीय आर्यों के सदृश एक जगह रहकर अपना जीवन-यापन करना चाहते थे। उसी समय उनका परिचय पंचजन नाम के परिवार से होता है। मिलन की प्रथम वेला मे ही विश्वावरा की ओर ज्येष्ठ काद्रा, विश्वपंचजन मध्य काद्रा की ओर एव रुद्रपंचजन उषा काद्रा की ओर आकर्षित हो जाते हैं। कन्या इनके परिवार की स्थायी सम्पत्ति समझी जाती थी। इसीलिए विवाह हेतु काद्रवेय से अनुमति माँगते है पर यह विषय विवाद का रूप धारण कर लेता है। अन्त में ज्ञान का प्रसार करने वाले वरुण पंचजन बुलाये जाते हैं। वे काद्रवेय और अन्य व्यक्तियों को समझाते हैं कि मानव को अपने ज्ञान का उपभोग करते हुए अधिकतम लाभ उठाना चाहिए। सभी उनकी बात से सहमत हो जाते हैं और एक दूसरे के साथ विवाह सम्पन्न हो जाते हैं। तब वरुण कहते है :

> **तुम सब लोग अपनी पत्नियों को लेकर**
> **रहो, सृष्टि बढ़ाओ, कृषि करो, सुन्दर-सुन्दर घर बनाओ**
> **पशुओं को पालो, एक दूसरे की सहायता करो।**[२१३]

अन्त में सब लोग मिलकर कहते हैं :

> **ऐसा ही करेंगे वरुण पितर।**[२१४]

वैवस्वत मनु और मानव

इस एकांकी में वैदिक सभ्यता और संस्कृति का चित्र निरूपित है। जल-प्लावन के पश्चात् आर्य संस्कृति के उद्धारक मनु ही थे। नाटक का प्रारम्भ आश्रम में मृगछाला पर बैठे हुए मनु से होता है। यहाँ पर बैठे हुए मनु समाज की वर्ण-व्यवस्था

२१३ 'आदिम युग और अन्य नाटक', पृ० ६५।
२१४ वही, पृ० ३५।

एवं सुख-सुविधा के विषय में चिन्तनशील है। यहीं पर उन्हें वशिष्ट तथा विश्वामित्र के गोत्र-संघर्ष का समाचार मिलता है। मनु इस संघर्ष की समाप्ति हेतु बृहद् यज्ञ का आयोजन करते हैं। दूसरी ओर आर्यों और दस्युओं में संघर्ष चलता रहता है। दस्युओं का नेता वासुकी राक्षसों से गठबन्धन जोड़ लेता है। बृहद् यज्ञ की समप्ति पर मनु ने वर्ण-व्यवस्था का प्रस्ताव रखा पर ब्राह्मणों ने इसका विरोध किया। राक्षसों एवं दस्युओं से पराजित होने पर ब्राह्मण वर्ण-व्यवस्था के लिए तैयार हो जाते है और तत्पश्चात् मनु के पुत्र और पुत्री आर्यों को युद्ध में शिक्षित करते है।

आर्यो का एक दल बुद्ध के नेतृत्व में हिमालय पर्वत से होता हुआ भारत आया था। बुद्ध पुरुष-वेष धारण की हुई इड़ा से ही इड़ा के सम्बन्ध में पूछता है। बुद्ध की बहन सुनृता इड़ा के पुरुष-वेष पर मुग्ध होकर उससे विवाह का अनुरोध करती है। किन्तु इड़ा अस्वीकृत कर देती है। अन्त में आर्य लोग राक्षसों और दस्युओ को युद्ध में पराजित कर देते हैं। इसी समय बुद्ध को इड़ा के वास्तविक रूप का ज्ञान हो जाता है। फलत: दोनों का गान्धर्व विवाह भी हो जाता है।

अन्त में आर्यों की विजय के पश्चात् सभी लोग मनु के आश्रम में एकत्रित होते हैं और वहीं पर राजा निर्वाचित करते हैं और भारत का नाम आर्यावर्त घोषित किया जाता है। मनु राजा को प्रजापालन का उपदेश और ब्राह्मणों को मन्त्री नियुक्त करते है। इस नाटक के विषय मे भट्ट जी ने स्वयं लिखा है—"उन बिखरे हुए आर्यों को संगठित करने का श्रेय इस नाटक के प्रधान पात्र वैवस्वत मनु को है। मनु ने अपनी तीक्ष्ण एवं विशाल सुदूरगामी दृष्टि से मानव-मात्र के भविष्य को देखा, उसके लिए व्यवस्था की। उस व्यवस्था से सम्पूर्ण एशिया प्रकाशित हो उठा। ऐसे थे वैवस्वत मनु! इड़ा उनकी कन्या थी। वेदों में इड़ा का अर्थ है बुद्धि। मनु को प्रेरणा देने वाली यही कन्या थी। उसी बुद्धि ने स्त्री रूप में स्त्रियों की आवश्यकताओं को और पुरुष रूप में पुरुषों के पुरुषार्थ को पहचाना था। रूपक होते हुए भी कौन कह सकता है कि इड़ा के वे दोनो रूप प्रकृति के विरुद्ध थे? शेष सब अपनी जगह जैसे हैं वैसे ही उन्हें समझना चाहिए।"[२१५]

कुमार-सम्भव

इस एकांकी से तत्कालीन देश की संस्कृति का परिचय प्राप्त होता है। सरस्वती का पार्वती के सम्मुख कालिदास का समर्थन करना विद्या और कला का सम्मान है। यह एकांकी छोटी-सी घटना पर आधारित है कि पार्वती ने अपने शृंगार वर्णन से रुष्ट होकर 'कुमारसम्भव' की अपूर्णता का शाप महाकवि कालिदास को दे दिया है।

इस पर सरस्वती, स्कन्द और शिव भी पार्वती से शापमोचन की प्रार्थना करते हैं पर सबको विफलता और निराशा ही मिलती है। अन्त में शिव समाधिस्थ

[२१५] वही—भूमिका, पृ० झ–ञ।

हो जाते हैं, तब पार्वती चिन्तित होकर सरस्वती से कहती है—"शाप नहीं लौट सकता। हाँ, मैं आशीर्वाद देती हूँ वह काव्य अधूरा रहकर भी विश्व-साहित्य का उज्ज्वल रत्न होगा। कालिदास, तुम महान् हो।"[२१६]

इस पर सरस्वती ने कहा—"चलो, यह मेरा काम है तुम्हारा नहीं।"[२१७]

कालिदास विवश भाव से कुमार सम्भव के जन्मोत्सव के अवसर पर अपूर्ण-काव्य सहित ही सम्मिलित हो जाते हैं। ध्रुवदेवी इस अपूर्ण काव्य को स्वीकार करना अपने पुत्र का अपमान समझती है और महाकवि की इस अनुपम भेंट को अस्वीकृत कर देती है। राजकुमार जोर से चिल्लाने लगता है तो वराहमिहिर कहता है कि जब तक ग्रन्थ स्वीकार न किया जायेगा तब तक राजकुमार रोता ही रहेगा। फलतः महारानी को इस अपूर्ण काव्य को ही स्वीकार करना पड़ता है।

क्रान्तिकारी विश्वामित्र

इस एकांकी में विश्वामित्र का रूप आधुनिक युग के क्रान्तिकारी के समकक्ष है। उन्होंने नरबलि का विरोध करके समाज की मर्यादा और परम्परा में नवीन चेतना का विकास और मानवता को पुष्ट किया है। क्षत्रिय विश्वामित्र ने तप द्वारा ब्राह्मणत्व अर्जित किया था। अपने पुराने रीति-रिवाज, नियम-संयम, आचार-विचार के समर्थक पुरोहित वशिष्ठ का विरोध किया और इस जर्जरित प्राचीनता को, नरबलि, पशुबलि और रूढ़ियों को समाप्त किया।

नाटक में महाराजा हरिश्चन्द्र यज्ञ द्वारा वरुण को प्रसन्न करना चाहते हैं। पुरोहित वशिष्ठ पुत्र-बलि के लिए महाराजा को विवश करते हैं, पर हरिश्चन्द्र पुत्र-बलि की कल्पना से दुःखी होकर मूर्छित हो जाते हैं। महाराजा को चेतना आने पर ब्राह्मण अजीगर्त के पुत्र शुनःशेप की बलि देने को तत्पर हो जाते हैं। हरिश्चन्द्र के इस स्वार्थी दृष्टिकोण से दुःखी होकर वशिष्ठ जी चले जाते हैं। जब शुनःशेप चिल्लाता है तो पुरोहित रूप में आमन्त्रित विश्वामित्र कहते हैं—"मैं यह नर-बलि नहीं होने दूँगा। देवता ऐसा कभी नहीं चाहते। देवता ऐसा कभी नहीं चाह सकते। हम सब उनकी सन्तान हैं, वे हमारे पिता हैं, जनक पुत्र की हत्या नहीं चाहते। मैं ऐसा नहीं होने दूँगा, यह मेरी परीक्षा का अवसर है—दूसरी परीक्षा। एक बार त्रिशंकु की मैं रक्षा कर चुका हूँ। शुनःशेप, मैं तुम्हारे लिए प्राण दे दूँगा। नराधम अजीगर्त !......"

अजीगर्त—हाँ ! हाँ शुनःशेप अजीगर्त का पुत्र है, इसके बदले मे मुझे सौ गायें जो मिली हैं।

विश्वामित्र—अजीगर्त, तुमको इस प्रकार अपने पुत्र को बेचते लज्जा नहीं आई ? तुम्हारा हृदय पुत्र की मृत्यु का ध्यान करके फट नहीं गया ? क्या तुम में

[२१६] वही, पृ० १६१–६२।
[२१७] वही, पृ० १६२।

मनुष्य रह ही नहीं गया, अजीगर्त ?"[२१८]

इसके साथ-साथ क्रोध में शुन:शेप को स्थूण से बाँधने का विरोध करते हुए कहते हैं—"तुम हट जाओ, मैं स्वयं यज्ञ कराऊँगा। मैं देवता को बलि के बिना प्रसन्न करूँगा, नरबलि नहीं दूँगा।"[२१९] विश्वामित्र मन्त्र के द्वारा ही वरुण को यज्ञ मे आमन्त्रित करते हैं। स्वयं वरुणदेव आकर कहते हैं—"विश्वामित्र, मैं तुम्हारी दी गई बलि को सहर्ष ग्रहण करता हूँ।"[२२०]

इसी समय महाराज हरिश्चन्द्र भी नीरोग हो जाते हैं और अन्त मे विश्वामित्र जमदग्नि, लोपामुद्रा, शुन:शेप आदि सहित चले जाते हैं।

शशिलेखा

इस एकांकी मे चित्रित किया गया है कि रूपगर्विणी आनन्दवर्धन की राजनर्तकी और प्रेयसी किस प्रकार बौद्ध भिक्षु कौण्डिन्यायन के सम्मुख आत्मसमर्पण करती है।

शशिलेखा राजनर्तकी होते हुए भी सच्चरित्र और पावन स्त्री है, किन्तु मानवोचित राग-द्वेष से वह मुक्त नहीं है। भिक्षु कौण्डिन्यायन के रूप पर मुग्ध होकर वह उन्हें आत्मसमर्पण करना चाहती है। कौण्डिन्यायन तपस्वी और आत्म-चिन्तक, है उसकी प्रार्थना को अस्वीकार कर देते है।[२२१]

इस अस्वीकृति की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप शशिलेखा अपने प्रेमी विनोदवर्धन से भिक्षु कौण्डिन्यायन का सिर कटवाने का वरदान माँगती है। उसी समय कौण्डिन्यायन प्रवेश करके महाराज से कहने लगते हैं—"लीजिए महाराज! यह मेरा सिर है, इसे काटकर भावी राजमाता की कामना पूर्ण कीजिए।[२२२]

यह सुनकर शशिलेखा प्रभावित होकर कहती है—"मुझे अपनी शरण में ले लो। मुझे आत्म-प्रकाश, वास्तविक शान्ति की ओर ले चलो प्रभो।"[२२३]

अन्त में आगे-आगे भिक्षु और पीछे-पीछे दोनों (शशि और विनोद) चल देते हैं और नेपथ्य से आवाज होती है :

बुद्धं शरणं गच्छामि
संघम् शरणं गच्छामि
धम्मं शरणं गच्छामि।[२२४]

२१८ वही, पृ० १८५।
२१९ वही, पृ० २६०।
२२० वही, पृ० १६५।
२२१ वही—भूमिका, पृ० क–ख।
२२२ वही, पृ० २१६।
२२३ वही, पृ० २२२।
२२४ वही, पृ० २२२।

यह एकांकी बौद्ध धर्म का आख्यान मात्र है।

सौदामिनी

यह एकांकी नाटक प्रभासतीर्थ के सोमनाथ मन्दिर की कथा से सम्बद्ध है। प्रभास का राजा सुदेव श्रवण के राजा विजयार्क को बन्दी बनाकर प्राण-दण्ड देने की व्यवस्था करता है। इससे सौदामिनी और उसकी सखी सुनयना को चिन्ता होती है। एक रोज सौदामिनी बन्दी-गृह से निकल कर और रात्रि मे कुछ सधे हुए सैनिकों के साथ सुदेव पर धावा बोल देती है। युद्ध मे सुदेव पराजित होता है और बन्दी बना लिया जाता है।

यहाँ से एकांकी की कथा दूसरी ओर करवट ले लेती है। अब सुदेव को प्राण-दण्ड देने की बात होने लगती है। पर सौदामिनी अपने पिता विजयार्क से कहती है :

"महाराज! आप राजा होने की अपेक्षा पिता भी हैं, यही मैं कहना चाहती हूँ।"[२२५]

"मैं पिता भी हूँ! किन्तु मैं इस समय न्याय-सिंहासन पर हूँ। कल तक दण्ड-व्यवस्था सुदेव के हाथ में थी, उन्होंने मेरा वध करने की आज्ञा दी थी। किन्तु पश्चात्ताप सबसे बड़ा दण्ड है। मैं तुम्हें निरन्तर पश्चात्ताप करने का दण्ड देता हूँ। तुमने मेरी इस कन्या के एक बार प्राण बचाये थे। नहीं! श्रवण की एक प्रजा के, यह भी मुझे मालूम है। इसलिए यह कन्या, श्रवण की एक प्रजा और विजयार्क की एक पुत्री, मैं तुम्हें सौंपता हूँ।"[२२६]

इस प्रकार अन्त में दोनों का विवाह हो जाता है। और समस्या का समाधान भी पूर्णतया हो जाता है।

स्त्री का हृदय (सन् १९४० ई०)

यह यथार्थवादी एकांकी है। इसमें नारी की दुर्बलता और उसके हृदय के रहस्य को स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया गया है। जगदीश राय का साला कपूर उसे अपनी बहन अंजना के पीटने के अपराध में दो साल की सजा करा देता है। इसके अतिरिक्त उसका पुत्र यशवन्तराय भी जगदीश राय को अपना पिता स्वीकार करने में संकोच का परिचय देता है। हाँ, उसकी पुत्री शोभा अजना से अवश्य यह कहती है :

"जब बाबूजी कमाते थे तब सबको अच्छे लगते थे। यदि न्याय की रक्षा के लिए उनकी नौकरी छूट गई, उन्हें व्यसन लग गया, तो वे ऐसे कड़ुए हो गये कि किसी को फूटी आँखों नहीं सुहाते और अब उन्हें जेल भेजकर तो सबका जी ठण्डा

२२५ वही, पृ० २५४।
२२६ वही, पृ० २५४-५५।

हो गया !"[२२७]

जब यशवन्तराय अपनी माँ के साथ जेलर गुरुनारायण के घर आता है तो वहाँ उसका पिता जगदीश राय भी कैदी के रूप में आ जाता है। अपने पुत्र को देखकर उसका वात्सल्य उमड़ पड़ता है और वह यशवन्तराय को प्यार करने के लिए झपटता है पर अन्य लोग उसे अन्यथा समझकर पीटने लगते हैं। पति को पिटते देखकर अंजना का हृदय काँप जाता है, वह पति के चरणों में मूर्छित होकर गिर पड़ती है और क्रोधाभिभूत होकर यशवन्त से कहती है—"कोई नहीं, क्या यह तेरे कोई नहीं है ? तू ठीक जेलर हो सकेगा बेटा······! हाय····· तुम्हारी यह दशा ! मैं इससे पूर्व ही मर क्यों न गई ? मुझे क्षमा करो !"[२२८]

अन्त में लेखक ने स्त्री के हृदय के कपाट खोलकर भारतीय स्त्री के पावन प्रेम और मर्यादा की पूर्णतः रक्षा कर ली है।

विष की पुड़िया

इस यथार्थवादी एकांकी नाटक में भट्ट जी ने दिखाया है कि स्त्री का मन कितना विकराल, कितना वीभत्स, कितना घृणित हो सकता है। नाटककार ने अत्यधिक कौशल के साथ सौतेली माँ के हृदय को खोलकर सबके सम्मुख रख दिया है। इस एकांकी में अम्बिका प्रसाद की पहली स्त्री से उत्पन्न लड़की सुखिया को दूसरी विवाहित रामो कितनी पीड़ा, कितना कष्ट और बिना अपराध के कितना पीटती है और अन्त में अपने भाई देवकी से विष मंगाकर सुखिया को दूध में पिलाकर उसके प्राण तक ले लेती है।

एकांकी उस समय गम्भीर हो जाता है जब मृतक सुखिया की गोद में बिल्ली का बच्चा मिलता है। यह सम्भवतः सुखिया का सुल्लू के प्रतिप्रेम का प्रतिदान था। अम्मा जी के विष देने का पर्दाफाश भी सुल्लू ने किया था।

"बाबू जी, अम्मा ने दूध में इसे जहर दिया है।"[२२६]

अम्बिका प्रसाद—जहर किसने दिया, रामो ! रामो ! हत्यारी ! आखिर प्राण लेकर ही शान्त हुई।[२३०]

इस धरा पर माँ-विहीन बच्चे को क्या-क्या सहना, देखना और भोगना पड़ता है आदि ही इस एकांकी का आख्यान है।

असली और नकली

इस एकांकी में गरीब नाटककार ने किसी एमेच्यौर कम्पनी के लिए नाटक

२२७ 'स्त्री का हृदय', पृ० १२।
२२८ वही, पृ० २५।
२२६ वही—विष की पुड़िया, पृ० ७६।
२३० वही—विष की पुड़िया, पृ० ७७–७८।

लिखा। जब नाटक के अभिनय का समय आया तो मुख्य नायक बीमार पड़ गया। नाटककार को विवश भाव से नाटक में भाग लेना पड़ा। उसकी एक पत्नी थी और दो बच्चे।

इधर नाटककार को विलासी का अभिनय करना पड़ा। उसकी प्रेयसी बार-बार उसे अपने हाव-भावों से अपनी ओर आकृष्ट करने लगी। यहाँ तक कि एक बार चुम्बन की बारी भी आई। यह अभिनय तो था ही, परन्तु इतना स्पष्ट है कि उस प्रक्रिया मे उसे अपनी भूखी, दुर्दशाग्रस्त, व्याकुल पत्नी की भी याद आती रही। यह सब लीला उसकी पत्नी, जो न जाने कैसे रंगभूमि के पास पहुँच गई थी, देख रही थी। उसने पहचाना कि यह उसी का पति है जिसने उसे पत्र मे एक बार नही, कई बार लिखा कि उसकी दशा अच्छी नहीं है। परन्तु देखती है उसका पति किसी रमणी के साथ विलास-क्रीड़ा कर रहा है और समाज-मर्यादा के विरुद्ध उस रमणी का चुम्बन भी कर रहा है। पत्नी यह देखकर आग-बबूला हो गई। उसे यह ध्यान न रहा कि यह वास्तविक नहीं, नाटक है। इसे देखकर वह रोई, चिल्लाई और अन्त में मूर्छित होकर मंच के पास गिर पड़ी।

स्त्री—कहते थे, मेरा निर्वाह नहीं होता, तुम्हें कैसे बुलाऊँ? क्या यही तुम्हारा चरित्र है? लो अपने इन बच्चों को, अपने पाप को, पापी, पराई स्त्रियों के साथ बात करते, हँसते, गाते तुझे शरम नहीं आती? धूर्त!

चिन्तन—दर्शको! वह मेरा नकली नाटक था और यह असली?[२३१]

नाटककार ने इस एकांकी में नाटककार की दीन दशा का यथार्थ चित्र अंकित किया है।

समस्या का अन्त (सन् १९४७ ई०)

इसमें नौ एकांकी संगृहीत हैं। इनमें विभिन्न मानसिक प्रवृत्तियों का मनोवैज्ञानक विश्लेषण है। मनुष्य के बौद्धिक विकास के साथ-साथ उसके गुण-दोषों, सद्-असद् के विवेक का भी निरूपण किया गया है।

समस्या का अन्त

इस एकांकी में माणविका के सुद्ध प्रेम और त्याग का आदर्श प्रस्तुत करके भद्रक और वामरथ जाति की शत्रुता के अन्त का वर्णन किया है। श्रुतबुद्धि भद्रक और माणविका वामरथ जाति से सम्बन्धित है। ये दोनों जातियाँ आपस में एक दूसरे की घोर शत्रु थीं पर माणविका श्रुतबुद्धि से प्रेम करने लगी थी। श्रुतबुद्धि माणविका के प्रेम से प्रभावित होकर उसे अपने गण में ले जाता है। इस पर वामरथ लोग भद्रकों पर चढ़ाई कर देते हैं। माणविका दोनों गणों को युद्ध न करने का अनुरोध करती है पर उसकी कोई नहीं सुनता। फलतः माणविका निराश होकर

[२३१] वही—असली और नकली, पृ० १२३।

अपना सिर काटते हुए कहती है :

"यह मेरा सिर आप दोनों की भेंट है।"[२३२]

अन्त में सब कहते हैं—"माणविका का बलिदान चिरंजीवी हो ! माणविका की जय ! हमारी कटुता, शत्रुता का अन्त हो गया। आज से हम एक हैं। वामरथ भद्रकगण की जय !"[२३३]

गिरती दीवारें

यह एकांकी थोथी वंश-मर्यादा पर कटु व्यंग्य है। प्रस्तुत एकांकी मे नाटककार ने १९वीं शती के आभिजात्य वर्ग का एक स्तोत्र दिया है।

इस एकांकी में राय साहब का बड़ा लड़का विजय मोहन पूर्वजों की लकीर का फकीर बना हुआ है और राय साहब का छोटा लड़का प्रद्युम्न कुमार ठीक इसके विपरीत है :

विजय—तब यही कैसे कह सकते हो कि पुरानी बातें बुरी हैं। हम भी तो, पिता जी भी तो मनुष्य हैं, हमें यह बातें बुरी नहीं दिखाई देतीं।[२३४]

प्रद्युम्नकुमार—मुझे बाहर आना-जाना पड़ता है, लोगों से मिलना-जुलना पडता है। मुझे समय के साथ चलना होगा। मैं पैदल भी चलता हूँ, गाड़ी में भी चलता हूँ।[२३५]

अन्त में मर्यादा के कट्टर हिमायती राय साहब की मृत्यु हो जाती है।

पिशाचों का नाच

भट्ट जी ने इस एकांकी में भारत-विभाजन के पश्चात् की घटनाओं का उल्लेख किया है और अपने विकृत अहं का भी परिचय दिया है। अनिल और विश्वास पतित कन्याओं के उद्धार के पक्ष में हैं पर रवि को यह स्वीकार नहीं है। अन्त में अपनी पुत्री मृणालिनी के आने पर कहता है :

"यदि आप लोग ऐसी कन्याओं का उद्धार करने के लिए तैयार हैं, तो मैं मृणालिनी को पुन: स्वीकार करता हूँ।[२३६]

इस पर—

माणिक्य—मैं शुभदा को फिर स्वीकार कराता हूँ। वह मेरी है, मेरी ही रहेगी।

अनिल—हिन्दू धर्म में भी समय के अनुसार परिवर्तन होना चाहिए।

२३२ 'समस्या का अन्त', पृ० १६।

२३३ वही, पृ० १६।

२३४ डा० सत्येन्द्र: 'एकांकी और एकांकीकार,' पृ० ६५।

२३५ 'समस्या का अन्त'—गिरती दीवारें, पृ० २६।

२३६ वही—पिशाचों का नाच, पृ० ४५।

तीनों युवक—आओ, हम मिलकर औरों का उद्धार करें। गुण्डों के हाथों से उनकी रक्षा करें।[२३७]

स्वतन्त्रता के पश्चात् के अमानुषी अत्याचार, दुर्दशा, पतितों का उद्धार और अपनी रक्षा की चाह ही इस एकांकी का सार है।

बीमार का इलाज

इस एकांकी में नाटककार ने मध्यवर्गीय परिवार के लोगों की भिन्न-भिन्न रुचि और विश्वास को व्यक्त किया है। कान्ति का मित्र विनोद ग्रीष्मावकाश में उसके घर आ जाता है। अचानक ज्वर से पीडित हो जाने पर इलाज की बातें प्रारम्भ हो जाती हैं। कान्ति के पिता का विश्वास एलोपैथिक पर है तो उसकी माँ का विश्वास वैद्य और पूजा तथा मन्त्र आदि पर है। नौकर सुखिया झाड़-फूंक में विश्वास रखती है तो कान्ति होम्योपैथिक की वकालत करता है। बीमार के इलाज की बात प्रायः गौण पर वैयक्तिक विश्वास विवाद का रूप धारण कर लेता है। परिणामतः सब अपनी-अपनी रुचि की दवाई देना चाहते है पर विनोद इस दृश्य को देखकर यह कहकर चला जाता है—"मेरा बुखार घूमने से उतरता है। कान्ति, मैं घूमने जा रहा हूँ।"[२३८]

आत्मदान

इस एकांकी में सरला के स्वातन्त्र्य, स्वच्छन्दता और बडप्पन पर करारी चोट की गई है। सरला अपने पति की उपेक्षा करती हुई माथुर के साथ टेनिस खेलने क्लब में जाती है, पर जब उसका पति विश्वेश्वर नर्तकी से प्रेम करने लगता है तो आग-बबूला होकर पति से झगड़ा करने लगती है। इन दोनों के झगड़े मे सुषमा समाधान के रूप में उपस्थित होती है:

सुषमा—इस झगड़े में दो बातें हैं—एक तो तुम्हारा पढे-लिखे होने का अभिमान, वह पहले भी था, अब झगड़े के कारण उग्र हो गया है। दूसरा आत्म-समर्पण का अभाव। प्रेम समर्पण चाहता है—।

सरला—तो इसका तो अर्थ यह हुआ कि मैं उनकी दासी हूँ!

सुषमा—इसका अर्थ यह कभी नहीं है कि तुम दासी हो। यह मनुष्य का स्वभाव है वह अपनी प्रिय वस्तु को सुरक्षित रखना चाहता है।[२३९]

इसी समय सरला का पति शराबी की दशा में और सब कुछ मयूरी नर्तकी को लुटा कर ड्राइवर के साथ घर आता है। तब सरला कहती है—"मुझे मालूम हो गया है मेरे अभिमान के मद में मूर्छा थी, विष था, मरण का संकेत था। मैंने

२३७ वही—पिशाचों का नाच, पृ० ४५।

२३८ वही—बीमार का इलाज, पृ० ६४।

२३९ वही—आत्मदान, पृ० ८५।

आज जीवन का तरल, मादक, स्वच्छ रस प्राप्त किया है नाथ ! मेरी आँखें खुल गईं।

विश्वेश्वर—चलो, हम दोनों ही भूले हुए थे।[२४०]

इस प्रकार आत्मदान के द्वारा ही समस्या का अन्त होता है—"सुषमा नाटकीय समस्या का समाधान बनकर आती है। और दो व्यक्तियों के रागात्मक सम्बन्धों को स्थापित करने में सफल होती है। सुषमा द्वारा सरला के उपदेश कोरा कर्त्तव्य-बोध है, जो सरलता से गले के नीचे नहीं उतारा जा सकता। लेखक ने उसे सहज सम्भाव्य बना दिया है।[२४१]"

जीवन

भट्ट जी के विचारानुसार—इन नाटकों में 'जीवन' नाम का एक प्रतीक-रूपक है। हिन्दी में एकांकी प्रतीक रूपक बहुत कम लिखे गए हैं। 'जीवन' सबसे अधिक गम्भीर तथा संकेतवादी प्रतीक रूपक है।[२४२]

इस प्रतीक रूपक में काम, सौन्दर्य, यौवन, जरा, वासना, रति अपनी-अपनी बात स्वयं कहते हैं। अन्त में सबके सब विवेक से सम्मुख समर्पण कर देते हैं। फलत: विवेक कहता है—"मैं चाहता हूँ, हम सब मिलकर युद्ध के पीड़ित, वैज्ञानिक शस्त्रास्त्रों से जर्जरित, स्वार्थ से बहकी हुई, हिंसा से धूसरित, क्रोध से जलती हुई सृष्टि को जीवन देकर सुख प्रदान करेंगे। मनुष्यता की रक्षा करेंगे। मनुष्यता का यह रूप देखकर सृष्टि के विधाता काँप रहे हैं। प्रकृति विक्षुब्ध होती है। भगवान् शंकर की समाधि विचलित हो गई है। आज हमें अपने को बदलना होगा।

कामदेव—मुझे भी यह दिखाई दे रहा है कि सम्पूर्ण प्रकृति चिन्तामग्न है।

रति—मनु के जल-प्लावन का युग स्मरण हो रहा है।

यौवन—हमारा अस्तित्व मनुष्य जाति से है। इसकी रक्षा होनी आवश्यक है।

विवेक—हमारा एक ही ध्येय होना चाहिए :

मनुष्य सृष्टि की रक्षा
मनुष्य सृष्टि का सुख
मानवता, मानवता।[२४३]

वापसी

इस एकांकी में भट्ट जी ने यथार्थ, धन के लोभ और स्वार्थ का अच्छा चित्रण किया है। राय साहब बर्मा से काफी रुपया कमाकर अपने कुटुम्ब-भाई अम्बिका के यहाँ

२४० वही—आत्मदान, पृ० ८८।
२४१ डा० विजयेन्द्र स्नातक : 'समीक्षात्मक निबन्ध'।
२४२ 'समस्या का अन्त'—प्राक्कथन, पृ० ३।
२४३ वही—जीवन, पृ० १०९।

रहने लगते है। राय साहब का स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। इसीलिए निरीक्षण हेतु डाक्टर को घर बुलाया जाता है। परन्तु इनके कुटुम्बी लोगों के लिए मनुष्य से बढ़कर रुपया था, इसीलिए घर आए डाक्टर को वापस कर देते है। इतना ही नही, राय साहब को मृतक मानकर उनका बक्स खोलने लगते हैं। इस पर राय साहब आँखें खोलकर कहते हैं—"बस, हाथ मत लगाना। रख दो चाबी !"

दीनानाथ और अम्बिका—भाई साहब, तुम तो मर गये थे ? यह पाखंड !

राय साहब—मैं मरा नहीं अभी जिन्दा हूँ। तुम्हारी परीक्षा ली थी। आज मेरी आँखें खुल गई हैं। मुझे मालूम हो गया, कौन कितने पानी में है। मैं तुम्हारा भाई भी नहीं। मैं वापिस बर्मा जाऊँगा।[२४४]

अन्त में राय साहब सरोजिनी जो उनकी पत्नी की छोटी बहन थी और चन्द्रिका जो उनकी पहली पत्नी की लड़की थी को साथ लेकर घर से चले जाते हैं। इस एकांकी में स्वार्थान्धता का हृदय को पीड़ा पहुँचाने वाला चित्र खींचा गया है, जो स्वार्थ, लोभ और अमानुषी रंगों से रंजित है।

मन्दिर के द्वार पर

इस एकांकी में हिन्दुओं के धर्माडम्बर, वर्ग-भेद, संकीर्णता, छुआछूत का बड़ा ही मार्मिक चित्र अंकित किया है। जब आक्रमणकारी मन्दिर के अपहरण हेतु आक्रमण करते हैं तो चमार उसकी रक्षा अपने प्राणों की बाजी लगाकर करते है और आक्रान्ता को विफल कर देते हैं।

जब हरि मन्दिर में पूजा-प्रसाद चढ़ाने जाता है तो पुजारी लट्ठ मार कर उसे अचेत कर देता है। इस समय घटनास्थल पर डाक्टर पहुँच कर धर्म के ठेकेदारों से कहता है—"मन्दिर में शराबी, चोर, जुआरी, रिश्वतखोर, गरीबों का खून चूसकर एक का चौगुना-पचगुना करने वाले आ सकते हैं, औरतों को ताकने वाले बदमाश जा सकते हैं......, तो यह निरीह ईश्वर पर सचमुच श्रद्धा रखने वाला मनुष्य नहीं आ सकता, जो धर्म के लिए प्राण दे सकता है ? यह घोर अत्याचार है। ऐसी हिन्दू जाति अब जीवित नहीं रह सकती।"[२४५]

इसके पश्चात् डाक्टर हरि की माँ से पूजा करने का अनुरोध करता है—बहन, उठो, चलो, मैं तुम्हें पूजा कराने ले चलता हूँ, देखें कौन रोकता है। भगवान् के सामने हम सब एक हैं।"[२४६]

अन्त में सब लोग कहते हैं—"चलो, यह हमारा पाप है जिसने हमें ऊँच-नीच का भाव दिया, हम सब एक हैं। हिन्दू-मात्र एक हैं। हिन्दू धर्म महान् है।[२४७]

२४४ वही—वापसी, पृ० १२४।
२४५ वही—मन्दिर के द्वार पर, पृ० १४१।
२४६ वही—मन्दिर के द्वार पर, पृ० १४२।
२४७ वही—मन्दिर के द्वार पर, पृ० १४२।

दो अतिथि

यह एक व्यंग्य प्रहसन है जिसमें दो आर्य-समाजी उपदेशकों के लोभी और पेटू होने पर व्यंग्य कसा गया है। एक दिन दो आर्य-समाजी उपदेशक रात्रि में स्टेशन मास्टर के अतिथि बन जाते हैं। उनमें से एक ही स्टेशन मास्टर और उनकी पत्नी का भोजन झाड जाता है। स्टेशन मास्टर जो अपने और पत्नी के लिए दूध लाता है, उसे भी एक ही निगोट जाता है। दूसरी बार स्टेशन मास्टर दूध और चीनी की पुड़िया लाता है तो इस बार चीनी की पुड़िया गायब हो जाती है। यदि इस बार स्टेशन मास्टर चीनी की पुड़िया लाता है तो दूसरी बार का लाया हुआ दूध साफ हो जाता है :

"मैंने तो सोचा था ऐसे ही सो जाऊँगा। पर आपकी भक्ति का तिरस्कार करना भूल होगा। ओ३म्, ओ३म्, आपने भोजन कर लिया महाशय जी ?

स्टेशन मास्टर—(क्रोध से) जी। पहले आप तो भोजन कर लीजिए। हमारा क्या है ?[२४८]

अन्त में पति-पत्नी भूखे पेट सो जाते है। यह कोरा व्यंग्य-प्रहसन है। स्टेशन मास्टर का बार-बार दूध लाना और उन पेटू लोगों के पास रख देना व्यंग्य को मूर्तिमान करने के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ?

धूमशिखा (सन् १९५० ई०)

इस एकांकी-संग्रह में छः एकांकी संगृहीत हैं। इनमें नाटककार की अनुभूति मानस का द्वार खटखटाकर अभिव्यक्त हुई है।

विस्फोट

इस एकांकी में आलोचक-वर्ग पर कटु व्यंग्य किया गया है। उनके ज्ञान का पिटारा और बुद्धि की महिमा एकांकी का प्रतिपाद्य है। नागेश एक कवि हैं, जिन्होंने अपनी तीस वर्ष की साहित्य-साधना के आधार पर विद्वत् समाज में अपना प्रतिष्ठित स्थान बना लिया है। एक बार कवि नागेश निरर्थक तुकबन्दी करते हैं, जिसका प्रकाशन 'साधना' नामक पत्रिका में हो जाता है। इसी कविता को लेकर अपरा के घर पर कवि-गोष्ठी होती है। सिद्धेश्वर सबसे कविता का अर्थ पूछता है तो सब अपने-अपने वाद की दुहाई देने लगते हैं। बात इतनी बढ़ जाती है कि हाथापाई तक की नौबत भी आ जाती है। इसी समय सम्पादक महोदय आकर नागेश के पत्र को पढ़कर कविता का रहस्य खोल देते हैं—"जब उस दिन मैं गंगा-तट पर बैठा था, अचानक मेरे मित्र कह उठे—'क्या आप तत्क्षण कविता बना सकते हैं ?' मैंने उत्तर दिया—'हाँ !' और उसके साथ ही बोलना प्रारम्भ कर दिया। मेरे मित्र लिखने

लगे। तीन-चार मिनट में वह रचना तैयार हो गई।"[२४६]

पत्र को सुनकर सब बगलें झाँकने लगते हैं और चुपचाप हो जाते है। बस इसे विस्फोट कहकर ही अपने मन की कसक को शान्त कर लेते है।

नया नाटक

इस एकांकी में नाटककार की दशा का यथार्थ चित्र अंकित किया गया है। नाटककार कितनी गम्भीर परिस्थितियों में जीवन-यापन करता है पर समाज का स्वार्थी वर्ग उसे इस पर भी तंग करता है। नाटककार पैसे के अभाव में नाटक लिखने के रुपये पेशगी ले लेता है पर उचित वातावरण न मिलने के कारण समय पर नाटक लिखकर भेजने में असमर्थ रहता है। अतः रिमाण्इडर पर रिमाइण्डर आते हैं। इतने पर भी नाटककार नही लिख पाता और घरेलू समस्याओ मे ही उलझकर रह जाता है। बस यही नाटककार की बेबसी, एकांकी का कौतूहल, जिज्ञासा और स्पन्दन है।

नये मेहमान

लेखक ने इसमें मध्यवर्गीय परिवार का यथार्थ चित्र अंकित किया है। इसमें रेवती का स्वार्थ वास्तविकता को लिये हुए है। रेवती बीकानेर से भूल में आये दो मेहमानों को देखकर मुँह चढ़ा लेती है पर अपने भाई के आ जाने पर पति से कहती है—"तुम मिठाई मँगवाओ, मैं पूरियाँ तले देती हूँ। सन्तोष! सन्तोष! उठ तो सही। देख मामा जी आए हैं। जल्दी आ! आज मेरे घर आये भय्या।"[२५०]

रेवती का पति विश्वनाथ भूल में बीकानेर से आये दो मेहमानों को वैद्य जी के यहाँ भेज देता है।

अन्धकार और......?

प्रस्तुत एकांकी में भट्ट जी ने मानव की संशयात्मक प्रवृत्ति के साथ-साथ हृदय की उदात्तता को भी अभिव्यक्त किया है। हरीन्द्र की स्वार्थ-प्रवृत्ति का निरूपण भी बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। आज पापी और दुष्ट लोग कैसे समाज में अपना उल्लू सीधा कर रहे है? इन सभी बातों की किरणें इस एकांकी में फूट रही हैं। कैप्टेन महेन्द्र को प्रोफेसर गोविन्द पर अपनी बहन रमा से प्रेम करने का सन्देह हो जाता है। एक दिन रमा को गोविन्द के साथ हँसता हुआ देखकर महेन्द्र का सन्देह विश्वास में बदल जाता है। इसके अतिरिक्त महेन्द्र का मित्र हरीन्द्र भी उसे खूब भड़काता है क्योंकि वह स्वयं रमा से प्यार और

२४६ 'धूमशिखा'—विस्फोट, पृ० ३६।

२५० वही—नये मेहमान, पृ० ८६।

विवाह करना चाहता था। ये दोनों मिलकर गोविन्द को वन में शिकार खेलने ले जाते हैं। जब शेर माँद से बाहर निकलता है तो वे गोविन्द को मचान से धक्का दे देते हैं। फलत: शेर गोविन्द को खा जाता है। पर सचाई की एक चिंगारी असत्य के पहाड को जला देती है। महेन्द्र को रमा से वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है। अत: महेन्द्र पश्चात्ताप हेतु गोविन्द के घर जाता है। वहाँ पर अपने पाप को स्पष्ट कह देता है।

"बाबू जी, मैंने भ्रम से निरपराध गोविन्द की हत्या कर दी। मुझे दण्ड दीजिए। मैं सहने को तैयार हूँ। मैं पापी हूँ, हत्यारा हूँ। मैं सबेरे से यही कहना चाहता था। मैं तिल-तिल करके पश्चात्ताप की अग्नि मैं जल रहा हूँ। आप मुझे दण्ड दीजिए। मैं आपके पैरों पर गिरकर वज्रदण्ड की भिक्षा माँगता हूँ।

उमापति—दण्ड दूँ! दण्ड, क्या दण्ड हो सकता है? तुम मेरे दूसरे गोविन्द हो, नटखट लड़के, तुम मेरे दूसरे गोविन्द हो, उठो।[२५१]

गोविन्द के पिता उमापति इस प्रकार महेन्द्र को सदैव के लिए क्षमा कर देते हैं और पुत्रवत् स्नेह करने लगते हैं। पर गोविन्द की माँ और पत्नी इस दु:खद समाचार को सुनकर मूर्छित हो जाती हैं।

अघटित

एक एकांकी में स्वतन्त्रता के पश्चात् रियासतों के विलीनीकरण के साथ-साथ सामंतीय युग के राजा और दीवान के चरित्र का पर्दाफाश किया गया है। जब योगेन्द्रसिंह पचास लाख रुपये दीवान ललितमोहन को निकलवाने का आदेश देते हैं तो वह आनाकानी कर देता है। और चाबियों के विषय में केन्द्रीय सचिवालय में जमा करा देने की बात कह देता है। सच तो यह था कि दीवान ने राजा की पुत्री का शील भंग करने की प्रतिज्ञा करके चतुराई से चाबियाँ कोषाध्यक्ष से ले ली थीं और सारा धन अपनी पत्नी से नाम करवा दिया था। जब रहस्य का पता राज-कुमारी को चलता है तो दीवान के पास आकर कहती है—"मैं तुम्हें जान से मार दूँगी, नालायक, पाजी! तुममें इतनी भी मनुष्यता नहीं है। दुर्दिन देखकर एक अबला पर अत्याचार करना चाहते हो।"[२५२]

उसी समय दौड़ते हुए योगेन्द्रसिंह आकर कहते हैं—"सुनो! दीवान, सुनो! तुम, माधवी, तुम यहाँ कैसे? इस धूर्त नर-पिशाच के पास तुम क्यों आई?"

राजकुमारी—मैं दीवान से प्रार्थना करने आयी थी कि…!

योगेन्द्र—वह प्रार्थना मैं नहीं चाहता। मैंने निश्चय कर लिया है कि कोष का सब रुपया, गहने, जवाहरात आदि भारत सरकार को दूँगा? मुझे कुछ नहीं चाहिए?

२५१ वही—अन्धकार और…? पृ० ११५।
२५२ वही—अघटित, पृ० १३४।

राजकुमारी—कुछ नही चाहिए ?

पत्नी—हाँ कुछ नहीं चाहिए। यह लो अपना कागज। मैं भूखे रहना पसन्द करती हूँ। मैं मजदूरी करके खा लूँगी, पर यह न लूँगी।[२५३] यह सब सुन लेने के पश्चात् अन्त में...!

राजकुमारी—किन्तु महाराज—!

योगेन्द्रसिह—चलो, बेटी ! अब पैतृक अधिकार से जनता को लूट कर नहीं, पसीने की कमाई खाने के दिन आ गए हैं। ललित, आज से हम और तुम एक है। आओ, मिलकर इस देश को सभ्य, समुन्नत और सुसंस्कृत बनायें।

ललित—अब यह देश कभी पराधीन नहीं हो सकता। शोषण और पराधीनता सचमुच अब मर चुके हैं। मर चुके।[२५४]

पर्दे के पीछे (सन् १९५४ ई०)

'पर्दे के पीछे' नामक संग्रह में आठ एकांकी संगृहीत हैं। इन एकांकियों में आधुनिक समस्याओं का व्यंग्यात्मक विश्लेषण है—"प्रस्तुत संग्रह मे वर्तमान समाज की सच्ची और क्रूर वास्तविकता को उखाड़कर रखा गया है। इसीलिए उनकी कला का अन्तःस्वर और उनमें व्यक्त क्षोभ और वेदना नैतिक है।"[२५५]

वास्तव में इन एकांकियों में मानवीय समस्याओं, विकृत अहं, नारी-पुरुष का वैषम्य, भौतिकता की चाह और मानसिक रोगों का यथार्थ चित्रण है।

नई बात

इसमें कवि विश्वभूषण के निर्लोभी स्वरूप और उदात्त भावों-का वर्णन है। स्वतन्त्रता-प्रिय रमणी चोपड़ा को छोड़कर कवि के विचारों और जीवन की दार्शनिक आस्था से सभी लोग प्रभावित हो जाते हैं। किशोरीलाल की पत्नी सुनन्दा तो उनकी शिष्या तक होना चाहती है और जीवन-निर्वाह हेतु आर्थिक सहायता के रूप में रुपये भी देती है पर कवि उन नोटों की विपुल धनराशि को भिखारियों में बाँट देता है। अन्त में किशोरी, सुनन्दा, रघुवंश, कुन्तल आदि रुपयों के सदुपयोग की कल्पना करके गद्-गद् और आत्मविभोर हो जाते है—"आओ चलो ! यह तो नई बात है। ऐसा तो कभी नही देखा।"[२५६]

अन्त में सब लोग कवि की जय के नारे लगाने लगते हैं।

बाबू जी

'बाबू जी' सामाजिक व्यंग्य है। सन्तान अपने बूढ़े बाप पर भी दया नहीं

२५३ वही, पृ० १३५।
२५४ वही, पृ० १३६।
२५५ श्री शिवदानसिंह चौहान : 'साहित्यानुशीलन', पृ० २७०।
२५६ 'पर्दे के पीछे'—नई बात, पृ० २८।

करती और अन्त में बाबू जी की चारपाई नीम के नीचे पहुँचा दी जाती है। उनका ज्येष्ठ पुत्र भोलानाथ कहता है—"नीम के पेड के नीचे रहना स्वास्थ्य के लिए बड़ा अच्छा है। कहते है नीम के नीचे रहने वालों की उम्र बढ़ जाती है, बीमारी पास नही फटकती।

केदार—मुझे कोई एतराज नहीं है। सबसे बड़ा फायदा तो यह है कि उन्हें आगे ले जाने में अब ज्यादा सहूलियत होगी।[२५७]

सबसे पहले भोलानाथ अपने कमरे से निकाल देता है जिसमे वे अपने जीवन के अन्तिम दिन काटना चाहते थे। दूसरा पुत्र अपनी गृहस्थी जमाने के स्वार्थ में बाबूजी की चारपाई एक कमरे से दूसरे कमरे मे, ऊपर से नीचे की मन्जिल में और अन्त में नीम के नीचे पहुँचा देता है।

"भारतीय समाज में माता-पिता के प्रति सन्तान का आदर-सम्मान, कर्त्तव्य-निष्ठा और श्रद्धा-भक्ति का भाव केवल सांसारिक लाभ-हानि के हिसाब-किताब के आश्रित नहीं है। इसकी पुनीतता मनुष्य-मनुष्य के बीच के सबसे निकटतम सम्बन्ध के कारण है। परिवार के जीवन में अधिकारों और दायित्वों की शृंखला इस मार्ग पर पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे चलती जाती है। लेकिन बूर्जुआ समाज की व्यक्तिवादिता अधिकारों का उपभोग तो करना चाहती है, पर दायित्वों को स्वीकार नहीं करना चाहती है। भट्ट जी ने इस मनोवृत्ति का नाटकीय चित्र खींचा हैं 'बाबूजी' में।"[२५८]

यह स्वतन्त्रता का युग

इस एकांकी में आज की नारी के तितली रूप का विशद वर्णन है। भोग और अर्थ की लालसा इसकी मूल-भूमि है। इसीलिए मीना उच्छृंखलता को स्वतन्त्रता मानकर उन्मुक्त प्रेम और अनैतिकता का समर्थन करती है:

मीना—जीवन किसे कहते हैं? क्या घर में पिसते रहना जिन्दगी है? सुनो जयन्त, आज नारी का दृष्टिकोण बदल गया। वह शादी को कण्ट्रेक्ट मानती हैं, जब तक भी निभे।

जयन्त—कण्ट्रेण्ट में व्यावहारिकता है, हार्दिकता नहीं, शरीर है, प्राण नहीं। व्यावसायिकता, बिजनेस है।

मीना—जो भी है, वह साफ है। वह तुम्हारे दर्शन, फिलासफी से बँधा हुआ नहीं। यदि तुम मेरे पति हो, तो मैं तुम्हें अपना सब कुछ नहीं दे सकती। मेरी इच्छाएँ हैं, मेरा शौक है। मैं मजबूर नही हूँ कि एक ही दुकान से हमेशा सौदा खरीदती रहूँ—

जयन्त—तो क्या तुम इसमें सुखी हो?

२५७ वही—बाबू जी, पृ० ५०।
२५८ शिवदान सिंह चौहान : 'साहित्यानुशीलन', पृ० २७४।

मीना—तुम सुखी न होगे, मै तो हूँ।

जयन्त—जिसको तुम सुख मानती हो, वह छलना है, भ्रम है।

मीना—यह स्वतन्त्रता का युग है—नारी की स्वतन्त्रता का।[२५६]

यह है आज की नारी का रूप जो विवाह को सामाजिक बन्धन न मानकर केवल कण्ट्रैक्ट मानती है।

अपनी-अपनी खाट पर

इस एकाकी मे भट्ट जी ने नशे की मानसिक स्थिति का हास्यात्मक चित्र खीचा है।

"यह व्यंग्य न होकर निर्मल हास्य का उदाहरण है, साथ ही उसमे नशे की मानसिक स्थिति का भी बडा मनोरंजक चित्रण हुआ है।"[२६०]

इस एकांकी में मुख्यत: रमाकान्त और उमाकान्त दो पात्र हैं। उमाकान्त की पत्नी की बातें भी दोनों भग पिये दोस्तो की वार्ता में और अधिक सहयोग प्रदान करती हैं।

इसमें कही पूर्व-विरचित हास-परिहास का व्यग्य-विनोद नहीं है, लेकिन चेतना के बन्धन ढीले होने पर विचार-पट पर आई हुई हर वस्तु के विकृत चित्रों के टुकड़ों को जोड़ संजोकर सहज हास का उद्रेक करने वाला एक सम्पूर्ण चित्र बनाया जा सकता है। एक ओर तो ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों मित्र भाग की झोंक में अनर्गल बक रहे है, लेकिन उनकी बातें बेसिर-पैर की नही है, उनके भीतर आजकल के अनेक साहित्यिक अपवादों और फैशनों की व्यग्यपूर्ण आलोचना है।"[२६१]

मायोपिया

"यह एकांकी आज की नारी के विकृत अहं, मिथ्या धारणाओं और कुंठाओं की अभिव्यक्ति मात्र है। आधुनिक युवती की आत्म-निर्भरता की भावना और उससे उत्पन्न युवक के प्रति उदासीन भाव या क्षोभ अपने आप मे एक बड़ी प्रवंचना है। यह नारी का सहज स्वभाव नही है, उसकी विकृति है जो अनेक प्रकार की मिथ्या धारणाओं और कुण्ठाओं की ग्रन्थि-मात्र है। पुरुष के प्रति यह अस्वाभाविक आत्म-प्रवंचनमय द्वेष-भाव इस युग की शिक्षिता नारी का बढ़ता हुआ मानसिक रोग है। जिसका उपचार समाज के लिए आवश्यक है।"[२६२]

२५६ 'पर्दे के पीछे'—यह स्वतन्त्रता का युग, पृ० ७०–७१।
२६० वही—भूमिका (डा० नगेन्द्र) पृ० ३।
२६१ शिवदान सिंह चौहान : 'साहित्यानुशीलन', पृ० २७७।
२६२ 'पर्दे के पीछे'—भूमिका (डा० नगेन्द्र), पृ० २।

सुधी आज की नारी की प्रतीक है। जब सुधी केशव से विवाह का अनुरोध करती है :

केशव—विवाह विनिमय नहीं चाहता सुधी। वह हृदय देखता है। वह एक दूसरे की सहानुभूति चाहता है। तुम्हारा अनुरोध, आत्म-समर्पण और स्वीकृति ईर्ष्या पर निर्भर है जबकि चन्द्रिका का समर्पण स्वभाविक सहज स्नेहपूर्ण है।

सुधी—केशव बाबू !

केशव—तुमने देखा, स्वाभाविक स्नेह के कारण उसने स्त्रियोचित लज्जा की अवहेलना करके मेरे घाव मे पट्टी बाँधी, और तुम देखती रही जबकि तुम्हारे मुँह से संवेदना का एक भी शब्द न निकला।

सुधी—वह मेरी भूल थी।

केशव—वही स्वाभाविक था सुधी। यही मायोपिया है, बुद्धि का मायोपिया। इसकी कोई औषधि नहीं है।[263]

सुधी के ठीक विपरीत है, अनामा, मधु और चन्द्रिका।

अनामा—यदि एक-दूसरे का हार्दिक सहयोग हो तो जीवन कभी विरस नहीं हो सकता, जीवन की यही सफलता है।

मधु—स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध निश्छल भाव से एक-दूसरे को देने के लिए है।

चन्द्रिका—मायोपिया न केवल आँखों में होता है बल्कि यह बुद्धि का मानसिक रोग भी है।[264]

सुधी इसी मायोपिया से ग्रसित थी और केशव सुधी की शिष्या चन्द्रिका से ही विवाह करता है।

बार्गेन

इस एकांकी में भट्ट जी ने प्रेम को बार्गेन के रूप में चित्रित किया है। आज के नवयुवक की कामवासना के रहस्य का उद्घाटन ही एकांकी का मूल प्रतिपाद्य है। कैलाश एक अंग्रेजी समाचारपत्र का सम्पादक है जो कुन्ती और सरोज से एक साथ प्रेम करने में कुशल है, पर विवाह का विरोधी है। कैलाश कुन्ती को अपनी यौन वासना का शिकार बनाकर गर्भवती बना देता है और जब कुन्ती को अपने गर्भ का पता चलता है तो उसे डाक्टर की सहायता से गर्भ गिराने की सलाह देता है, दूसरी ओर सरोज के सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखता है। पर इसी बीच में कुन्ती की बात सरोज पर और सरोज की बात कुन्ती पर पहुँच जाती है। दोनों ही कैलाश को अन्त:करण से धिक्कारती है।

“ ‘बार्गेन’ में दूसरे प्रकार की अस्वाभाविकता है जो स्वच्छन्दता पर आधृत है। नारी के लिए जितना अस्वाभाविक पुरुष-द्वेष, उतना ही अस्वाभाविक स्वच्छन्द

[263] वही, पृ० ९६।

विहार भी। दोनों ही अप्राकृतिक स्थितियाँ हैं जिनमे भटक कर आज की नारी जीवन का स्वास्थ्य खो बैठती है।'''[२६५]

'बार्गेन' में भट्ट जी ने बूर्जुआ प्रेम के अभिनय के पीछे छिपे यथार्थ को उद्घाटित किया है। उच्च वर्ग से एक स्तर नीचे, बुद्धिजीवियों में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की धर्म-ध्वजा फहराकर भारत की जनसंख्या की वृद्धि को रोकने के नाम पर अविवाहित होने के संकल्प बनते हैं, किन्तु साथ ही गर्भ-निरोध की विधियों का प्रयोग करते हुए, एक साथ ही अनेक स्त्रियों या पुरुषों से अनियन्त्रित प्रेम-अभिनय तथा यौन सम्बन्ध आदि भी चलते हैं। मूल भावना यह है कि उच्छृंखल प्रेम का आनन्द तो भरपूर मिले, किन्तु कोई दायित्व न उठाना पड़े ......।"[२६६]

ग्रह-दशा

इस एकांकी में मध्य वर्गीय परिवार के स्त्री-पुरुष के अशिक्षित होने का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। जब गिरधारी और उसकी पत्नी रमा अपनी लड़की का रिश्ता कृष्णमनोहर के लड़के से करने जाते है :

गिरधारी—मेरे बुजुर्ग आपके यहाँ नौकर रहते रहे हैं।

रमा—यह भी कोई बात है। सारा शहर उन्हे माने था।[२६७]

जब जमीन पर मतभेद हो जाता है :

गिरधारी—यह जमीन मेरी है। इसका मतलब यह नहीं है कोई भी एरा-नत्थू-गैरा उस पर कब्जा कर ले। खून न पी जाऊँगा।

कृष्णमनोहर—मेरे पास और जमीन होती तो मैं छोड़ देता, पर मजबूर हूँ।[२६८]

जब यह पता चलता है कि जमीन गंज वाली है तो :

रमा—नहीं, गंज की घेर वाली जमीन हमारी नहीं है।

गिरधारी—गंज की कैसी ?[२६९]

अन्त में दुःखी होकर रमा कहती है—यह भी कोई ग्रहदसाई होगी।[२७०]

यह इनके कुपढ़ होने का ही दण्ड था कि बिना बात ही लड़की के रिश्ते की बात टल जाती है।

पर्दे के पीछे

यह एकांकी एक सामाजिक व्यंग्य है। इसमें नाटककार ने दिखाया है कि

२६५ वही—भूमिका (डा० नगेन्द्र), पृ० २।
२६६ शिवदानसिंह, चौहान : साहित्यानुशीलन', पृ० २७६।
२६७ ग्रह-दशा, पृ० १५४।
२६८ वही, पृ० १६२।
२६९ वही, पृ० १६३।
२७० वही, पृ० १६४।

समाज में आज पर्दे के पीछे क्या हो रहा है ? हमारे थोथे आदर्शवाद एवं त्याग-तपस्या के पीछे कितना बड़ा धोखा और समाज में प्रतिष्ठा की चाह कितनी भयावनी है, भौतिकता के मद में आदमी कितना अन्धा है और सांस्कृतिक मूल्यों का दावा कोरी आत्म-प्रवंचना है । आज का आदमी अपने स्वार्थ में मस्त है और इसलिए स्थूल ऐहिक समृद्धि ही आज के मानव की चिर आकांक्षा है । पैसे के बल पर समाज में आज कितना अनाचार और शोषण की नींव गहरी जमती जा रही है । इसके अतिरिक्त सेठ छीतरमल को पूँजीपतियों का प्रतिनिधि बनाकर और समस्त पूँजीवाद की मूल भूमि का यथार्थ चित्र अंकित करके उसमें इन्कमटैक्स से बचने के लिए नई बहियों का निर्माण, लोकेषणा हेतु परिन्दों के अस्पताल का बनवाना, कानून की आँख में धूल झोंकने के लिए कांग्रेसी नेताओं को चन्दे की भरमार, दरिद्रों के शोषण और चोरबाजारी आदि के रंग भरकर एकांकी को प्राणवान् बना दिया है :

"यही युग का, समय का तकाजा है—जैसी बहे बयार पीठ पर तब तैसी दीजे ! दीन् ! दीन् !"[२७१]

"इतना त्याग किया, जेल गये, मार खाई, दुख सहे, जब कुछ बनने का अवसर आया तो और लोग आगे आ गए । वे मैम्बर बने । जिनके घर में भूँजी भांग नहीं थी आज वे मोटरों में दौड़ते हैं, जिनके झोंपड़े नहीं थे आज वे कोठियों में रहते हैं ।"[२७२]

वस्तुतः यह युग का यथार्थवादी एकांकी है ।

आज का आदमी (सन् १९५९ ई०)

इस एकांकी संग्रह में भट्ट जी के व्यंग्यप्रधान मर्मस्पर्शी नाटक संगृहीत हैं । ये सभी एकांकी युग के वर्तमान को प्रतिबिम्बित करते हैं । इनमें आज के मनुष्य-समाज की विकृतियों पर कठोर प्रहार है, लगता है जैसे मनुष्य अपनी परिस्थितियों एवं विवशताओं का ग्रास हो गया है, उसकी मान्यताओं एवं विवेक के ऊपर उसके संशयी मन का चिरन्तन पीड़क अंकुश उसकी दुर्भावनाओं, कुण्ठाओं को उर्वर कर रहा है । इन नाटकों की मूल परिणति व्यंग्य द्वारा दर्शक और पाठक को झकझोर देना है । इसीलिए इन नाटकों में आज के मनुष्य के मानसिक असन्तुलन के चित्र व्याप्त हैं ।

आज का आदमी

इस एकांकी में आज के पूँजीपति सेठ धनपतराय का चित्र अंकित किया गया है, जिसमें उसके स्वार्थ, लोकेषणा, वासना तक की रेखायें बोल उठी हैं । सेठ काम करने वाले मुंशियों को रुपया देने में संकोच करता है पर इन्कम टैक्स से बचने के लिए अफसरों को रिश्वत देने में उदारता का परिचय देता है । साधु-सन्त

[२७१] वही, पृ० १८८ ।

का सत्कार और धार्मिक कार्य भी स्वार्थ की ही भावना से करता है। इन सब फरेबों को देखकर घर में आए स्वामी जी सेठ से कहते हैं :

"अच्छा हम चले।"

धनपत—अभी यहाँ बहुत-से बड़े-बड़े आदमी आपका प्रवचन सुनने आ रहे है। वे जब देखेगे कि आप—

स्वामी—उनको सिनेमा दिखाओ। नृत्य दिखाओ और कोई उनके आमोद-प्रमोद का प्रबन्ध करो। प्रवचन प्रदर्शनी नही है, सेठ। वह आत्मा की पुकार पर निर्भर करता है।

धनपत—तनिक तो ठहरो महाराज।

स्वामी—तुम अपने को पहचानो। जवानी के पाप का कोई प्रायश्चित्त नहीं है, वत्स।[२७३]

बस यह है आज के सेठ का रूप।

सत्य का मन्दिर

इस एकांकी में मानव जीवन की कमजोरियों पर मर्मान्तक व्यंग्य है। लोग धर्म के नाम पर कितनी लूट करते हैं और कैसे जनता से चन्दा एकत्रित करके बीच में स्वयं खा जाते है ? किसी नगर मे कोई सिद्ध स्वामी आकर रहने लगता है तो लोग उससे उपेक्षा भरा व्यवहार करते हैं। पर उसके अन्यत्र चले जाने पर उसकी स्मृति में 'सत्य का मन्दिर' बनाने की योजनाएँ प्रारम्भ हो जाती हैं।

जिस दिन 'सत्य का मन्दिर' की स्थापना होती है तो वही वीतराग स्वामी उपस्थित होकर कहता है—"इतना वैभव मेरे नाम पर, इतना विशाल मन्दिर सत्य के प्रचार के लिए ! सत्य का प्रचार क्या मन्दिरों से होता है ! सत्य का सम्बन्ध आत्मा से है। नेक कामों से है। जीवों पर दया करने से है। मन, वाणी, कर्म के एकत्व से है। अपनी आत्मा को, अपने मन को पवित्र करो। सत्य बोलो, सत्य का आचरण करो। सत्य ही परमात्मा है। सत्य ही आनन्द है।"[२७४]

इस एकांकी में आज के युग की झाँकी यथार्थ के रंग से बड़ी ही वास्तविक और आकर्षक हो गई है।

तीमारदारी

इस एकांकी में भट्ट जी ने मध्यवर्गीय परिवार को कटु व्यंग्य का निशाना बनाया है। लोगों की स्वार्थमयी मनोवृत्ति का उद्घाटन बड़े कौशल के साथ किया है। बाबू जी का जो घर के स्वामी थे अस्वस्थ होने के कारण हास्पिटल में आपरेशन होता है। कुछ दिन बाद डाक्टर के परामर्श अनुसार पूर्ण आराम हेतु रोगी घर पर

२७३ 'आज का आदमी', पृ० ३८–३९।

आ जाता है। यह सूचना पाकर उनके सम्बन्धी मिलने और तीमारदारी करने आते है पर वे आपस मे अत्यधिक बोलते हैं और बच्चों के छुटपुट झगड़ों का आश्रय लेकर लड़ भी पड़ते है। रोगी के पास का वातावरण पूर्णतया अशान्त हो जाता है। इसीलिए अन्त में बाबू जी (रोगी) दु:खी मन से कहते हैं :—

"बहुत हो चुका। मुझे हस्पताल भिजवा दो।

राजो—पर ये लोग तो इतनी दूर से आपकी तीमारदारी के लिए ही—।

बाबू—नहीं, नहीं···नही चाहिए ऐसी तीमारदारी। (क्रोध से चिल्लाता है)

राजो—बहुत बोलो मत, टाँके······।

बाबू—हस्पताल, हस्पताल, हस्पताल।

राजो—क्या फिर······।

बाबू—ह···स्···प···ता·· ल।"[२७५]

बस यह अन्तिम शब्द कहकर बाबू जी सदैव के लिए इन लोगों से विदा हो जाते हैं। अत: इस एकांकी में आधुनिक युग के मध्यवर्गीय परिवार की विषम समस्याओं का निरूपण और जीवन की अज्ञानता एवं अन्धकार का वास्तविक चित्र खींचा गया है।

कुन्दन और तुलसी

इस एकांकी में सुन्दर की धूर्तता युग के चालबाज लोगों का प्रतिनिधित्व कर रही है। आज का मानव भीतर से कुछ और है, बाहर से कुछ और है, यही इस एकांकी का मूल आख्यान है।

तुलसी कुन्दन की पत्नी है जो स्वभाव से तेज और सत्य को ठोक-बजाकर कहने वाली है। इनकी रामी नाम की एक लड़की है जिसके लिए कुन्दन एक लड़का देख आता है। तुलसी पहले तो इस लड़के का विरोध करती है पर बाद में सहमत हो जाती है।

सुन्दर में सभी दोष विद्यमान थे। विवाह के उपरान्त वह अपनी पहली स्त्री से प्रेम करने लगता है और तुलसी को चकमा देकर तीन सौ पचास रुपये लेकर चम्पत हो जाता है। तभी एक आगन्तुक आकर कहता है—"रामी को कोठरी में बन्द करके सुन्दर पहली औरत के साथ भाग गया। ताला तोड़ कर निकाला है, बेहोश पड़ी है। चल तो सही जल्दी।"[२७६]

फिर आगन्तुक कुछ समय बाद तुलसी और कुन्दन की वार्ता में हस्तक्षेप करता हुआ बोला—"तुम लड़ रहे हो। उधर लड़की मर रही है। पुलिस को बुलाओ। वे दोनों दूर नहीं गये है।"[२७७]

२७५ वही—तीमारदारी, पृ० १२६।
२७६ वही—कुन्दन और तुलसी, पृ० १४४।
२७७ वही, पृ० १४४।

अन्त मे दोनों पश्चात्ताप करके रह जाते है ।

जवानी और छः एकांकी

इस एकांकी संग्रह के सभी एकांकी जीवन की गहरी अनुभूतियों से सम्बन्धित हैं। मानवीय दुर्बलता और सांस्कृतिक चित्रों के साथ-साथ सामन्तीय युग और मध्यवर्गीय जीवन की झाँकियाँ भी उपलब्ध होती है।

जवानी

यह सफल प्रतीत रूपक है। इसमें विविध पात्र जगत् के विभिन्न रूपों के प्रतीक हैं। आगन्तुक विचारक का प्रतीक है तो स्त्री स्मृति की और युवती जवानी की प्रतीक है। नाटककार ने कैदी के माध्यम से विचारक, स्मृति और जवानी मे जीवन के महत्त्व को निरूपित किया है। अन्त मे आगन्तुक जो विचारक का प्रतीक है स्वयं कहता है—

"खैर, अब घबराओ मत। यह स्वाभाविक है। मैं तुम्हें निश्चय रूप से शान्ति दूंगा। अब मैं तुम्हारा साथ दूंगा और जब तक तुम शरीर को छोड़ नही देते तब तक मैं तुम्हारा साथी हूँ।

कैदी—हाँ, उस समय तो नही, अब समझ में आया कि वह मेरी 'जवानी' थी।

आगन्तुक—और दूसरी ?

कैदी—स्मृति।

आगन्तुक—और मैं ?

कैदी—तुम मेरे विचारक हो। अब मुझे तुम्हारा ही सहारा है। भाई मुझे नींद आ रही है।"[२७८]

जवानी के चले जाने के पश्चात् मानव वैचारिक शक्ति के आश्रय पर ही अपना जीवन यापन करता है। इस रूपक का मूल भाव यह है—"जो जाके न आये वो जवानी देखी, जो आके न जाए वो बुढ़ापा देखा।"[२७९]

धूमशिखा

यह एकांकी पुरुष की वासनामयी वृत्ति का चित्र है और विपिन जिसकी साक्षात् प्रतिमा है। विपिन पहले मन्दाकिनी से प्रेम करता है, पर विवाह उसकी अनुजा कमला से कर लेता है। कमला की मृत्यु के पश्चात् फिर मन्दाकिनी के सम्मुख अपने को निर्दोषी सिद्ध करके उसे अपनाना चाहता है पर इस रहस्य का ज्ञान पहले ही मन्दाकिनी को अपनी सखी द्वारा हो जाता है। अतः मन्दाकिनी अपने को क्षय

२७८ 'जवानी और छः एकांकी'—जवानी, पृ० २१।
२७९ किम्वदन्ती।

रोगी कहकर आग्रह तिरस्कृत कर देती है और मसूरी ले जाने एवं सेवा करने की बात को भी कुछ नहीं सुनती।

"तुम जाओ विपिन बाबू, अब यहाँ मत आना। जाओ। मुझ में दिन, रात, पक्ष, मास, वर्ष की तहों पर उठी हुई जीवन की नीवों पर अब प्रासाद खड़े करने का साहस नहीं है। कुहेलिका में सोते हुए धूमिल स्वप्नों से उत्तरंग होकर तुम्हारे प्रकाश से छिन्न-भिन्न करने की अभिलाषा नहीं है। मैं जी-जान से प्राणों की धड़कन को घुटने का तिक्त आह्वान दे चुकी हूँ। मुझे जाने दो, मुझे सहने दो यह व्यथा। बहन कमला के लिए, मेरे लिए, अपने लिए मुझे मेरी दशा पर छोड दो। जाओ... जाओ...।"[२८०]

यह कहकर खाट पर गिर पड़ती है। साधना जड मूक की तरह देखती रह जाती है।

मन का रहस्य

भट्ट जी ने प्रस्तुत एकांकी में दामोदर को मानवता का पोषक सिद्ध करते हुए लछमनदास के पुत्रों की स्वार्थ, भौतिक सुखों की चाह मे निमग्न, छल-छद्म से पैसा कमाने की प्रवृत्ति का भंडाफोड़ किया है। दामोदर सम्पन्न परिवार का व्यक्ति है, गरीबों की सहायता करना उसका स्वभाव है। अपने निर्धन पंडित की कन्या के विवाह में सहायता करता है और इसी प्रकार अन्य अनेक स्थलों पर सहायता करता है। लछमनदास के लड़के उस पर मुकदमा दायर करके मकान कुर्क कराने की डिग्री करा देते हैं। लछमनदास आकर कहता है—"बड़ा लज्जित हूँ, दामोदर। ये नालायक लड़के जो न करें सो थोड़ा। मुझे क्या मालूम कि इन छोकरों ने यह किया है। भैया माफ करना, मैं तुमसे माफी माँगने आया हूँ। माफ कर दो। बोलो, माफ कर दिया।"

दामोदर—कुछ समझा नहीं। कैसी माफी ? उसमें आपका क्या दोष है ? मैंने रुपया लिया, नहीं दिया, कुर्की हो गई।

लछमन—एक-एक पैसा लौटा दिया। पुरानी बहियों में जमा है। बस, जो तकलीफ हुई उसकी माफी चाहता हूँ, दामोदर। तुम धन्य हो, बेटा।"[२८१]

इस प्रकार मानवीय गुणों का आलोक ही इस एकांकी का मूल है। इसीलिए अन्त में सचाई और ईमानदारी की जीत स्थापित की गई है।

[इस संग्रह के अन्य नाटकों दुर्गा तथा वर-निर्वाचन का वर्णन 'अभिनव एकांकी' में एवं प्रथम विवाह तथा कुमार सम्भव का निरूपण 'आदिम युग और अन्य नाटक' में किया जा चुका है।]

२८० 'जवानी और छः एकांकी'—धूमशिखा, पृ० ४०।
२८१ वही—मन का रहस्य, पृ० ६३।

सात प्रहसन

'सात प्रहसन' भट्ट जी के लोकप्रिय हास्य-व्यंग्यपूर्ण शिष्ट सामाजिक प्रहसनों का संग्रह है। इनमे दर्शकों को घटनाओं की योजना एवं वस्तु के चमत्कार-पूर्ण निर्देशन द्वारा विस्मय-विमुग्ध करने की भट्ट जी की अपनी शैली है। पाठक इनके व्यंग्य और आघातो से अपने भीतर सँजोई हुई विकृत मानसिक ग्रन्थियों को भी देख सकते है।

बड़े आदमी की मृत्यु

इस प्रहसन में बड़े आदमी की मृत्यु पर व्यंग्य कसा गया है। समाज में कितने ही निर्धन लोग प्रतिदिन मृत्यु की गोद में गहरी नींद सो जाते हैं पर उनकी मौत की किसी को सूचना तक नही होती। वे आते हैं, जीवन भर कठोर परिश्रम करते हैं और अन्त में निराशा और थकावट की मौत मर जाते है। पर राय बहादुर सेठ मधुसूदन की मृत्यु के ठाठ निराले है। कोई उनका चित्र और नोट समाचार-पत्र में प्रकाशित करने के लिए कह रहा है तो कोई लोगों को सूचना देने में व्यस्त है। मृत्यु का समाचार पत्र में पढ़कर प्रोफेसर, प्रिंसिपल, ओहदेदार और सम्पादक अपनी-अपनी भाव-भीनी श्रद्धांजलि देने के लिए एकत्रित हो जाते हैं।

"उन्होंने एक गौशाला खुलवाई, धर्मशाला बनवाई, मंदिर बनवाए। बड़े धर्मात्मा थे। बहुत समय हो चला अब अर्थी कब उठेगी ?"[२८२]

अन्त में सब अर्थी के साथ चलने के लिए खड़े हो जाते हैं। इस प्रहसन का कथानक यथार्थ से पुष्ट है और परोक्षतः गरीबों के साथ हमदर्दी का भाव लिये हुए है। इसके अतिरिक्त पूंजीवादी वर्ग के प्रति अनास्था और मौत सबके लिए समान होते हुए भी विभेद की दीवार पर खड़ी होने की सूचना है।

मुंशी अनोखे लाल

इस प्रहसन में अनोखे लाल का अच्छा खाका खींचा गया है। जैसा उसका नाम है वैसे ही उसके अनोखे काम है। मुखत्यार से मुंशी हो गया है और डकैती के मुकदमे में अभियुक्तों का पैरोकार होते हुए भी जज महोदय को सच-सच बात बताकर उन्हें सजा कराकर गर्व का अनुभव करता है। बिना तमाखू के हुक्का गुड़-गुड़ाता है। जानकी और हरिहर के कहने पर अपनी पत्नी के पति को मृतक मान-कर रोने लगता है। तब एक वृद्ध अनोखे लाल से कहता है—

"बोलता क्यों नहीं ? क्या हुआ ?"

अनोखेलाल—(रोकर) तुम्हारी···तुम्हारी बहू।

वृद्ध—बहू, क्या हुआ बहू को ?

२८२ 'सात प्रहसन', पृ० ७३।

अनोखेलाल—विधवा हो गई है।

वृद्ध—कौन बहू, ला देखूँ पत्र, यह किस मूर्ख ने लिखा है…। सब झूठ है।

अनोखेलाल—झूठ कैसे है ? पत्र झूठा कैसे हो सकता है ?

वृद्ध—मूर्ख तेरे रहते बहू विधवा कैसे हो सकती है ?"[२८३]

अन्त मे कुछ सोचकर अनोखेलाल कहता है—"जब मैं नहीं मरा तो वह विधवा कैसे हो सकती है ? ससुरे बदमाश हैं जानकी, हरिहर।"[२८४]

दस हजार

इस प्रहसन में नाटककार ने सेठ विसाखा की लोभ वृत्ति, माँ का वात्सल्य और बहन का स्नेह एवं मुनीम का आज्ञाकारी रूप चित्रित किया है। सेठ विसाखा के लड़के सुन्दरलाल को खाँ लोग पकड़ कर ले जाते है। सुन्दर दु:खी होकर अपने पिता को पत्र लिखता है—"पिताजी, अगर मेरी जिन्दगी चाहते हो तो किसी आदमी के हाथ खैबर फाटक के बाहर आज ठीक शाम को आठ बजे दस हजार रुपया पहुँचा दो।"[२८५]

पत्र के नीचे खाँ ने भी पश्तो में लिखा था :

"अम तुमको इत्तला देता है, तुम आज बुधवार को शाम के आठ बजे दस हजार रुपया खैबर फाटक के बाहर पहुँचा दे, नई तो तुम्हारा लड़का को मार डालेगा।"[२८६]

पत्र पढ़कर सेठ विसाखा का मन लोभ से अभिभूत हो जाता है पर राजो की माँ दु:खी होकर मुनीम जी से कहती है—"इन्हें तो न जाने क्या हो गया है। खांड और सूद से इनका विचार छूटे न। मुनीम जी, मैं तुम्हारे पैर पड़ूँ, मेरा सुन्दर ला दो।"[२८७]

इसी प्रकार सुन्दर की बहन राजो कहती है—"मुनीम जी, मेरे भाई को जल्दी बुला दो। देखो, कई रातों से माँ सोई नहीं हैं। सारी-सारी रात रोती रहती हैं। आँखें सूज गई हैं।"[२८८]

इतने पर भी विसाखा का लोभी मन मुनीम को 'दस हजार' रुपये ले जाने की अनुमति देने में असमर्थ रहता है, पर मुनीम सुन्दर को जाकर ले ही आता है। सेठ विसाखा 'दस हजार' की बात सुनकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है।

२८३ वही, पृ० ८८।
२८४ वही, पृ० ८९।
२८५ वही, पृ० ९६।
२८६ वही, पृ० ९७।
२८७ वही, पृ० ९७।
२८८ वही, पृ० ९८।

[इस संग्रह के शेष प्रहसनों—दो अतिथि, बीमार का इलाज, समस्या का अन्त, नये मेहमान तथा नया नाटक का वर्णन 'धूमशिखा' में हो चुका है ।]

दृष्टिकोण

भट्ट जी हिन्दी के प्रतिष्ठित एकांकीकार है । वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे और अकेले एकांकी क्षेत्र में उन्होने विषय-वस्तु, उद्देश्य तथा शिल्प-विधान की दृष्टि से रूपक, ध्वनि-रूपक और प्रतीक रूपक बड़े कौशल के साथ लिखे है । आपने नवीन शैली को भारतीय आत्मा के साथ अपनाया है । आपके एकांकियों में वस्तु के प्रति निष्ठा, सामाजिक जीवन के प्रति संगति एवं अन्य आधुनिक समस्याएँ समाधान सहित कुछ न कुछ बोल रही हैं ।

इनके एकांकी नाटकों का क्षेत्र व्यापक है, मानव के सुख-दुःख की धारायें बड़े वेग से बह रही हैं, विस्तृत समाज का निरूपण है जो देश की सीमाओं को पार कर मनुष्य मात्र को अपने आँचल में ढक लेता है । इसीलिए आपके एकांकी समष्टिमूलक है । इनको पढ़ने से ऐसा लगता है मानो वैज्ञानिक प्रगति की वास्तविकता ने सारे संसार को, उसके सुख-दुःख को एक कर दिया है और हमारी साम्प्रदायिकता की सीमाएँ विलीन होकर जीवन की एकात्मकता में घुल-मिल कर एक साथ चलने के लिए कह रही है । बस यही जीवन की समग्रता और उदात्त भाव इन एकांकियों का आह्वान है ।

इसके साथ-साथ युग की बौद्धिकता और भोगवादी मनोवृत्ति से मानव जीवन में जो अभाव उत्पन्न हो रहे हैं, उनका यथार्थ रूप परिणाम सहित एकांकियों में मुखरित हो रहा है । इन्हें पढ़ने से ऐसा अनुभव होता है जैसे युग में दो मस्तक काम कर रहे है या दो हृदय या दुमुँही प्रवृत्ति—कहना कुछ और करना कुछ । सम्भवतः यह इन एकांकियों में आज की राजनीति का प्रभाव और बुद्धि का तर्क बोल रहा है । इसीलिए छल, छद्म और कपट पर सामान्य पात्रों का अधिक विश्वास है पर नाटककार पर्याप्त संघर्ष के पश्चात् अन्त में उदात्त पात्रों की, सात्विक दर्शन और आस्तिक भावों की ही विजय स्थापित करता है । ईमानदारी, सचाई के प्रति निष्ठा के भाव ही इन एकांकियों की सबसे बडी विशेषता है । इसके अतिरिक्त भट्ट जी ने मनोविश्लेषण की शैली का अपने एकांकियों में बड़े सुन्दर ढंग से प्रयोग किया है और पात्रों के मानसिक संघर्ष का चित्रण इनके नाटकों को बड़ा मनोरंजक तथा आकर्षक बना देता है ।

भट्ट जी के एकांकियों में आदिम युग से लेकर आज तक का युग स्पष्ट दीख पड़ता है और आदि पुरुष स्वायंभुव मनु और शतरूपा से लेकर आज के पुरुष और स्त्री के स्वर, कार्य-कलाप और जीवन की गतिविधियाँ अपना कौतुक दिखा रही है । इन सबका आधेय आज का विज्ञान है जो भौतिकता का राग अलाप रहा है और मनोविज्ञान है जो काम और यौन वासना के स्वर को स्वरित करने में लीन है । पर

भट्ट जी के लोक में ये सब समादृत न होकर अनादृत ही हैं। यही इन एकांकियों की सबसे बड़ी गरिमा है। वास्तव में लेखक ने अपने धर्म, मर्यादा, सांस्कृतिक आदर्शों को सर्वत्र अक्षुण्ण रखा है। भट्ट जी की यह निष्ठा ही उनके एकांकियों में स्फूर्ति, नवीन चेतना, अतीत के प्रति राग और सम्मोहन, आदर्शों हेतु सब कुछ निछावर करने की चाह और मानवीय गुणों के प्रति अनुराग की भावना स्फुरित कर रही है। सबसे बड़ी बात यह है कि उनके एकांकियों में गम्भीर और सरल से सरल एवं सरस से सरस भाव-भूमि उपलब्ध होती है।

इसके अतिरिक्त भट्ट जी के एकाकियों में अनुभूति के साथ-साथ यथार्थ का चित्रण और समस्या का विस्मयात्मक अन्त, मानव का विकृत अहं और कही-कहीं लेखक का विकृत अहं, संशयात्मक प्रवृत्ति का निरूपण अपने उन्मुक्त रूप में पाठकों को दीख पड़ता है।

निष्कर्ष

इस युग-द्रष्टा के एकांकी भाव, भाषा, शैली, रचना-कौशल, रस-संचार और वैविध्य की दृष्टि से अनुपम हैं। इनके एकांकियों में मजदूर से लेकर पूँजीपति तक, कुली से लेकर मजिस्ट्रेट तक, रंक से लेकर राजा तक, बच्चे से बूढ़े तक, कलिका से युवती और बुढ़िया तक, लोभी और दानदाता तक के स्वर सुनाई पड़ते हैं। युग की प्राय: सभी समस्याएँ अपना समाधान खोजती हुई एकांकियों में व्याकुल-सी हुई प्रत्येक पाठक से मिलती फिरती है। मनुष्यों की स्वार्थ भावना भी बड़े वेग से बोल रही है पर अन्त में जब उसे पराजय और मलिनता का मुँह देखना पड़ता है तो उद्बुद्ध पाठक को आनन्द-लाभ होता है और स्वार्थी मन सिहर कर रह जाता है। वर्तमान काल में मनोवैज्ञानिक तथ्यों का समीकरण इनमें बेजोड़ है। जन-साधारण में व्यवहृत भावुकता, व्यापार, परिणति की भूलें भी इन नाटकों की क्रियाशीलता और गति की सूचिका हैं। नाटककार ने किसी न किसी उद्देश्य को लेकर एकांकी लिखे हैं और वह उनमें पूर्ण रूपेण सफल भी रहा है। यह नाटकीय सोद्देश्यता की सफलता ही भट्ट जी के एकांकियों का सौन्दर्य है। अत: उनके एकांकियों का उद्देश्य मनोरंजन न होकर जीवन में शिव का स्थापन और मानव को उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचाना है।

उनकी नाट्य रचना के विकास में रूपक रचना का विशिष्ट महत्त्व है, जिनका नाट्यत्व के कारण ही, न कि काव्यत्व के कारण अपना निजी महत्त्व है।

पंचम अध्याय

भारतीय संस्कृति और भट्टजी

'संस्कृति' शब्द और उससे मिलने वाला विशेषण 'संस्कृत' अर्थात् संस्कार किया हुआ प्रशंसावाचक शब्द है। अतः संस्कृति मानव व्यक्तित्व की एक प्रतीक रूप विशेषता है। वस्तुतः संस्कृति उन गुणों का परिचय है जिनसे मनुष्य के उदात्त अथवा सुसंस्कृत होने का परिचय मिलता है। मैक्समूलर के विचारानुसार :

"A people of this peculiar stamp or mind was never destined to act a prominent part in what is called the history of the world. This exhausting atmosphere of transcendental ideas could not but exercise a detrimental influence on the active moral character of the Indians."[1]

संसार में सद्, असद् का आख्यान ही भारतीय संस्कृति की मूल भूमि और दर्शन है। निष्काम कर्म, स्वार्थ-परार्थ विवेचन, अहंकार का त्याग, आत्मा की शुद्धता, मानव मन की शुद्ध निर्मिति, भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का विवेचन इसकी कथा है। इस सम्बन्ध में मलाची ने लिखा है—"क्या हम सबका एक पिता नहीं है ? क्या हमे एक ही ईश्वर ने पैदा नही किया ? तो फिर हम क्यों एक दूसरे के प्रति सच्चे नहीं ?"[2]

मनुष्य की मूल स्थिति के विषय में "यत्रा मृतं च मृत्युश्च पुरुषो वधि समाहिते।"[3]

सत्य, दया, धर्म इस संस्कृति की व्यापक त्रयी है। सत्य की एक चिगारी असत्य के पहाड़ को जला देती है। दया के बल पर प्राणिमात्र को जीता जा सकता है। धर्म के माध्यम से मनुष्य देवता बन सकता है।

भट्ट जी भारतीय संस्कृति के उद्गाता एव उन्नायक थे। उनके समस्त साहित्य

[1] 'ए हिस्ट्री आफ एंश्येंट सस्कृत लिट्रेचर'—भूमिका, पृ० १५।

[2] डा० राधाकृष्णन् : 'आत्मिक साहचर्य' (अनुवादिका : डा० ज्ञानवती दरबार), पृ० १५।

[3] 'अथर्व वेद', १०।७।१५।

में सांस्कृतिक स्वरों की वीणा झनझना रही है। सर्वप्रथम भट्टजी के सांस्कृतिक अनुराग के स्वर 'तक्षशिला' में सुनाई पड़ते हैं जहाँ कवि की आत्मा तक्षशिला के एक-एक खण्डहर, एक-एक भग्न मूर्ति, एक-एक स्तूप में अटक कर रह गई है—"भारत की इस प्राचीन संस्कृति के केन्द्र तक्षशिला की इन मूर्तियों को देखकर मेरे हृदय में जो गुदगुदी हुई, जो तूफान उठा, जो हर्ष-विषाद का द्वन्द्व हुआ, वैसी उत्कटता का अनुभव मैंने बहुत कम किया है।"[४]

इस खण्डकाव्य में कवि ने भारतीय इतिहास को प्रकाश में लाने के साथ-साथ प्राचीन सस्कृति और मानवीय गुणों को भी नवीन आलोक दिखाने की चेष्टा की है। देश के इतिहास एवं संस्कृति के प्रति उनमें जो मोह था उसकी अभिव्यंजना सबसे अधिक ऐतिहासिक नाटकों में हुई है पर काव्य में भी उसकी झलक दिखाई देती है :

"शिव संस्कृति—वस्तुत: समय समानता, एकता, ऊँच-नीच के भाव से रहित एक विश्वास था जिसने सम्पूर्ण देश में शान्ति, मर्यादा की स्थापना की।"[५]

वास्तव में भट्टजी का साहित्य सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित है। वे युग, देश, समाज और मानव की जिन समस्याओं को उठाते हैं, उनका समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने विषय की विस्तृत विवेचना के लिए विशेष रूप से नाटकों की रचना की है पर काव्य में भी यह भाव पर्याप्त मात्रा में दीख पड़ते हैं। भट्टजी ने नाटकों द्वारा सांस्कृतिक पुनरुत्थान का प्रयत्न किया है। इतिहास से वे खोई हुई सांस्कृतिक चेतना को लौटा लाना चाहते थे। उनका विश्वास था कि सांस्कृतिक पुनर्जागरण राष्ट्रीय उत्थान के लिए परम आवश्यक है। इसके अतिरिक्त मानवीय गुण—प्रेम, करुणा, त्याग आदि भी भारी मात्रा में दीख पड़ते हैं। वास्तव में भट्टजी मानव को उदात्त भावों से ओत-प्रोत देखना चाहते थे।

"सब धर्मों का मूल स्रोत एक ही है। धर्म की महत्ता इसी में है कि हम उसको हृदय से सत्य और वास्तविक रूप में स्वीकार करें। हम लोग भिन्न धर्मों को स्वीकार करते हुए भी मनुष्य के नाते, भारतीय के नाते एक हैं।"[६]

देशभक्ति और आत्मबलिदान के भाव भी स्पृहणीय हैं : "मृत्यु जीवन की सहचरी, श्वासों की क्रान्ति, उत्थान रूपी मन्दिर की पिछली दीवार है। मैंने उसे फूलों से हँसकर उनका रस चूसते देखा है, पत्तों का चुम्बन करके उन्हें पीला बनाते देखा है, मेघों का सार खींचकर उन्हें निर्जल बनाते देखा है। पिता की मृत्यु, सेना की मृत्यु, सामन्तों की मृत्यु, माता की मृत्यु—मृत्यु ही तो मेरा विशाल गृह है। चलो, मैं तैयार हूँ।"[७]

४ 'तक्षशिला'—भूमिका, पृ० २।
५ 'कौन्तेय कथा'—निवेदन, पृ० ३।
६ 'शक विजय', पृ० १०।
७ 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन', पृ० १०३–४।

यह भावना भट्ट जी के साहित्य में अत्यधिक बलवान् है :

"क्या ज्ञान बुद्ध देश का कृतघ्न कीड़ा है।"[८]

देश-प्रेम और संस्कृति-प्रेम की भावना इनके सभी नाटकों में भरी पड़ी है। ऐतिहासिक नाटकों में तो पात्र धर्म और संस्कृति की रक्षा हेतु अपने जीवन तक को आहूत कर रहे हैं। 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन' नाटक में दाहर की कन्या कुमारी सूर्य देवी और परमाल देवी, 'विक्रमादित्य' नाटक में विक्रमादित्य की पत्नी चन्द्रलेखा और उसकी सखी अनंगमुद्रा इसके ज्वलन्त उदाहरण है। 'शक विजय' तो भारतीय संस्कृति का उद्घोषक ही है :

"जय, भारतीयता की जय हो। भारतीय धर्म की जय, भारतीय सस्कृति की जय।"[९]

शको से देश की रक्षा करने वाला वीर वरद भी भारतीय संस्कृति की जय बोलता है—"बन्धुओ, यह भारतीयता की जय है, भारतीय धर्म की जय है, भारतीय संस्कृति की ज्ञान-परम्परा, उसके शौर्य की जय है जो हमे प्राप्त हुई है।"[१०]

"भारत की संस्कृति सचमुच महान् है। यहाँ जैसा ज्ञानी व्यक्ति संसार में नहीं मिल सकता। इतना महान् देश मैंने कभी नहीं देखा।"[११]शक विजय' नाटक के अन्त में सब लोग धर्म, देश और संस्कृति का जय गान करते हैं :

"जय हो जय हो देश की
उषा-स्नात संस्कृति से शीतल निर्मल छवि विश्वेश की।
सागर चुम्बित जन-पूजित पद,
हिम मणि मुकुट छटा भ्राजित पद,
महिमा-मण्डित ज्ञान अखंडित भारत भूमि स्वदेश की।
जय हो जय हो देश की।"[१२]

सांस्कृतिक प्रभाव के कारण भट्ट जी के साहित्य में मानववाद का स्वर सबसे अधिक बलवान् है। मानववाद का ही लोकहितवादी स्वरूप मानवतावाद है, जो चिन्तन-विशिष्ट दर्शन नहीं है। वह सामान्य दार्शनिक मन:स्थिति का द्योतक है। उसका व्यापक प्रभाव यह पड़ा कि तार्किक सूक्ष्मता का दर्शन के क्षेत्र में महत्त्व कम हुआ। उसके स्थान पर सामान्य बुद्धि की उन धारणाओं को परिवर्द्धित किया गया, जिन्हें मानव ने अपनी प्रवृत्तियों और कार्यों के निर्देशनार्थ सोचा-समझा और जो बद्धमूल हो गई।[१३] आशय यह है कि मानवतावाद सामान्य दर्शन है और व्यावहारिक

[८] वही, पृ० ८१।
[९] शक विजय, पृ० १०८।
[१०] वही, पृ० ११०।
[११] वही, पृ० ११०।
[१२] वही, पृ० ११३।
[१३] 'Encyclopaedia of Religion and Ethics', Vol. 6.

जीवन में परीक्षित भी ।[१४]

उनकी चिन्तन दृष्टि इतनी व्यापक और उदार है कि उसके भीतर सभी प्रकार के विवाद और विरोध स्वतः विलीन हो जाते हैं । सागर में जिस भाँति विविध जलधाराएँ मिलकर एक हो जाती हैं, उसी तरह भट्ट जी के साहित्य में संस्कृति सब वादों और झंझावातों को अभयदान दे रही है । अतीत और वर्तमान की विभिन्नता विलीन होकर लगभग एक हो गई है, क्योंकि मानव का हित, लोक-कल्याण की चाह, प्रेम और करुणा उनका प्रतिपाद्य है । वे इतने उदार और विशद थे कि उनके लोक मे वाद-विवाद को कोई स्थान नही था । वे संयम और सदाचार के साहित्यकार थे । इसीलिए भारतीय संस्कृति के उदात्त भाव उनके साहित्य में भरे पड़े है ।

संस्कृति के उदात्त भावों के स्वर उनके नाटकों में परोक्ष रूप से अधिक स्फुरित हो रहे हैं । ये स्वर सभी प्रकार के नाटकों में विद्यमान हैं ।

"मैं तो रसोई में पटड़े पर बैठकर खाना पसन्द करता हूँ । यही हमारी भारतीय......है ।"[१५]

"हमीं खाने और बेईमानी करने लगेंगे तो बाकी लोगों का क्या होगा ? हमें इस देश को उन्नत और मानसिक रूप से स्वस्थ बनाना है । चरित्रबल से देश बनते और उन्नति करते हैं ।"[१६]

"देश की उन्नति में ही हमारी उन्नति है ।"[१७]

"क्या संसार में कहीं भी न्याय नहीं है ? तुम लोगों का क्या कोई धर्म और संस्कृति नहीं है । तुम लोगों के क्या माँ-बहन नहीं हैं ?"[१८]

सामाजिक नाटकों में भट्ट जी ने मानवीय गुणों का बखान समाज परिष्कार की भावना से ही किया है । इसके साथ-साथ उन्होंने यह भी साफ तौर से स्वीकार किया है कि आज के समाज में जो अनाचार, व्यभिचार, छल, कपट, विद्वेष, विक्षोभ, धन की बलवती लालसा और भोग का उन्माद है पाश्चात्य संस्कृति के अनुकरण और भारतीय संस्कृति के तिरस्कार का फल है ।

सांस्कृतिक स्वर भट्ट जी के भाव-नाट्यों और गीति-नाट्यों में भी सुनाई पड़ते हैं । 'विश्वामित्र' भाव-नाट्य के अन्त में विश्वामित्र और मेनका का विलगी-

[१४] आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार "मानववाद और मानवतावाद का यह अन्तर द्रष्टव्य है : मानववादी लेखक वह हैं जिन्होंने मनुष्य की सम्पूर्ण वृत्तियों का निस्संग चित्रण किया है, मानवतावादी लेखक अधिक भावुक और आदर्श-प्रेमी होते हैं, यथा टालसटाय ।"

—'आलोचना' त्रैमासिक, २० अक्टूबर १९५६, सम्पादकीय, पृ० ५ ।

[१५] 'पार्वती', पृ० १४ ।

[१६] वही, पृ० ६६ ।

[१७] वही, पृ० ५३ ।

[१८] 'अन्तहीन अन्त', पृ० ७३ ।

करण सम्भवतः सांस्कृतिक आदर्शों के प्रसार की ही चाह है। 'राधा' भाव-नाट्य मे राधा ने सभी कुछ लोक को दे डाला है। 'संत तुलसीदास' में भारतीय संस्कृति का आदर्श और मर्यादा अधिक मूर्तिमान है। 'मत्स्यगन्धा' भाव-नाट्य में भट्ट जी ने अन्त में बड़े कौशल के साथ शान्तनु की आखेट के समय मृत्यु दिखाकर ससार की सारहीनता का परिचय दिया है। ससार की असारता का सन्देश भारतीय संस्कृति भी बड़ी निष्ठा के साथ दे रही है।

'कालिदास—तीन ध्वनि रूपक' मे महाकवि के समय की भारतीय संस्कृति की झाँकियाँ उपलब्ध होती है। जहाँ तक एकांकियो का प्रश्न है, 'आदिम युग और अन्य नाटक' के प्रायः सभी नाटक भारतीय संस्कृति के आलोक को उत्कीर्ण कर रहे हैं। इतना ही नही भारतीय संस्कृति के विकास और मानवीय गुणों का चित्रण भी उनमें व्याप्त है।

अतः उनका नाट्य साहित्य मानवीय एव सास्कृतिक है। लेखक ने परम तत्त्व का दर्शन नाम में या रूप मे नहीं किया, नैतिक पूर्णत्व मे अनुभव किया है।[१६] वे भारतीय संस्कृति के उत्थानमूलक तथा गतिमान स्वरूप को ग्रहण करते है, जिसे मानवता के चरम उत्कर्ष का पर्याय माना जा सकता है।[२०] भट्ट जी ने सुख की चरम परिणति भोग के त्याग मे स्वीकार की है और कर्तव्य-साधना को त्याग का साधन माना है। यह विचारणा 'ईशावास्योपनिषद्' से गृहीत है जो भारतीय संस्कृति का प्राण है।[२१]

इस उद्योगशीलता से व्यक्ति का चारित्र्य उन्नत होता है, उसकी वृत्तियाँ सात्विक बनती हैं तथा प्रेम, त्याग और करुणा के द्वारा उसके हृदय का परिमार्जन होता है। भट्ट जी के नाटक यह कार्य सफलता के साथ सम्पादित कर रहे हैं।

निश्चय ही भट्ट जी का व्यक्ति और उनका समाज एक दूसरे पर आश्रित हैं। उन्होंने असत् तत्व को, दुष्टवृत्तियों को अथवा दुर्भावनाओं को कभी प्रश्रय नहीं दिया। पाप से वे सदैव दूर रहे और लोकनिष्ठा ही उनका साध्य रहा। भारतीय संस्कृति में सदैव नारी का उच्च और गौरवशाली स्थान रहा है। भट्ट जी ने भी सदैव नारी को श्रद्धा-भाव से ही देखा है। इसीलिए 'दुर्गा' एकांकी में सामन्तीय युग का खाका खींचते हुए विजय और दुर्जन के वैमनस्य का अन्त दुर्गा द्वारा कराया है और इसी प्रकार 'समस्या का अन्त' नामक एकांकी में भद्रकों और वामरथों की

[१६] "Differences in name become immaterial for the Hindu, since every name, at its best, connotes the same metaphysical and moral perfection."
—S. Radhakrishnan. 'The Hindu View of life', page 46.

[२०] "We are persons, 'Purushas', as God is perfect personality, 'Uttam Purusha.'' Ibid, page 27.

[२१] "ईशावास्यमिदं सर्व यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।"

युद्धमयी समस्या का अन्त वामरथगण की कन्या माणविका द्वारा करवाया है। 'सौदामिनी' एकांकी में विजयार्थ और सुदेव की शत्रुता का अन्त सौदामिनी द्वारा प्रस्तुत किया गया है। वस्तुतः भट्ट जी ने नारी के गौरव की रक्षा की है और उसके असीम त्याग से पाठकों को चकाचौंध कर दिया है। भट्ट जी ने नारी के दूसरे रूप का भी चित्रण किया है पर वहाँ उनकी बुद्धि हृदय का साथ छोड़कर एकाकिनी की तरह भटकती हुई चली है। उनके साहित्य में सत्य के प्रति गहरी आस्था, जन-जन में मानवता को जगाने की बलवती स्पृहा, करुणा, दीनों पर दया, शोषण का विरोध, त्याग एवं तपस्या से जीवन-यापन की प्रेरणा, धर्म और कर्म से अनुप्राणित होना, ईश्वरीय अदृष्ट सत्ता में विश्वास और मानवीय सहज गुणों के लिए बार-बार अनुरोध मिलता है। आत्मा की स्वच्छता पर भट्ट जी का अटल विश्वास था। इसीलिए उनके साहित्य में मायावी, छद्मवेशी, झूठे और कपटी पात्र आक्रोश का शिकार बने हुए हैं। उन्हें व्यक्त जीवन और प्रत्यक्ष जगत् से ही पूरा परितोष था। प्रकट सत्ता से परे और भी कुछ है, इस सम्बन्ध में वे तर्कशील नहीं थे। इसीलिए उन्होंने अपने साहित्य में विभिन्न संस्कृतियों के समन्वय की अवधारणा की है। भट्ट जी की मानवोत्कर्ष-विधायक निष्ठा, जीवन-सम्बन्धी आस्था और अशुभ परिणामों में भी अडिग रहने वाली आशावादिता उत्तरोत्तर बलवती, स्वस्थ और सुदृढ़ होती गई है। वे जीवन के सत् पक्ष के समर्थक होने के कारण मानववादी हैं और सामाजिक मूल्यों में नैतिकता को प्राधान्य देने के कारण गम्भीर चिन्तक हैं।

भट्ट जी ने भारतीय संस्कृति के अतीतकालीन उत्कर्ष के भव्य चित्र अंकित किये हैं, जिनमें उनकी सांस्कृतिक मनोभावना अभिव्यक्त हुई है। भारतीय-संस्कृति का अनुराग उनके नाटकों में परोक्ष रूप से प्रायः सर्वत्र बोल रहा था। उन्होंने अतीत की गौरव भरी कहानियों का प्रयोग राष्ट्र-प्रेम उद्दीप्त करने के लिए किया है और प्राचीन आख्यानों को नवीनता के रंग में रंग कर प्रस्तुत किया है। भट्ट जी ने इस भावना को प्रायः व्यक्त किया है—"क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप।"[२२] पर "नर हो, न निराश करो मन को"[२३] का सन्देश भी दिया है। इसीलिए धर्म पर उनकी आस्था है।

"आर्य-धर्म विश्व का धर्म है, आर्य-संस्कृति मानव की वास्तविक संस्कृति। उसका प्रकाश जीवन का प्रकाश है। उसकी ज्योति आत्मा की, ईश्वर की ज्योति है।"[२४]

"हम अपने देश, धर्म और संस्कृति के लिए प्राण दे देंगे।"[२५]

[२२] गीता, अध्याय २, श्लोक ३।
[२३] 'मगल घट'—स्वर्गीय संगीत, पृ० २८५।
[२४] 'आदिम युग और अन्य नाटक', पृ० १४३।
[२५] 'दाहर अथवा सिन्ध पतन', पृ० २५।

भट्ट जी के नाटकों में आदि, मध्य और आधुनिक युग की सांस्कृतिक झाँकियाँ प्राय: दीख पड़ती है। सांस्कृतिक अनुराग का रंग उनके नाटकों में बड़ा गहरा है।

"हिन्दू रिलीजन सचमुच महान् है और भारतीय संस्कृति अमर है।"[२६] इसके अतिरिक्त—

"निज संस्कृति की वरद प्रभा से।
नवालोक-विस्तारक वे॥"[२७]

और भी—

"जीवन का क्षेम वहन ले, संस्कृति-परिधान पहन कर।"[२८]

उनके खण्डकाव्यों में, नाटकों में, कविता में संस्कृति के तत्त्व भगवद्-विश्वास, अतिथि-सेवा, लोकहित-भावना, माता-पिता के प्रति अनुराग—संस्कार, जन्म, मरण, उत्सव, पर्व आदि का प्राय: वर्णन उपलब्ध होता है।

भगवद्-विश्वास

"हे मनुष्यगण, जिस क्षुद्र अहं बुद्धि ने तुमको संसार की एकता से पृथक् कर रखा है, उस मन्द-बुद्धि को तुम छोड़ दो। बुद्धि को स्थिर करके तुम शील ग्रहण करो। शुभ व्रत के साधन द्वारा आनन्द प्राप्त हो जाने पर क्रमश: तुम्हारे सब दु:खों का नाश होगा। बोध को जागृत करके तुम अपना प्रसार करो। तो सारी हीनता, क्षुद्रता स्वयं नष्ट हो जायगी तथा तुम विश्व के साथ एकता का अनुभव करोगे।"[२९]

"मेरी पूजा का फल मुझे मिल गया बेटा।"[३०]

"मेरे हृदय में ऐसा विश्वास बैठ गया है कि जो तुम्हारा नहीं है, उसे तुम पाकर मनुष्यत्व से···क्या कहूँ ?"[३१]

अतिथि-सेवा

"देखो, प्रमोद, कहीं से बर्फ मिले तो ले आओ, आप लोग......।"[३२]

"दो अतिथि आये हैं। इसी ट्वन्टी अप से। वैसे तो मुसाफिरखाने में पड़े रहते। मैंने कहा, मेरे यहाँ ही ठहर जाओ। कैसा रहेगा ?"

युवती—अच्छा तो है, ठहरा लीजिए। खाना बनाना होगा बना दूँगी।"[३३]

[२६] 'पर्दे के पीछे', पृ० ४७।
[२७] 'कौन्तेय-कथा, पृ० ३२।
[२८] वही, पृ० ७८।
[२९] 'मुक्ति-दूत', पृ० ७७।
[३०] 'पार्वती', पृ० ९७।
[३१] 'अन्तहीन अन्त', पृ० ९७।
[३२] 'धूमशिखा'—नए मेहमान, पृ० ७७।
[३३] 'समस्या का अन्त'—दो अतिथि, पृ० १४९।

लोक-हित भावना

यह भावना भट्ट जी के साहित्य में अत्यधिक बलवान् है :

"वैषम्य-नाश का कारण वैषम्य-ह्रास का कारण
मैं इसी हेतु कहता हूँ हैं प्राणि मात्र जग में सम।"[३४]

"उन्नति समता में रहती है, और प्रेम-सूत्र के बल में,
है साम्य प्रकृति का सर्जन, वैषम्य प्रलय जीवन का।
मेरी ही शिव संस्कृति ने मानव को शक्त किया है,
अन्यथा जन्म पाते ही वे लड़-कट कर मर जाते।"[३५]

"दो साँसों से बुनो भविष्यत् का पट निर्मल,
वही ढकेगा नंगे तन को वर्तमान के।
दो हाथों से चुनो नींव कल के मन्दिर की,
सपने होंगे वहीं सत्य कंकाल प्राण के।"[३६]

जन्म और मरण

"जिन्दगी हर चीज से बहुत हल्की
जिन्दगी हर चीज से बहुत है भारी,
मन सुसन्तुष्ट अगर, हर ठाँव दिवाली तेरी
कठिनाई से मिलता है कठिनाई यही सारी॥"[३७]

"आदमी को लेटने के लिए साढ़े तीन हाथ जमीन की जरूरत है और बैठने के लिए एक हाथ भी मान सकते हैं और खड़े होने पर दो पैर, पर मरने के पर उतनी भी नहीं।"[३८]

"पैदा होते ही मैंने मरने का नाम सुना है। मृत्यु जीवन की सहचरी श्वासों की क्रान्ति, उत्थान रूपी मन्दिर की पिछली दीवार है।"[३९]

"भूकम्पों को रोक न पाया प्रलय, मेघ का पानी,
मृत्यु रोकने की न शक्ति है हानि लाभ अज्ञानी॥"[४०]

माता-पिता के प्रति अनुराग

अह अनुराग संस्कारजन्य होता है। आज यह भाव प्रायः कम होता जा रहा

३४ 'कौन्तेय कथा', पृ० ७३।
३५ वही, पृ० ७४–७५।
३६ 'कणिका', पृ० २१।
३७ वही, पृ० १२।
३८ 'पर्दे के पीछे', पृ० ४७।
३९ 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन', पृ० १०३।
४० 'कणिका', पृ० १३।

है। इस सम्बन्ध में भट्टजी ने व्यंग्य का आश्रय लिया है :

"असल में यह कमरा बाबूजी ने अपने बैठने के लिए बनवाया था। पर हम कहाँ जाएँ। वह बूढ़े हो गए। काम न धाम, दिन भर पड़े रहना।"[४१]

दूसरा रूप भी द्रष्टव्य है :

"जिस पिता ने मुझे पाल-पोस कर इतना बड़ा किया, जिसने अपना सर्वस्व देकर पुत्री की रक्षा की, मैं स्वार्थ को धर्म समझकर उसी पिता की रक्षा नहीं करती। मेरी भूल है। मैं जाती हूँ।"[४२]

"पिता के पापों को उसकी सन्तान ही धो सकती है।"[४३]

उत्सव और पर्व

"कल हमारे स्कूल में वार्षिकोत्सव का आपको सभापतित्व करना है। बालकों को कुछ उपदेश भी। बच्चों को उपदेश देने के साथ कुछ अपील भी, ताकि कुछ चन्दा हो जाय। वैसे हमने पाँच हजार कर लिया है।"[४४]

"इतना वैभव मेरे नाम पर, इतना विशाल मन्दिर सत्य के प्रचार के लिए! सत्य का प्रचार क्या मन्दिरों से होता है? सत्य का सम्बन्ध आत्मा से है। नेक कामों से है। जीवों पर दया करने से है। मन, वाणी, कर्म के एकत्व से है। सत्य का ढोंग मत रचो, सत्य ही ईश्वर है।"[४५]

इस प्रकार भट्टजी ने उत्सव और पर्व की वास्तविकता का चित्र अंकित किया है। वे भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक थे। इसीलिए उन्होंने लिखा है :

"प्रत्येक चरण संस्कृति चलती
प्रत्येक चरण उन्नति चलती
प्रत्येक चरण युग धर्म चला
प्रत्येक चरण युग कर्म चला॥"[४६]

इसके अतिरिक्त उन्होंने पूर्व की विस्मृति और पश्चिम के अन्धानुकरण के प्रति भी चिन्ता व्यक्त की है।

निष्कर्ष

वस्तुतः भट्टजी भारतीय संस्कृति के उद्गाता ही नहीं उन्नायक भी थे। उन्हें वे सब आचरण जिनसे हमारी पुनीत संस्कृति को आघात पहुँचता हो कदापि

४१ 'पर्दे के पीछे'—बाबूजी, पृ० ३५।
४२ 'जवानी और छः एकांकी'—दुर्गा, पृ० ७५।
४३ 'नया समाज', पृ० ६६।
४४ 'आज का आदमी', पृ० २३।
४५ वही—सत्य का मन्दिर, पृ० ६५।
४६ 'एकला चलो रे', पृ० १५।

स्वीकार्य नहीं थे। इसीलिए बहिर्मुखी लोक के प्रति उनकी कोई आस्था नहीं थी। उनके मन ने सदैव भारत के गौरवशाली अतीत और भारतीय संस्कृति के गुणों को अपनाया और उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त की है। भौतिकता और विज्ञान की उपलब्धियाँ उनके लोक में साधन थीं, साध्य नहीं। एक ऐसी मानवता और भारतीय संस्कृति ही थी जिसकी भलाई और प्रसार के लिए वे जीवन के अन्तिम चालीस वर्षों में अविरत रूप से कार्यरत रहे। मानवतावादी विचारणा के कारण वे संस्कृति के एकदेशीय अथवा अतीतकालीन जीवन के कथाकार ही नहीं, बल्कि मानव संस्कृति के द्रष्टा थे जिसमें सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, वैयक्तिक, जातीय अथवा वैचारिक सभी प्रकार की विषमताएँ अपसारित हो जाती है। उनका गम्भीर विश्वास था कि संस्कृति तथा साहित्य से मनुष्य पशुता से ऊपर उठकर वास्तविक मनुष्य बनता है और विशेषकर संस्कृत मनुष्य के मन और मस्तिष्क का निर्माण करती है। वह साहित्य से सुसंस्कृत होकर जीवन को शुद्ध और परिमार्जित करती है। अतः निश्चय ही भट्टजी भारतीय संस्कृति एवं जीवन दर्शन के क्षेत्र में एक मेधावी मनीषी और कुशल चिन्तक थे।

षष्ठ अध्याय

समसामयिकवाद और भट्ट जी

भट्टजी का युग हिन्दी साहित्य में विभिन्न विधाओं तथा वादों का युग है। इसीलिए उन्होंने साहित्य की अधिकतर विधाओं को अपनाया, पर वे किसी वाद से पूर्णतः सम्पृक्त नहीं हुए।

"मैंने किसी वाद को लक्ष्य में रखकर कोई रचना नहीं की। इसका कारण यह है कि किसी वाद ने मुझे प्रभावित नहीं किया। मैंने माना है कि वादों की सीमा में असीम साहित्य-सौन्दर्य संकुचित हो जाता है और काव्य की महत्-निष्ठता में व्याघात होने लगता है। 'वाद' बाद की चीज हैं। मैंने काव्य में केवल एक बात को सदा ध्यान में रखा है कि जो कुछ लिखा जाय उसमें आत्मा की प्रेरणा तथा वस्तु के प्रति ईमानदारी हो, उससे लेखक और पाठक को कुछ मिले। उसकी आत्मा उल्लसित होकर ऊपर उठे। उसमें सत् की प्रति निष्ठा उत्पन्न हो। उसका अध्यात्म उदित हो।"[४७]

इसके अतिरिक्त भी—"मैं मानता हूँ वाद साहित्य की आधारभूत शिलायें नहीं हैं। परिस्थितियों से उत्पन्न वाद साहित्य में निर्देश का काम करते हैं। विचारों को प्रोज्ज्वल करते हैं। उनकी उपयोगिता इतनी ही है। साहित्य की स्वच्छता मानव जीवन का वरदान है। वह अपने में जितना शुद्ध, स्वच्छ और निर्मल होगा उतना ही प्राणवान्, उतना ही स्थायी होगा।"[४८]

भट्ट जी के साहित्य में शिवेतरक्षति की भावना अधिक है—"यदि हम वाङ्मय के द्वारा, जो केवल दूसरों के लिए है, अपना और समाज का कल्याण नहीं कर सकते तो वह वाङ्मय हेय है, किन्तु काव्य का हित देय स्पष्ट होना चाहिए वह कला के सौन्दर्य में इतना संश्लिष्ट हो, इतना ओत-प्रोत कि देय अन्ततोगत्वा एक

[४७] 'साहित्य के स्वर'—अपने सम्बन्ध में, पृ० ५।
[४८] वही, पृ० १६।

ध्येय हो जाय।"[४९]

छायावाद

भट्ट जी ने किसी वाद विशेष को अपनाया हो, यह बात युक्तियुक्त और समीचीन प्रतीत नहीं होती। हाँ, 'राका' और 'विसर्जन' की कविताएँ उनके भावुक मन की सहज एवं सरस अभिव्यक्ति हैं। इन्हीं में कुछ छायावादी स्वर भी स्वरित हो रहे है :

"इसका यौवन सदा अमर है
अमर हो गया मेरा यौवन,
आज भर गया है प्राणों में
शत-शत स्वर्गों का सुख जीवन।
मैं अब तक न जान पाया हूँ
इसके मधुर गान की धारा,
मैं केवल कहता आया हूँ
मेरा इसका एक किनारा॥"[५०]

'मानसी' में भी छायावाद का नैराश्य और दु:खवाद की किरणें फूटती हुई दीख पड़ती हैं। गुलमर्ग और श्रीनगर के प्राकृतिक सौन्दर्य से आह्लादित जीवन की सम्पूर्ण चेष्टा का अन्त 'मानसी' के नैराश्य में अभिव्यक्त हो रहा है :

"दु:ख में सुख की लहर छिपी है
सुख में और सुखों की आशा,
जीने में जीवन की इच्छा
'जीवन' जीवन की परिभाषा॥[५१]

इसके अतिरिक्त :

"नभ के नक्षत्रों से जिसकी
दीवारों में छेद जड़े हैं
पीड़ा के, स्मृति के, जड़ता के
मानों बिखरे बीज पड़े हैं।"[५२]

अत: भट्ट जी के काव्य में सुन्दर चित्रमयता है। वस्तुत: "भट्ट जी एक जागृत कलाकार हैं। वह अपनी रचनाओं में जिस स्वप्न को देखते हैं वह स्वयं परिपूर्ण होता है। वह आधी रात को काल्पनिक जगत् में जगते जरूर हैं पर आँखों में खुमारी भरकर नहीं। वह सजग होकर अपने भीतर झाँकते हैं और जो देखते हैं

४९ वही, पृ० ५।
५० 'विसर्जन', पृ० २।
५१ 'मानसी'—उद्बोधन, पृ० ८५।
५२ वही—प्रारम्भ, पृ० ४।

उसका हूबहू चित्र खीच लेते हैं।"[५३]

इसके अतिरिक्त : "यदि छायावादी कवियों के बाद किसी कवि को उसी परम्परा में रखकर अनुशीलन किया जाए तो भट्ट जी का नाम सबसे पहले आना चाहिए।"[५४]

यदि उनके काव्य को गम्भीरता से देखा जाए तो ज्ञात होगा कि 'मानसी' और 'विसर्जन' की कविताओं में केवल छायावाद की झलक मिलती है, रचना, वैविध्य प्रायः नहीं है।

प्रगतिवाद

'यथार्थ और कल्पना' की कविताओं में प्रगतिवादी काव्य के स्वर उपलब्ध होते हैं पर भट्ट जी ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को उपास्य के रूप में स्वीकार न करके उपासक और साधक के रूप में ग्रहण किया है।

"प्रगतिवाद जिस वीर-पूजा का विरोध करता है वही दूसरे रूप से सर्वहारा के अधिनायकत्व में पूर्ण विश्वास रखकर चलता है। सबसे बडी बात जिससे मुझे भय है वह है साम्यवादी की विरोधी के प्रति खड्गहस्तता। प्रगतिवादी बनाम साम्यवादी की दृष्टि मे उसका विरोधी संसार मे रहने योग्य नही है। उसे निःशेष होना ही चाहिए। चाहे वह कूटनीति से नष्ट हो या तलवार से।"[५५]

भट्ट जी ने मानवीय आधार पर पूँजीवाद और शोषण का विरोध, वर्ग-संघर्ष एवं भोगवादी दृष्टिकोण के प्रति अनास्था व्यक्त की है :

"जहाँ एक ही जाति होगी धरा पर
जहाँ एक नर पाँति होगी धरा पर
जहाँ संघ में प्राण अनुरक्ति होगी
वहाँ प्रेम होगा, वहीं शक्ति होगी।"[५६]

प्रगतिवादी काव्य की लहरों ने कवि के मानस को झकझोरा तो अवश्य है, पर वहाँ वे ठहर नही सकी हैं।

मानवतावाद

हाँ, भट्ट जी के काव्य में कही-कही पर आध्यात्मिकता के स्वर भी दृष्टिगोचर होते हैं और कवि का साधना और धर्म पर गहरा विश्वास है :

[५३] वही—आमुख (आचार्य विनय मोहन शर्मा), पृ० ७।

[५४] डा० विजयेन्द्र स्नातक : 'उदयशकर भट्ट : व्यक्ति और साहित्यकार'—भट्ट जी का काव्य, पृ० ६९।

[५५] 'साहित्य के स्वर'—हमारा साहित्य किधर ?, पृ० ३२।

[५६] 'पूर्वापर', पृ० १०७।

"बिना साधना के विचार थोथे होते हैं,
बिना कर्म के थोथे हैं निःश्वास प्राण के।"[५७]

और भी :

"आवरण हटाओ मुझे झाँकने दो टुक,
अन्तस्थ स्वर्ग का आमन्त्रण करने दो,
मैं रहा हारता अब तक मेरा भ्रम था,
भास्वर प्राणों का भय-व्रण हटने दो?
मैं हूँ विराट, मैं परम सृजन चेतस हूँ,
अव्यक्त सत्यमय पुरुष परापर ज्ञाता,
है नहीं पुरुष से परे विश्व में कोई
मैं स्वयं सृजन, मैं सृष्टा सृजन विधाता।।"[५८]

कवि ने मानव की विराट् चेतना के प्रभाव को समष्टि के आलोक-रूप में स्वीकार किया है—"समष्टि में विश्वास करते हुए भी मैंने व्यक्ति की महत्ता और उसकी विशिष्टता को स्वीकार किया है। उसकी विराट् चेतना जो सारी समष्टि पर अनादि काल से छाती रही, उसे आलोकित करती रही, उसके गीत भी मैंने गाये हैं। मैं मानता हूँ व्यष्टि का बुद्धि-वैभव, उसका विराट् चिन्तन, उसकी व्यापक दृष्टि सागर से निकले टापू के समान है या वह समुद्र में एक प्रकाश-स्तम्भ की तरह है जो भटकती मनुष्य जाति को आश्रय या प्रकाश देती रही है। व्यष्टि की गरिमा से ही समष्टि मण्डित होती रही है। इसके साथ ही मैंने जीवन के समग्र रूप को ग्रहण करने की चेष्टा की है। मैं मनुष्य के दैन्य, उसके आक्रोश, उसके पतन और उत्थान में उसकी शक्ति पर विश्वास करके चला हूँ।"[५९]

ऐसा साहित्यकार किसी वाद से कैसे प्रभावित हो सकता था? हाँ, मानव का कल्याण उनकी बलवती चाह एवं निष्ठा अवश्य बना हुआ है।

भट्ट जी साहित्य में व्यष्टि की महत्ता को सर्वाधिक मानते हैं : "मुझे ऐसा लगता रहा है कि मेरा काम जैसे केवल साहित्य की सेवा करना है। इसी से मैं अपने को सेवाभावी लेखक मानता हूँ। जिसमें समाज या व्यक्ति को ऊपर उठने की प्रेरणा, बल न मिले, उसका हित न हो वह लिखना बेकार है।"[६०]

गांधीवाद

भट्ट जी के साहित्य में गांधीवाद की भी झलक दृष्टिगोचर होती है—
मनोहर—यह नीच काम है, हम हकूमत करने के लिए पैदा हुए हैं, बेटा।

५७ 'कणिका', पृ० ४५।
५८ 'इत्यादि'—आवरण हटाओ, पृ० ११२।
५९ 'मुझमें जो शेष है'—आत्मविश्लेषण, पृ० ध।
६० 'साहित्य के स्वर'—अपने सम्बन्ध में, पृ० ५।

चन्दू—कोई भी काम नीचा नहीं है। गांधी जी तो अपने हाथ से दूसरों की......।

मनोहर—गांधी जी ! नहीं-नहीं, किसी ने वैसे ही उड़ा दिया होगा।"[६१]

यथार्थवाद और आदर्शवाद

भट्ट जी ने यथार्थवाद के साथ-साथ आदर्शवाद को भी अपनाया है : "ईश्वर की यदि कृपा होगी तो युवराज सगर सुरक्षित ही रहेंगे। पाप के पर्वत टुकड़े होकर ही रहेंगे। अहंकार के हृदय रोकर, फूटकर, गलकर बह जायेंगे। बाहु को मार डाला ! उनकी पत्नियों की यह दशा ! खुलेगा, धूर्जटिका, तुम्हारा तीसरा कपाट खुलेगा। अब नही सहा जाता। देश में विद्रोह की आग फूंक दो।"[६२]

पर यह यथार्थ भी समाजपरक है और आदर्श का रंग इसे सुन्दर, संयत और शालीन बनाए हुए है। क्योंकि यह यथार्थ उन्हें पीड़ा पहुँचाता था, इसीलिए वे लोक को ऐसी भावभूमि सौपना चाहते थे जहाँ सर्वत्र सुख-शान्ति हो।

प्रयोगवाद

भट्ट जी ने प्रयोगवादी कविताओं की भी रचना की है, पर ये कविताएँ समाजपरक कम और व्यक्ति की अनुभूतिपरक अधिक हैं :

"रद्दी के कागज,
सूखे पत्ते,
धूल की किनकियाँ,
खुले मैदान में,
आंगन में,
जीने में,
कमरों के सीने में,
दीवारों पर
पत्थरों पर—
रुकावट को भेद कर
किवाड़ों को छेद कर
सर सर हवा से—"

इन कविताओं में सरसता है, बौद्धिकता नहीं। इसके अतिरिक्त वैयक्तिकता का बोलबाला भी कदाचित् नहीं है और सबसे बड़ी बात यह है कि कवि नवीन के मोह में भी प्राचीन को विस्मृत नहीं कर पाया। इसीलिए भट्ट जी नई कविता

[६१] 'नया समाज', पृ० ३६।
[६२] 'सगर-विजय', तीसरा अंक, तीसरा दृश्य, पृ० ५६।

के रूप-रंग में भी पुराने ही कवि दीख पड़ते हैं। उन्होंने नई कविता के सम्बन्ध में विचार भी व्यक्त किए हैं।

"आज उसकी मांग में न तो सिन्दूर है, न माथे पर झूमर, न गले में मुक्ताहार, न हाथों में कंकण, न पैरों में पाजेब हैं, न रुनझुन करके हृदय को बेसुध कर देने वाली पायल। उसने पहली वेशभूषा को छोड़ दिया है। आज उसमें रात के पिये हुए मद्य के खुमार की तिक्तता भर कर रह गई है, नशा नहीं। वह उस नगरवधू के समान हो गई है जिसकी हीन-प्रभ आँखों में पुरानी बहार के दिन कभी-कभी झाँक जाते हैं और अटारी के एक कोने में बैठकर हुक्के के कश के हर धुएँ में स्मृति चित्रों का दर्शन उसे निरन्तर होता रहता है।"[६३]

स्वच्छन्दतावाद

भट्ट जी को स्वच्छन्दतावादी या रोमांसवादी कहना भी एक भ्रम ही है। इस सम्बन्ध में उनके विचार द्रष्टव्य है : "यही नहीं, डाक्टरेट के अनेक थीसिसों में किसी ने मुझे स्वच्छन्दतावादी और किसी ने रोमांसवादी कहने की भी कृपा की है। बच्चन जी की बात की गहराई तक जाने पर समझ में आया कि उनके कहने या आग्रह करने का क्या तात्पर्य है ? एक कवि की कविता को दूसरे कवि के नाम जोड़ देना या एक लेखक की पुस्तक को दूसरे लेखक की पुस्तक बताना आदि बातें आजकल आम हैं। उस दशा में कवि को किसी एक वाद में बन्द कर देना तो पाठक समझ सकते हैं, कितनी साधारण बात है।"[६४]

लेखक किसी वाद से सम्पृक्त नहीं है। इस विषय में उन्होंने स्वयं लिखा है : "कविता ही नहीं, आज साहित्य का प्रत्येक अंग मनुष्य के श्वास-प्रश्वास की तरह व्यावहारिकता के आवरण, उद्बुद्ध घुटन का भाग बन गया है। वह मनुष्य की तरह बेधड़क होकर सर्वत्र विचरण करके नित्य नई समस्याओं का समाधान ढूंढने लगा है और नगर की गलियों-सड़कों के नाम की तरह उसने नये वादों का नामकरण भी कर दिया है। वहीं कहीं वह उन वादों में चक्कर काटकर वापिस घर लौटने में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री भी समझने लगा है।"[६५]

"मुझे लगता है जैसे यह समस्या सदा से कलाकार के सामने रही है कि साहित्य की निष्पत्ति क्या है, कहाँ तक वह युगकालीन समस्याओं, वादों और साहित्य के रूपों को ग्रहण करे ? आज के युग में व्यक्ति और समाज की मान्यताओं का अहं विभिन्न सैद्धान्तिक रूप ग्रहण कर रहा है तथा वादों की दार्शनिक विवेचना ने तर्क की उपपत्तियों और प्रतिपत्तियों को अनुकूल और प्रतिकूल दोनों दिशाओं में मोड़ दिया है।"[६६]

६३ 'पूर्वापर'—भूमिका पृ० ग-घ।
६४ 'मुझमें जो शेष है', आत्मविश्लेषण, पृ० क-स।
६५ 'पूर्वापर' पृ० घ।
६६ 'साहित्य के स्वर'—साहित्यकार की समस्या, पृ० १।

इसके अतिरिक्त :

"साहित्यकार अपनी सृजन की भूख को संतुष्ट करने के लिए जो कुछ कहता है उसमें सुख-दु:ख, आसक्ति-विरक्ति, अनुराग-द्वेष उसके अपने हैं, समाज के हैं या युग के है क्योंकि वह व्यक्ति वही है।"[६७]

और भी :

"मनुष्य समाज एवं व्यक्ति का कल्याण केवल किन्हीं विशेष वादों एवं विचारों में सीमित है, इसके आगे अथवा इसके अतिरिक्त मनुष्य के कल्याण का कोई मार्ग ही नहीं है, साहित्यिक विवेक को दबाना है।"[६८]

"सबसे पहले तो साहित्य में जो वाद प्रचलित हैं वे स्वयं साहित्य की दिग्भ्रान्ति के सूचक हैं। मैं इनमें से किसी को भी साहित्य के लिए उपयोगी नहीं मानता हूँ।"[६९]

अत: यह पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है कि भट्ट जी की किसी भी वाद में आस्था नहीं थी। इसके अतिरिक्त समसामयिक वादों के साथ भट्ट जी के युग के उत्तर काल में अन्य वादों का भी श्रीगणेश हो गया था, जिनकी ओर उन्होंने मुँह भी नहीं किया।

संक्षेप में भट्ट जी वादों से सम्पृक्त नही थे।

निष्कर्ष

भट्ट जी समर्थ और कुशल साहित्यकार थे। वे सदैव साहित्य की नव-नव नवीनताओं की ओर उन्मुख रहे। उन्होंने वादों से विवाद नही किया, हाँ, वादियों की विडम्बना की ओर संकेत अवश्य किया है। द्वन्द्व नहीं, ऐक्य; विभाजन नहीं, संयोजन; वैषम्य नही, सामंजस्य उनका लक्ष्य रहा है। वे समन्वय के पक्षपाती थे, अत: विवादी स्वरों की अपेक्षा संवादी स्वरों द्वारा जीवन की गति में अभिन्नता स्थापित करने के अभिलाषी थे। उन्होंने छायावाद, प्रगतिवाद, आदर्शवाद, यथार्थवाद, गांधीवाद और अन्य वादों का वर्णन किया है पर वे किसी के साथ सम्पृक्त नहीं हो पाये। भट्ट जी ने वादों मे भी जीवन की गतिविधियों का निरीक्षण अधिक किया है। उनमें जीवित जगत् का अध्ययन ही उनका मनन एवं चिन्तन है। उनका साहित्य संस्कृति और मानव की मंगल कामना को संजोये हुए और इतिहास अपनी सामयिक हलचलों को पिरोये हुए चल रहा है। 'वाद' उनके लोक में बाद की वस्तु है। भट्ट जी मानव की आन्तरिक शुद्धि पर अधिक जोर देते हैं। सचमुच वे अन्तर्बाह्य जगत् के कुशल चित्रकार थे। अत: यह बात निर्विवाद है कि वे किसी भी वाद के पक्षपाती नहीं थे, अपितु संयमित और विवेकपुष्ट प्रवृत्तियों के पालक और सर्वजनहिताय मार्ग के अनुगामी थे।

६७ वही, पृ० २।
६८ 'धूमशिखा'—आमुख, पृ० च।
६९ 'साहित्य के स्वर'—साहित्यकार का दायित्व, पृ० ४३।

सप्तम अध्याय

भट्ट जी की भाषा

भाषा भावों की वाहिका है। यह जितनी सरल और सरस होगी उतनी ही अभिव्यक्ति में तीव्रता और गतिशीलता होगी। भट्ट जी भाषा के असाधारण पंडित थे। उनकी भाषा में ओज, प्रसाद, माधुर्य, सभी गुण हैं, पर प्रासादिकता सर्वोपरि है। इसका मूल कारण है उनके साहित्य में शिवेतरक्षतये की भावना। वास्तव में उनकी भाषा स्रोतस्विनी की भाँति उमड़ती चलती है और उसके प्रवाह में कहीं पर भी शिथिलता नहीं आने पाई है। भाषा के सौष्ठव पर उनका आग्रह बराबर बना रहा। इसीलिए उन्होंने अपनी भाषा में अन्य भाषाओं के शब्दों को भी निस्संकोच लिया है। भाषा के क्षेत्र में असाधारण पाण्डित्य होने का कारण उनका संस्कृतज्ञ होना है।

"संस्कृत मेरी पैतृक सम्पत्ति रही है। परिवार के कुछ लोग चूड़ान्त वेदज्ञ थे। पिता सरकारी दफ्तर में काम करते हुए रोज प्रातः हथेली पर पार्थिव पूजन और रुद्राऽष्टाध्यायी का पाठ करते थे। मुझे भी यज्ञोपवीत के साथ यजुर्वेद-संहिता पढ़ाई गई। अष्टाध्यायी, अमरकोश, रघुवंश घर पर पढ़ाए जाते और स्कूल में अंग्रेजी पढ़ता। हर रात पिता जी को तुलसीदास की रामायण सुनाना काम मेरा था। इसी से दस-बारह साल की अवस्था में कई बार मेरा रामायण का पारायण हो गया।

"छुटपन में संस्कृत में मैंने सर्वप्रथम अनुष्टुप छन्द बनाया था, ऐसा मुझे याद पड़ता है। एक बात और है कि हमारे गाँव कर्णवास में जो गंगा के तट पर है एक ब्रह्मचर्याश्रम था, जहाँ सब छात्रों को संस्कृत बोलना अनिवार्य था। मेरे काका स्व० रमाशंकर जी उसी आश्रम के आचार्य पंडित जीवनराम जी से शिक्षा पाकर वहीं व्याकरण पढ़ाते थे। यहाँ तक कि वे अपनी पत्नी तथा परिवार के अन्य लोगों से भी संस्कृत में बात करते थे। उसी वातावरण में मुझे संस्कृत की शिक्षा-दीक्षा प्राप्त हुई। इसी के परिणामस्वरूप संस्कृत में समस्या-पूर्ति करना मेरे लिए

सरल हो गया। मैंने सबसे पहले संस्कृत की 'शारदा', 'सहृदयता' में ही लेख लिखे। एक दिन अचानक 'शारदा' के सम्पादक स्व० प० चन्द्रशेखर शास्त्री के बनारस में दर्शन हुए। उन दिनों मैं काशी में पढता था। उन्होंने बातों-बातों में स्नेह के साथ कहा 'जो तुम संस्कृत में लिखते हो विद्वानों के लिए वह साधारण है, मूर्खों की समझ में नहीं आता। सभी लेखों का यही हाल है। मैं भी घाटा कहाँ तक सहूँ। 'शारदा' बन्द करने की सोच रहा हूँ… । इससे अच्छा है तुम हिन्दी में लिखो। हिन्दी ही सर्वोपरि भाषा होने वाली है।' हृदय से निकली उनकी बातों ने जैसे मेरी आँखें खोल दी।"[1]

भाषा के सम्बन्ध में उनके विचार द्रष्टव्य हैं :

"जहाँ तक अभिव्यक्ति का प्रश्न है, मुझे उनके हिन्दी में समा जाने पर कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु प्रान्तीय शब्दों के अधिक संख्या में आ जाने पर भाषा का रूप विकृत और दुरूह हो जाएगा। मान लो, दक्षिण भारत के लोगों ने नए शब्द गढ़ कर भाषा में प्रयुक्त किए तो वे सब जगह समझे नहीं जाएँगे, दूसरे वे प्रान्तीय होने के कारण प्रचलित नहीं हो सकेंगे। भाषा में एक अलहदगी हो जाएगी। इस सम्बन्ध में हमें अंग्रेजी का अनुकरण करना चाहिए। जैसे संसार भर में बोली जाने पर भी अंग्रेजी में एकरूपता लक्षित होती है, उसी तरह हिन्दी में भी हमें उसकी एकरूपता की रक्षा करनी होगी। उसे रूपों की अलहदगी से बचाना होगा। उसे ऐसा रूप देना होगा, जिससे एक तो स्टैण्डर्ड बन सके, दूसरे सब प्रान्तों में आसानी से समझी जा सके। फिर भी यह मानना होगा, प्राचीन की अपेक्षा आज का साहित्यकार अपने और अपने साहित्य के प्रति जो अधिक जागरूक है, वह इसलिए कि उसका क्षेत्र अधिक व्यापक हो गया है। उसे अपने अस्तित्व को जहाँ सुरक्षित रखना है, वहाँ अपने साहित्य को भी। साहित्य के व्यवसाय रूप को ग्रहण कर लेने पर साहित्यकार से और आशा भी नहीं की जा सकती।"[2]

इसीलिए संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली ही उनकी भाषा है। आंचलिक उपन्यासों को छोडकर उनमें अनावश्यक कोई 'पन' नहीं है, अर्थात् न गुजरातीपन, न पूर्वीपन, न दिल्लीपन, न कोई और पन। टकसाली खड़ी बोली के उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

"मारने वाले से जिलाने वाले का अधिकार बड़ा होता है। इसीलिए, देखो, यह पक्षी कैसे दया भरी दृष्टि से मेरी ओर देख रहा है।"[3]

"स्वप्न पर विश्वास कौन करता है, स्वप्न की घटनाएँ स्वयं एक विश्वास के पृष्ठों पर लिखी जाकर मुझे जैसे अपनी ओर खींच रही हैं। हृदय मोम के समान बहुत कोमल पदार्थ है, जिस पर घटनाएँ और संस्कार मोहर की तरह अपना

[1] 'साहित्य के स्वर'—अपने सम्बन्ध में, पृ० ३।

[2] वही,—नवीन और प्राचीन, पृ० ५०–५२।

[3] 'मुक्तिदूत', पृ० १६।

प्रभाव डालते हैं।"[४]

"क्रान्तिकारी पत्थर होता है, उसके दिल नहीं होता। कोई भी भावुकता, कला, सौन्दर्य, प्रेम उसके लिए नहीं है। क्रान्तिकारी अपने उद्देश्य के लिए माता-पिता, भाई-बहन, पत्नी सभी की हत्या कर सकता है।"[५]

"हर बात अक्सर नई-सी लगा करती है मिस रीटा। जिन्दगी नदी का एक मीठा बहाव है, उसकी हर लहर सुख पाने के लिए किनारे की तरफ दौड़ती है, बढ़ते जाना ही उसकी खूबी है।"[६]

"तुम में कुछ गुण होते तो महाराज और प्रजा के प्रिय भाजन बनते। मैं तो अपनी प्रतिहिंसा पूर्ण करने के लिए भाई को भाई का शत्रु बनाकर आधा राज्य रूपी कार्य साधना चाहता हूँ।"[७]

"नाथ, मैं केवल इतना जानता हूँ कि असमान विभूति के छोटे लोग दुष्प्रकृति के कारण अपनी हीनता को आत्मदर्प के दर्पण में देखते ही व्याकुल हो उठते हैं।"[८]

भट्ट जी की भाषा का ओजस्वी रूप भी द्रष्टव्य है :

"आज विलास की चिता में वीरत्व की अग्नि जलाकर शत्रु को भस्म कर डालूँगा।"[९]

"वासना के मुख पर कलौंच लगाकर, लज्जा की कन्था फाड़कर आज मैं निकली हूँ, अमर जीवन के उन्नत वक्षस्थल पर नाचने···इन वृक्षों के पत्तों के समान समय के समीरण से उत्तेजित होकर मैं नाचूँगी।"[१०]

"मैं स्वयं युद्ध के लिए प्रस्थान करूँगा। आज क्षत्रियत्व के विकास द्वारा, धनुर्दण्ड की टंकार द्वारा, पराक्रम के प्रकाण्ड ताण्डव द्वारा अरबियों को नये शासन, नये विधान और नई युद्ध-कला का पाठ पढ़ाऊँगा।"[११]

"यदि समस्त संसार भी दाहर पर अनुचित दबाव डालकर उसके देश को छीनने की चेष्टा करेगा तो दाहर उसके दाँत खट्टे कर देगा। आर्य लोग व्यर्थ ही किसी से छेड़-छाड़ नहीं करते।"[१२]

इसके अतिरिक्त भट्ट जी ने सूक्तियों, मुहावरों, अलंकारों में उपमा, रूपक आदि के साथ प्रतीक शैली, नवीन उपमाओं की योजना तथा कहीं-कहीं

४ 'विद्रोहिणी अम्बा', पृ० १६।
५ 'क्रान्तिकारी', पहला दृश्य, पृ० ३५।
६ 'नया समाज', पृ० १०।
७ विक्रमादित्य', पृ० १७।
८ 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन', पृ० ६।
९ वही, पृ० ५२–५३।
१० वही, पृ० ५६।
११ वही, पृ० ८४।

व्यावहारिक भाषा में अंग्रेजी, उर्दू, तद्भव और देशज शब्दों के प्रयोग के साथ, संस्कृतगर्भित शैली में परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग किया है।

भट्ट जी की सूक्तियाँ

१. दुःख की छोटी बहिन का नाम चिन्ता है।[१३]
२. जीवन रथ के दो पहिए हैं—एक पुरानी स्मृति और दूसरा नई आशा।[१४]
३. मानवता का सबसे बड़ा लक्षण है दुःखी के ऊपर दया।[१५]
४. भ्रम का फैलाव आकाश-बेल के समान है जिसकी जड़ें नहीं होतीं।[१६]
५. न्याय बड़ा कठोर है। उसके आँखें नही हैं, हृदय नहीं है। वह मन्त्र है।[१७]
६. संसार कितना कटु है, कितना मीठा ?[१८]
७. आर्य लोग किसी निमन्त्रण को अस्वीकार नहीं करते।[१९]

मुहावरे

भट्ट जी के नाटकों की भाषा में गजब की वक्रता, विरोधाभास द्वारा अर्थ-सिद्धि, मुहावरों का अत्यन्त भाव-विधायक प्रयोग, अर्थशक्ति, और समाहार शक्ति का सुन्दर प्रयोग मिलता है जो भावमय और आकर्षक है।

नाटकों में

मानो खा जायेगी[२०], आग-पानी इकट्ठा होना[२१], आँखों में दूरी नापना[२२], प्राण कण्ठ को आना[२३] आदि आदि।

काव्य में

अरमानों के फूल खिलना[२४], सुबह सायं झाँकना[२५], खिचा हुआ-सा

[१३] 'विद्रोहिणी अम्बा', पृ० २४।
[१४] 'सगर विजय', पृ० १४।
[१५] वही, पृ० १८।
[१६] 'विक्रमादित्य', पृ० १८।
[१७] 'मुक्तिदूत', पृ० ५६।
[१८] वही, पृ० ६७।
[१९] 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन', पृ० १८।
[२०] 'अन्तहीन अन्त', पृ० १७।
[२१] 'कमला', पृ० २७।
[२२] 'नया समाज', पृ० २५।
[२३] वही, पृ० ६९।
[२४] 'मानसी'—प्रारम्भ, पृ० १।
[२५] वही, पृ० ३।

रहना[२६], मर्यादा उल्लंघन करना[२७], परम्परा का अंधड़[२८], एक साँस में पीना[२९], आशा के नीचे आँसू[३०], नि:शेष होना,[३१] ऊषा का ह्रास[३२], अमा का ग्रास[३३], आदि।

भट्ट जी ने व्याख्यानात्मक, दार्शनिक, विचारात्मक, व्यंग्यात्मक, प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग बड़ी सफलता के साथ किया है।

व्याख्यानात्मक

"मैं इस्लाम के विपरीत किसी चीज को संसार में नहीं देखना चाहता। क्या रसूलिल्लाह ने कुरान शरीफ के पाँचवें सूरा में शराब के विरुद्ध मुसलमानों को उपदेश नही दिया है। खुदा ने साफ कहा है कि, 'ऐ मुसलमानो, शराब शैतान की बनाई हुई चीज है, इसे छोड़ दो।' "[३४]

"इन दुष्ट अरबियों ने उल्टा हमें दोषी ठहराकर लड़ाई के लिए उभारा है, मृत्यु को बुलाने का प्रयास किया है। इस समय आवश्यकता है कि हम सदा के लिए इन अरबियों का नाश कर दें। हे वीर लोगो, मुझे विश्वास है कि सिन्ध के एक-एक कण से एक-एक वीर उठकर अपने जयनाद से सम्पूर्ण शत्रुमण्डल को कँपा देगा।"[३५]

"पिता के पापों को उसकी सन्तान ही धो सकती है। हमें नये समाज का निर्माण करना है।"[३६]

"अरी पगली, अतृप्ति एक नशा है, क्रिया उसका साधन है, प्रेम उसका परिणाम है, प्रेम की अन्तिम गति ही तो अभिलाषा है। जिस प्रकार अखण्ड प्रकाश में छाया छिपी है, अनन्त सागर में एक-एक कण की सत्ता है उसी प्रकार जीवन की अनन्त सूक्ष्म ग्रतियों में अभिलाषा है। मद क्या है, उत्तेजना ही तो है। विवेक की उत्तेजना विद्या का मद है और हृदय की उत्तेजना प्रेम का मद।"[३७]

दार्शनिक

"अनुराग आत्मा का गुण है। आत्मा इस संसार में व्याप्त है। इसीलिए

[२६] वही, पृ० १०।
[२७] 'कौन्तेय कथा', पृ० ६।
[२८] वही, पृ० २०।
[२९] 'अमृत और विष,' पृ० १।
[३०] वही, पृ० ९।
[३१] 'तक्षशिला',—पंचम स्तर, पृ० १३५।
[३२] 'पूर्वापर', पृ० १८।
[३३] वही, पृ० १८।
[३४] 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन', पृ० १५।
[३५] वही, २६ पृ०।
[३६] 'नया समाज', पृ० ६९।
[३७] 'विक्रमादित्य', पृ० २९।

अनुराग प्रकृति के हृदय मे जागृत होकर ब्रह्माण्ड में अपना गुण फैलाता है। यही कारण है लताएँ तरुओं से लिपटी हैं, कलियाँ पवन से हँसी करती हैं, भास्कर ऊषा के पीछे दौड़ते है।"[३८]

"धर्म का अर्थ है उन साधनो का प्रयोग जिनके द्वारा मनुष्य की आत्म-शुद्धि हो, उसे सरलता से जन्म-मरण के बन्धन से अवकाश मिल जाय।"[३९]

"हिंसा मनुष्य की परम शत्रु है, उसका आहार अपने को मत बनने दो।"[४०]

"मैने प्रत्येक प्राणी को आत्मज्ञान के लिए पिपासित ही देखा है। प्रत्येक अज्ञान पर उसे प्रकाश के लिए छटपटाते देखा है।"[४१]

"यह संसार है। यहाँ सभी तरह की वस्तुएँ है। कौन वस्तु अच्छी है कौन बुरी? यह देखने, जानने वाले की रुचि पर निर्भर है। जो पत्थर किसी के लगकर चोट पहुँचा सकता है वही गुफा बनाने के काम भी तो आता है। जिस जल मे आदमी डूब जाता है वही सम्पूर्ण प्रकृति को जीवन देता है।"[४२]

विचारात्मक

"कमजोरी मान लेने पर भी विश्वास दृढ़ नहीं रहता।"[४३]

"संसार की प्रवृत्ति तामस है। साधना का फल तामस नही होना चाहिए।"[४४]

"नहीं, ब्राह्मण। पर यह मैं कैसे कहूँ कि यह सत्य नही होगा।"[४५]

"सब गए? बिना किसी आदमी के, बिना सवारी के मैं कैसे जाऊँ? जमींदारी गई तो क्या मैं पैदल चलूँगा? क्या करूँ, कैसे करूँ? ओः।"[४६]

"इतनी बार पिटा, पर उफ तक नही की, बोला तक नही, कभी-कभी अच्छे घर के लड़कों को भी नौकरी करनी पड़ती है शायद, शायद···।"[४७]

व्यंग्यात्मक

"आप मुझे मेरे हाल पर छोड़ दें तो मैं शाम तक ठीक हो जाऊँगा।"[४८]

"अशुद्ध, मन शुद्ध तो सब शुद्ध। एक बात है। खानवाल के आलू खूब

[३८] वही, पृ० ३०।
[३९] 'शक-विजय', पृ० १७।
[४०] वही, पृ० २१।
[४१] वही, पृ० ४७।
[४२] 'आदिम युग और अन्य नाटक', पृ० १३।
[४३] 'क्रान्तिकारी', पृ० ५।
[४४] 'विद्रोहिणी अम्बा', पृ० ६३।
[४५] वही, पृ० १८।
[४६] 'नया समाज', पृ० ४२।
[४७] वही, पृ० ५१।
[४८] 'सात प्रहसन'—बीमार का इलाज, पृ० १७।

चटपटे थे। इससे तो वही आलू की चाट हो। पर मिर्च तो नहीं खानी चाहिये। तामसिक भोजन है न। ओ३म्, ओ३म्।"[४६]

"इस मकान की दीवारों से आग निकल रही है। इसकी हवा में जहर भरा है जहर।"[५०]

"मेरा निर्णय है कि समाज के दोष से और व्यक्ति के ही दोष से अच्छा मनुष्य भी बिगड़ जाता है।"[५१]

प्रतीकात्मक

"यह आम के वृक्ष के मूल को भेदन करके वट अंकुरित हो रहा है। निश्चय ही यह आम के वृक्ष की मृत्यु की सूचना दे रहा है।"[५२]

"नहीं जाना था कि पर्वतों की चट्टानें भी पानी पड़ते ही बालू की तरह बैठ जायेंगी, समुद्र का प्रकाशस्तम्भ नदी का एक झोंका भी न सहार सकेगा।"[५३]

"जगत् के काम चलाने के लिए दो भुजाओं के समान, 'सत्य शिवं' की सुन्दर भावना के समान, द्वन्द्वमय संसार की दो आँखें, स्वच्छ आकाश में शुक्र नक्षत्र और चन्द्रमा के पीछे रहने वाले तारा के समान चन्द्रलेखा और अनंगमुद्रा जीवन की दोनों दिशाओं में आदि से अन्त तक विराट् रूप से प्रकाशित रहेंगी।"[५४]

भट्ट जी ने उपमा, रूपक, नई उपमाएँ, अपह्नुति, समासोक्ति, उत्प्रेक्षा, वीप्सा आदि अलकारों का प्रयोग किया है।

उपमा

"दु:ख का अन्तिम उद्गार रुदन है जैसे प्राणों का अन्तिम सुख ह्रास।"[५५]

"जीवन एक बुलबुले की तरह, फेन की तरह है।"[५६]

"बुलबुले की तरह आशाएँ उठकर मुरझा गई हैं।"[५७]

रूपक

"मेरे हृदय का मोती टूट-फूट कर बिखर गया है।"[५८]

४६ 'समस्या का अन्त'—दो अतिथि, पृ० १५३।
५० 'नया समाज', पृ० ६६।
५१ 'अन्तहीन अन्त', पृ० ८८।
५२ 'शक विजय', पृ० ३६।
५३ 'सगर विजय', पृ० १०६।
५४ 'विक्रमादित्य', पृ० ८६।
५५ 'सगर विजय', पृ० ८०।
५६ वही, पृ० १०३।
५७ वही, पृ० १०६।
५८ वही, पृ० ५६।

"ईर्ष्या के मेघों मे प्रेरणा की विद्युत छिप गई है।"[५९]

"जीवन की नाव चलाने में एक दूसरे की सहायता चाहता है।"[६०]

"क्रोध के समान लाली लिये कपोल, कामदेव के प्रासाद में पहुँचने के लिए आगे खडी प्रतिहारी की तरह ठोड़ी, सुकुमारता के समान पतले और कोमल ओष्ठ।"[६१]

नई उपमाएँ

"पलाश को अपने निर्गन्ध पुष्प पर भी गर्व होता है।"[६२]

"वह तो डर की तरह भयावनी, दुःख की तरह निर्बल और प्रतिज्ञा की तरह बेदर्द निकली।"[६३]

"पाप के पर्वत के छः टुकड़े होकर ही रहेंगे। अहंकार के हृदय रोकर, फूटकर, गलकर बह जायेंगे।"[६४]

अपह्नुति

"छातियों से भूधरों की
नद नहीं पीड़ा बही है।
उषा के आरक्त मुख में
नाश निर्झरिणी बही है।"[६५]

समासोक्ति

"कमल जल की सतह से उठ
चाहता आकाश छूना
किन्तु हिम का वज्र गिरकर
कर रहा सब हास सूना।"[६६]

उत्प्रेक्षा

"निर्झरी उन्मुक्त होकर
चूमने मानो चली नभ।"[६७]

५९ वही, पृ० ४८।
६० 'पर्दे के पीछे', पृ० ९६।
६१ 'शक विजय', पृ० ३५।
६२ 'विक्रमादित्य', पृ० ३४।
६३ 'सगर विजय', पृ० ६५।
६४ वही, पृ० ५९।
६५ 'विसर्जन'—मानव के प्रति, पृ० ८८।
६६ वही—उन्मुक्त, पृ० १०।
६७ वही—भ्रान्ति, पृ० ४६।

वीप्सा

"ये सुमन हँस हँस मरण को
वरण करने चल दिए हैं
पंखुड़ी के धड़कते दिल तो
किसी ने मल दिए हैं।"[६८]

भट्ट जी ने अपनी भाषा मे अन्य अलंकारों का भी प्रयोग किया है।

अंग्रेजी के शब्द

एवरी थिग इज फेयर इन लव एण्ड वार।[६९]

डोण्ट बादर एबाउट माई फादर।[७०]

स्पीक इन इंगलिश,[७१] हैव यू लास्ट योर सेन्स आर व्हाट।[७२] हस्बैन्ड,[७३] मूड,[७४] हैवी टी,[७५] कण्ट्रैक्ट,[७६] स्टूपिड-नॉन्सेंस,[७७] हलो, हाऊ गुड आफ यू।[७८] हाऊ ब्यूटीफुल,[७९] रीहेबीलिटेशन,[८०] मीटिंग,[८१] आदि आदि।

उर्दू के शब्द

बेशक,[८२] सरकार,[८३] हुजूर,[८४] इशारा,[८५] शराबी,[८६] दुहाई है, दुहाई है,

६८ वही, पृ० ४७।
६९ 'नया समाज', पृ० १२।
७० वही, पृ० १२।
७१ वही, पृ० १५।
७२ वही, पृ० २५।
७३ 'पार्वती', पृ० १८।
७४ 'समस्या का अन्त'—आत्मदान, पृ० ६९।
७५ वही, पृ० ६९।
७६ वही, पृ० ७०।
७७ वही, पृ० ७२।
७८ वही, पृ० ७७।
७९ वही, पृ० ७८।
८० वही, पृ० ७८।
८१ वही, पृ० ७८।
८२ 'धूमशिखा', पृ० १३१।
८३ 'पार्वती', पृ० ४।
८४ वही, पृ० ४।
८५ 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन', पृ० १४।
८६ वही, पृ० १४।

लूट लिया,[८७] मार डाला, नज़ारा;[८८] आदि।

अरबी के शब्द

ख़लीफ़ा,[८६] नापाक,[६०] तूफ़ान।[६१]

१. खुदा ने साफ़ कहा है—ऐ मुसलमानो, शराब शैतान की बनाई हुई चीज है।[६२]

२. किस तरह लोग मजहब की पाबन्दी कर रहे है।[६३]

फ़ारसी के शब्द

जोंक,[६४] तिजोरियाँ,[६५] डेगची,[६६] बागची,[६७] अम,[६८] इत्तला,[६६] खैबर फाटक,[१००] जिन्दगी,[१०१] आदि।

तद्भव शब्द

"हम भी पाँच महीने से हियाँ नौकरी करता। हम चक्रवर्ती का नौकरी किया, बहचार का नौकरी किया। आशाम मे नौकरी किया। अब बम्बई मे।"[१०२]

"लेड बो तो हमारे बिना कहेइ घुसि आई।"[१०३]

"ठैरो बार ठैरो, हम कहे तब अय्यो।"[१०४]

देशज शब्द

"मेम साब ! का करै याद नहीं रहत। अब सोऊ याद करेंगे। कोऊ आवे

८७ वही, पृ० १५।
८८ वही, पृ० १०८।
८६ वही, पृ० १४।
६० वही, पृ० १०३।
६१ वही, पृ० १०८।
६२ वही, पृ० १५।
६३ वही, पृ० १४।
६४ 'धूमशिखा', पृ० ८१।
६५ वही, पृ० ८२।
६६ 'आज का आदमी', पृ० २५।
६७ वही, पृ० ५२।
६८ 'सात प्रहसन'—दस हजार, पृ० ६७।
६६ वही, पृ० ६७।
१०० वही, पृ० ६७।
१०१ वही, पृष्ठ ६६।
१०२ 'पर्दे के पीछे', पृ० ५४।
१०३ 'पार्वती', पृ० ५।
१०४ वही, पृ० ५।

तो पहले हम खबर करें फिर बुलाय लावें।"[१०५]

"सुनो बीबी जी, हम और कछू नई कैंगे। तुमें नौकरी करानी होय तो कराओ। नई तो जवाब दै दो। नौकरी के तोड़ा नई है।"[१०६]

"जे इडिंग-पिडिंग हम नहीं जानत। हम तो बीबी जी कहेंगे। रखनो हो रखो नई तो हम चले।"[१०७]

तत्सम-बहुला भाषा

भट्ट जी ने ऐतिहासिक नाटकों में संस्कृतगर्भित भाषा का प्रयोग किया है :

"हम सुख-दुःख के कार्य-कलाप रूपी मार्ग को तय करते हैं, परन्तु इस जीवन मे सुख की पराकाष्ठा रूपी दृष्टिकोण के रथ पर बैठे हुए अकर्त्तव्य के स्वकल्पित चाबुक लेकर लालसा के घोड़ों को निज बुद्धिजन्य विवेक की लगाम से अनवरत दौड़ाते चले जाते हैं।"[१०८]

"कहीं सत्य रूप से स्पष्ट, कहीं असत्य रूप से अस्थिर, कहीं कोमलागिनी वीरांगना के समान पलमयी, समय के उलट-फेर में, हिंसा की उग्रता में, दयालुता के आँचल में, स्वार्थ के उत्सर्ग में, उदारता की ओट में, धनरत्न के प्रलोभन में राज-नीति अपनी कर्म-साधना में सन्नद्ध रहती है।"[१०९]

"यह भी मनुष्य की प्रकृति है जो दूसरे के दुःख को देखकर वह द्रवित हो उठता है। इसीलिए मनुष्य निर्लेप है। शत्रुता-मित्रता आपेक्षिक गुण हैं। मनुष्य, तू महान् है।"[११०]

संस्कृत प्रयोग

"स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।"[१११]
"कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
"अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥"[११२]
"विषस्य विषमौषधम्।"[११३]
"जीवो जीवस्य जीवनम्।"[११४]

[१०५] वही, पृ० २।
[१०६] वही, पृ० ५।
[१०७] वही, पृ० ४।
[१०८] 'विक्रमादित्य,' पृ० २१।
[१०९] 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन', पृ० ६।
[११०] 'सगर-विजय', पृ० १३।
[१११] 'विद्रोहिणी अम्बा', पृ० ९१।
[११२] वही, पृ० ९९।
[११३] 'विक्रमादित्य', पृ० १३।
[११४] 'मुक्तिदूत', पृ० ९।

"ऋते ज्ञानान्नमुक्ति।"[११५]

परिनिष्ठित भाषा

"बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य का मनुष्य के लिए सदा से महत्त्व रहा है। किन्तु सौन्दर्य बोध की अपेक्षा बोध की क्षमता ही मनुष्य की परिष्कृति का लक्षण है।"[११६]

"गई स्पर्द्धा, प्रतिहिंसा का इतना उग्र रूप—कभी न देखा था। गई, साँपिनी-सी, फुफकारती, चोट खाई सिहनी सी।...ओह।"[११७]

"मेरा प्रकाश बुझ गया, मेरे जीवन का विश्वास घुट रहा है। हाय मैं क्या करूँ ?"[११८]

आदर्श वाक्य

१. कृतज्ञता का बन्धन अमोघ है।[११९]
२. सैनिक का जीवन मृत्यु की भूमिका है।[१२०]
३. जीवन प्रयोगों की माता है।[१२१]
४. प्रेम का दूसरा नाम जीवन है।[१२२]
५. विवेक मनुष्य के दु:ख को जलाने वाला अमोघ बाण है।[१२३]

कुछ अमर वाक्य

१. युद्ध से कूटनीति ही अधिक विश्वसनीय है।[१२४]
२. अज्ञान ही दु:ख का कारण है।[१२५]
३. मद पतन की खाई की पहली सीढी है।[१२६]
४. सुख-दु:ख तो जीवन का लक्षण है।[१२७]

११५ 'मुक्तिदूत', पृ० ७१।
११६ 'पर्दे के पीछे', पृ० ९।
११७ 'सगर-विजय', पृ० ५१।
११८ वही, पृ० २।
११९ 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन', पृ० ५८।
१२० 'शक-विजय', पृ० ६०।
१२१ 'नया समाज', पृ० १२।
१२२ 'अन्तहीन अन्त', पृ० १५।
१२३ 'सगर-विजय', पृ० ७४।
१२४ 'विक्रमादित्य', पृ० १५।
१२५ 'मुक्तिदूत', पृ० ५१।
१२६ 'सगर-विजय', पृ० २१।
१२७ वही, पृ० ७२।

५. कुलीनता की पहचान शील से होती है।[१२८]
६. ईश्वर पराकाष्ठा का नाम है।[१२९]
७. मनुष्य का गौरव बड़ों को बड़ा मानने में है।[१३०]

निष्कर्ष

वस्तुतः भट्ट जी भाषा के डिक्टेटर थे। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर मूर्धाभिषिक्त करने के लिए नितान्त आवश्यक है कि साहित्यकार उसमें सभी भाषाओं के शब्दों का समुचित प्रयोग करे और भाषा के स्वरूप और सौन्दर्य को भी अक्षुण्ण रखे। उसका यह स्वरूप ही सम्पूर्ण राष्ट्र को अपनी ओर आकर्षित करने मे समर्थ होगा और भाषा सम्बन्धी विवाद भी प्रायः शान्त हो जायेंगे। भट्ट जी ने इस सम्बन्ध में सराहनीय और श्लाघनीय कार्य किया। उन्होंने अन्य भाषाओं के शब्दों को भी अपनाया और हिन्दी की चारुता और परिष्कृति को भी अक्षुण्ण रखा। उनकी भाषा भावों की सरिता है। इसीलिए अध्ययन की चारुता, अनुभव की गहराई, ज्ञान का उन्मेष वहाँ मंगलकारी बना हुआ है। भट्ट जी ने जीवन-दर्शन, सत्य के प्रति निष्ठा, उदात्त भावों की गरिमा और प्रवाहमयी अर्थगर्भित शैली का अनूठापन, सांस्कृतिक वैभव, बाह्य स्रोत के साथ अन्तः स्रोत की तीव्रता, जीवन और मृत्यु, गति और विरति, रूप और अरूप, लघु और स्थूल सभी उन्होंने संस्कृत से लेकर हिन्दी को दिया है। मूलतः भट्ट जी संस्कृत के पण्डित और गम्भीर अध्येता थे। इसी-लिए उनकी भाषा पर संस्कृत का प्रभाव किसी न किसी रूप में परिलक्षित हो रहा है। इसके अतिरिक्त शब्द और वाक्य उनकी अभिव्यक्ति के पीछे-पीछे चलते हुए दिखाई देते हैं। इसीलिए हिन्दी परिष्कार, भाव-गाम्भीर्य, रचना-वैविध्य और हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा का रूप देने में उनका विशिष्ट योगदान है, जो सदैव आदर एवं महत्त्व की दृष्टि से देखा जायेगा।

१२८ 'पार्वती', पृ० १०।
१२९ 'पर्दे के पीछे', पृ० १८।
१३० वही, पृ० १८।

अष्टम अध्याय

भट्ट जी की काव्य कृतियों का मूल्यांकन

भट्ट जी रस-सिद्ध कवि थे। कवि की क्रान्त दृष्टि को ही उन्होंने अपने समस्त साहित्य में संक्रमित कर रचना की है। भट्ट जी युग-द्रष्टा थे। इसीलिए उन्होंने प्रत्येक स्थिति को खुली आँखों से देखा है और खुले मस्तिष्क से सहानुभूति-पूर्वक सोचा है, चाहे वह बात राष्ट्रीयता से सम्बन्धित हो चाहे मानवता से अथवा युद्ध पक्ष की हो; चाहे जीवन की विभीषिकाओं और झंझावातों से क्यों न सम्बन्धित हो। इसीलिए व्यष्टि को समष्टि मे लीन और जन-जागृति की स्पृहणीय आकाक्षा वाले कवि की मनीषा परम्पराओं के बन्धन तोड़ कर चली है। अस्तु उनका काव्य एक बहती हुई स्वच्छन्द काव्य धारा है जिसमें हमें विगत पचास वर्षों की सभी काव्य प्रवृत्तियाँ और युग की अन्य लहरें क्रीड़ा करती हुई दृष्टिगोचर होती है। इस सम्बन्ध में भट्ट जी ने स्वयं लिखा है—"वस्तुत: बात यह है कि काव्य या साहित्य बाह्य जगत् की अन्तर्सृष्टि है जो तत्कालीन जीवन के वातावरण और मूल्य का निर्देश करती है। वह मनुष्य और उसके भौतिक सामाजिक रूपों का प्रतीक ग्रहण करके जीवन की व्याख्या करती है। इसीलिए काव्य के मूल्य भी बदलते रहते हैं और इन्हीं मूल्यों के कारण हमे सदा नये साहित्यकारो की आवश्यकता पड़ती रहती है।"[1]

भट्ट जी की हमें बारह काव्य कृतियाँ प्राप्य है—"तक्षशिला, राका, विसर्जन, मानसी, अमृत और विष, युगदीप, यथार्थ और कल्पना, कौन्तेय कथा, कणिका, अन्तर्मन्थन, चार चित्र, मुझ मे जो शेष है।

इन कृतियों में भट्ट जी ने किसी न किसी रूप में मानवीय करुणा को अभिव्यक्त करने का श्लाघ्य एव स्तुत्य प्रयास किया है। करुणा भाव-सृष्टि का सबसे मोहक और आकर्षक भावकण है। भट्ट जी ने इस भाव को अभिव्यक्त करने का सर्वत्र प्रयास किया है। यथा—

१ 'साहित्य के स्वर'—काव्य का मूल्याकन, पृ० ३६।

"क्या कोरी कल्पना विश्व है
जीना मरना केवल सपना
मिथ्या क्या, सब कुछ मिथ्या है
कोई नहीं पराया अपना ।"[२]

भट्ट जी ने काव्य के सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं—"काव्य-रचना फैशन नहीं है, पेशा भी नहीं है ; वह जीवन की सार्वजनीन अभिव्यक्ति है जिसकी सामर्थ्य जीवन के बाह्य और आभ्यन्तर चेतन को प्रफुल्ल करना है। वह समग्र बोध की कविता का लक्ष्य है। उस लक्ष्य के प्रति वास्तविक दृष्टि ही काव्य का महत्त्व है। अभाव और सघर्षमय जीवन मे अभाव को जगाकर वास्तविकता की ओर उन्मुख करना तथा सुखी जीवन में मनुष्य के भीतर बसे हुए, आनन्दमय रस को जाग्रत करना—यही कवि का लक्ष्य रहा है। यह समझना भूल न होगी कि काव्य केवल बाह्य चेतन ज्ञान का ही प्रतिनिधि नहीं है, वह तो समग्र को अपने में समेटकर चलता है क्योंकि उसकी सीमाये मानव के भीतर-बाहर दोनों को देखती हैं। ज्ञान-राशि मात्र का तादात्म्य उसकी अनुवृत्ति को छूता है। इसीलिए काव्य की दृष्टि सीमित और बद्ध नहीं है। जीवन के रोष, आक्रोश के साथ वह अन्तर की रसमयी अभिव्यक्ति भी है।"[३]

वास्तव में कवि मनुष्य के भीतर और प्रकृति के अन्तराल में जो जीवन के लिए उपादेय है, उसे ग्रहण करके लोक-मानस को सरस एवं समृद्ध करने के लिए उन्मुक्त मन से बाँटता है। कवि भ्रमर सदृश है। पर अन्तर केवल इतना ही है कि भौंरा रस का संग्रह अपने लिए करता है, जबकि कवि दूसरे को भी उन्मुक्तता के साथ रस का दान देता है। जिस कवि में यह दानवीरता होगी वह कवि भी उतना ही ऊँचा और सफल होगा। भट्ट जी के काव्य में यह देय की भावना अत्यधिक बलवती है। उनका शिव उन्हें सर्वत्र मानव की मंगल कामना करने के लिए जिज्ञासु बनाये हुए है। यथा—

"एक भूख लेकर यह आया
स्वयं मिटा पर वह न मिटी है
एक प्यास लेकर वह आया
स्वयं बुझा पर वह न बुझी है।"[४]

भट्ट जी ने 'तक्षशिला' में इतिहास की पृष्ठभूमि पर भारत के अतीत की झाँकी प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। इसमें कवि को 'तक्षशिला' का एक-एक खण्डहर भावविह्वल बनाये हुए है। इस सम्बन्ध में कवि ने स्वयं लिखा है—"तक्षशिला के दर्शन से मुझे कितना आनन्द, औत्सुक्य, कितना विषाद हुआ उसका यह जड़

२ 'मानसी'—जिज्ञासा, पृ० ७९।
३ 'साहित्य के स्वर'—काव्य का मूल्यांकन, पृ० ३९।
४ 'मानसी'—समन्वय, पृ० ३९।

लेखनी वर्णन नहीं कर सकती। दिन भर देखने और एक-एक जगह देखने के बाद मैं इतना तन्मय हो गया कि अपनी सुध-बुध भी न रही। रात को मेरे सामने वे ही खण्डहर, वे ही मूर्तियाँ झूमती-सी दिखाई देतीं। इतनी तन्मयता, इतनी तल्लीनता मुझे अपने जीवन में कभी नहीं हुई।"[५]

कवि की अभिव्यक्ति तत्कालीन भय और घुटन से आक्रान्त होकर अपने दुर्बल स्वरूप के साथ 'राका' में प्रतिफलित हो रही है। निराशा, घोर वेदना के जीवन से पीड़ित समाज का जीवन भी डरा और सहमा हुआ था :

"सो जाने को जागा है मेरा जीवन मतवाला।
खाली करने को ही साकी भर देती है प्याला।"[६]

भट्ट जी की कविता का वर्ण्य-विषय चाहे कुछ रहा हो, पर मानव की पीड़ा उनकी आत्मा को सदैव झकझोरती रही है। इस सम्बन्ध में भट्ट जी का दृष्टिकोण द्रष्टव्य है—

"मानववादी भावना के विश्वरूप मे ही हमारा साहित्य प्रफुल्ल हो सकता है। तभी युद्ध भी रुक सकते हैं। यह मानववादी भावना क्या वस्तु है? क्या उसका कोई स्थिर स्वरूप या उसका कोई मनोवैज्ञानिक रूप भी है? मेरा उत्तर यह है कि मानवतावाद प्रमुख रूप से 'लिव एण्ड लैट लिव' (जिओ और जीने दो) के मोटे सिद्धान्त पर स्थिर है।"[७]

इसीलिए उनके काव्य मे एक सवेदना है और वह है मानव की पीड़ा। यह मानव की पीड़ा ही उनके समस्त साहित्य मे किसी न किसी रूप मे बोल रही है। मानव के प्रति संवेदना और सहानुभूति रखने के कारण उनके काव्य का सम्प्रेषण पक्ष छायावादी कवियो की अपेक्षा सशक्त है। 'मानसी' मे यही छाय्यावादी शैली देखने को मिलती है पर 'विसर्जन' में छायावादी शैली का प्रेम, सौन्दर्य और शिल्प भी उपलब्ध होता है :

"याद, न जिसमें हृदय कहीं है
चाह नहीं है, प्राण नहीं है
केवल सुख-दुख आशाओं का
पंजर है, परिधान नहीं है
नर आशा-प्रासाद बनाकर
ऊपर-ऊपर चढ़ता जाता
अभिलाषा की सीढ़ी पर चढ़
मृगतृष्णा में बढ़ता जाता।"[८]

५ 'तक्षशिला'—भूमिका, पृ० ६।
६ 'राका'—विदा, पृ० ६६।
७ 'साहित्य के स्वर'—साहित्य के प्रयोग और उनकी दृष्टि, पृ० २२।
८ 'मानसी'—जिज्ञासा, पृ० ७७।

'विसर्जन' में :

"मेरे स्वर में बोल रहा है कौन
मिलाकर अपना स्वर ही ?
लज्जित स्मिति की तरल लहर
पर कौन खेलता छहर-छहर री ?
मुझ में आकर क्या पाया है
इसको तो यह ही जाने
मैंने तो सब कुछ पाया है
भूल-भूल अपनापन सारा ॥"[९]

कवि ने 'मानसी' में जीवन की परिणति का कितना सुन्दर चित्र खींचा है :

"देखा बहुत जगत् का लेखा
घूम-घूम कर अन्तर देखा
सृजन, विसर्जन, पालन देखा
क्षण-क्षण का परिवर्तन देखा।
कलि को कुसुमित होते देखा
और कुसुम को झड़ते देखा
ऋतु बसन्त का अट्टहास सुन
पतझड़ को झड़ पड़ते देखा ॥"[१०]

भट्ट जी ने मानव को समय की गति के अनुसार आगे बढ़ने के लिए भी अनुरोध किया है :

"निशा में तुझे चाँद ने पथ दिखाया
प्रलय मेघ ने बिजलियों को बुलाया
थके प्राण को सिंह का स्वर सुनाया
धरा ने बिछा दिल, नगों ने उठा सिर–
बनाया तुझे तू नया जग बना चल
समय के सभी साथ जीवन बदलते
समय को बदलता हुआ तू चला चल ॥"[११]

कवि की आत्मा को द्वितीय महायुद्ध के बाह्य संघर्ष ने भी तीव्र प्रेरणा दी है। इसीलिए 'विष और अमृत' में संगृहीत कविताएँ युद्ध की विभीषिका लिये हुए हैं। इन कविताओं में भट्ट जी ने युद्ध को नवीन उन्मेष, नवीन संघर्ष और नवीन चेतना मानकर अंकित किया है। यथा :

९ 'विसर्जन'—कवि का आत्मसमर्पण, पृ० १–२।
१० 'मानसी'—परिणति, पृ० ५२।
११ वही—गीत, पृ० ८७–८८।

"इसकी उमंग के सब बन्धन
यौवन ने चितवन से खोले,
इसके प्राणों के स्वप्न गए
बिजली के हासों से घोले।
इसने मेघों के बालों का
निज यौवन से शृंगार किया,
इसने सागर की लहरों से
अपनी उमंग को प्यार किया।
इसने हिम-गिरि के शिखरों को
चुम्बित निज आशा से जाना
इसने तारों के गानों को
अपने गानों से पहचाना।।"[१२]

इसके पश्चात् कवि ने साधक और उपासक के रूप में मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की रट भी लगाई है। उनकी इस रट के स्वर हमे भट्ट जी के यथार्थ और कल्पना में सुनाई पड़ते हैं। इस सम्बन्ध में भट्ट जी ने स्वयं लिखा है :

"निराशा का अन्धकार क्षीण होने पर कभी-कभी मैं मनुष्य की अटूट और अदम्य निष्ठा में विश्वास करने लगता। उसके व्यापक चैतन्य में, ऊर्जस्वित आस्था में, एक सम्बल मिला। प्रकृति की समग्र चेतना का समर्पण, उसका सौन्दर्य, उसकी उपयोगिता केवल मनुष्य के लिए है। इसका आभास मुझे जब-तब मिलने लगा। व्यष्टि और समष्टि के रूप में मानव की अक्षुण्ण शक्ति भी समझ में आई। सामाजिक दृष्टि से मार्क्सवाद से प्रभावित हुआ और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ने मेरी चेतना पर एक गहरी छाप छोड़ी।"[१३]

भला यह भारतीय संस्कृति का अनन्य पुजारी और सगुणोपासक मार्क्स का अनुयायी कैसे बन सकता था? अतः इन्हें उनकी अर्थ-योजना तो जँची पर शेष सब त्याज्य लगा। मानव को सर्वोपरि महत्ता देने वाले भट्ट जी ने स्वयं लिखा है :

"मेरा विचार है, मनुष्य की इच्छा, रुचि, स्वभाव, क्रिया का सांगोपांग प्राणद फुक्फुटन साहित्य है और अमूर्त उद्‌गार काव्य का विषय बन सकता है। उसके हर्ष-शोक, विलास, प्रेम में काव्य का वास्तविक चमत्कार है। अतः मनुष्य जीवन से ही विराट् काव्य की उत्पत्ति हुई है।"[१४]

भट्ट जी ने मानव से प्रगतिशील तत्वों को स्वीकार करने का आग्रह अधिकतर कृतियों में किया है। इसी कारण उनका काव्य एक रसधारा में नहीं प्रवाहित हुआ है। यही कारण है कि सभी शैलियों के गीत उनके काव्य में मिल जाते हैं।

[१२] 'अमृत और विष'—सैनिक की मृत्युशैय्या पर, पृ० १२।
[१३] 'मुझ में जो शेष है'—आत्मविश्लेषण, पृ० ख–ग।
[१४] वही—आत्मविश्लेषण, पृ० ङ।

क्या छायावादी शैली, प्रगतिवादी गीत और प्रकृति के विविध रूपों के चित्र, सभी उनकी काव्य-सरिता में उन्मुक्तता से क्रीड़ा कर रहे हैं। पर प्रगतिवादी काव्य में वे यथार्थ की भूमि पर खड़े हैं। अतः भट्ट जी ने भी लिखा है :

"जब हम देखते हैं कि पुतलीघर में काम करने के लिए जीने वाला मजदूर जरा-सी असावधानी से मशीन की लपेट में आकर बिना आह किये समाप्त हो जाता है तब निश्चय ही मनुष्य के जीवन की अस्थिरता एक भयानक विस्मय उत्पन्न कर देती है। काव्यकार आज इसी प्रकार का मूल्यांकन करने के लिए विवश हो गया है, इसीलिए उसकी दृष्टि में यथार्थता, वास्तविकता और प्रतीक का सामजस्य जागरूक हो उठा है।"[१५]

इसीलिए उनका काव्य समाज के उस वर्ग की पुकार है जो शोषित और सन्तप्त रूप मे पीड़ा की कराहट और विषम वेदना की आह का बोझ ढो रहा है। मध्यवर्गीय लोगों के प्रति उनकी गहरी संवेदना थी जिसके स्वर उनकी कविताओं में भरे पड़े हैं। मानव की दुर्बलता ने तो उन्हें और अधिक दुर्बल बना रखा था :

"अपने से पर मैं रहा हारता आया,
अपने पर अपना अहं वारता आया।
अपने मन की कमजोरी से रोता हूँ,
अपने कन्धे पर निज कलंक ढोता हूँ।
मेरी अपने पर एक विजय है बाकी,
वह घूर रही है मौत मुझे एकाकी।।"[१६]

भट्ट जी ने काव्य के क्षेत्र में मुक्त छन्द, अतुकान्त वृत्त और गद्यात्मक शैली को भी अपनाया है। संक्षेप मे उन्होंने नई कविता से भी प्रेम प्रकट किया है। पर इन्हें नई कविता की बौद्धिकता पसन्द नही है। इसलिए उन्होंने नई कविता के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किए है :

"वह बौद्धिक है, बुद्धि और विचार-प्रधान। वह आज के युग की आवश्यकता है। मैंने भी बुद्धि-प्रधान कविताएँ लिखी हैं। लेकिन बुद्धि तत्व ही कविता का अन्तिम तत्व नहीं है। अतः आज की बौद्धिक कविता भी पूर्ण नहीं मानी जा सकती। यह भी प्रयोग ही है।"[१७]

इसीलिए भट्ट जी की कविता नई होते हुए भी पुरानी है, क्योंकि उसमें सर्वत्र रस की धारा प्रवहमान है। यथा

"ईर्ष्या को, छल को,
लील कर निबल को,

१५ 'साहित्य के स्वर'—साहित्यकार का दायित्व, पृ० ३८।

१६ 'इत्यादि'—मृत्युंजय, पृ० २१।

१७ 'उदयशंकर भट्ट : व्यक्ति और साहित्यकार'—भट्ट जी की साहित्यिक मान्यताएँ,

कपट को, हिंसा को,
बन्धु कह पुकारा है।
काटते है मित्र को जहरीले दाँत से,
मित्रता-शत्रुता स्वार्थ अनुपात से,
युद्ध करते हैं 'राक्षस' बनकर
साँस लेते दूसरे को समूचा निगलकर।"[१८]

एक और उदाहरण देखिये :

"नयों से नफरत है बेहद,
प्यार बीते, गये से,
उबासी अदीब से,
प्यार सिर्फ अपनों से,
प्यार धन से, परम्परा से, सपनों से,
ऐसा है यह ?"[१९]

भट्ट जी को भारत के अतीत से अत्यधिक स्नेह था और उसकी गरिमा से प्रेरणा और शक्ति मिलती थी। इस सम्बन्ध में भट्ट जी ने अपने विचार भी व्यक्त किए हैं :

"जिन काव्यों का जिक्र मैंने किया है उनका प्रारम्भ 'तक्षशिला' से हुआ और अन्त 'अन्तर्मन्थन—चार चित्र' में। इन सभी में मेरी कविता व्यक्ति के महाचेतन से सुगन्धित अतीत के क्षणों को खोजती रही है। उसमें जो उल्लास है, आनन्द सागर की लहरों पर तरंगायित फेनिल स्वप्न है, उसका निर्माण भी मैंने इसी आधार पर किया है, मैं उसको अपने देश मे फिर से पा सकूँ, उससे गौरवान्वित कर सकूँ, आज के राजनीतिक वात्याचक्र से पीड़ित समाज को उस वास्तविकता की एक झाँकी दे सकूँ, वह मेरे देश की धरोहर है। उसकी गरिमा से मुझे और मेरे देश को बल मिल सकता है। किन्तु मैं उसकी ज्योति को ही पसन्द करता हूँ। उसका रूप अस्थायी है। उस परिधान से छनकर जो अमन्द प्रकाश आज तक मेरे पास चला आ रहा है मैं उससे आलोकित उद्भासित हो उठना चाहता हूँ।"

"साँस को सुख दे गये बल दे गये
कल्पना के वृक्ष को जल दे गये
निफल होकर बुझ रहे अरमान के
पंख को तूफान सम्बल दे गये।"

"एक तरह मेरा साहित्य अतीत के गौरव, देश-प्रेम, देश के उत्थान की पूजा, उपासना, आराधना को आधार मान कर चला है।" इस प्रकार भट्ट जी ने

१८ 'मुझ में जो शेष है'—गिरगिट जी भाई बन्द सुनो, पृ० ५।
१९ वही—सामन्तवादी, पृ० ८।

आधुनिक युग के सभी चरणों को छुआ है।[२०]

भट्ट जी की अधिकतर कृतियाँ विचार तत्व की दृष्टि से प्रौढ़ हैं। इनके कथानक में एक ओर घोर निराशा का अन्धकार है तो दूसरी ओर अनन्त आनन्द का आलोक। यह अन्धकार धीरे-धीरे आलोक में परिवर्तित हो जाता है। इनमें जीवन के बहुत बड़े प्रश्नों—ईर्ष्या, द्वेष, जीवन और मृत्यु—का विवेचन चकित कर देने वाला है। इनमें यन्त्रों के दुष्परिणाम, वर्ग-भेद, युद्ध आदि से सम्बन्धित जो धारणाएँ व्यक्त की गयी हैं, वे तर्कसंगत और विश्वसनीय है। सबसे बडी बात यह है कि इनमें भट्ट जी का दर्शन प्रवृत्तिमूलक है। संसार से विरक्त न होने का उपदेश देकर वे हमें दृढता से कार्य करने की प्रेरणा देते है। वास्तव मे श्रेय और प्रेय दोनों का समन्वय हमे भट्ट जी की काव्य कृतियों मे मिलता है। इसके अतिरिक्त हमे उनके काव्य मे वैभव, विलास, सौन्दर्य, विरह, मृत्यु, प्रलय, प्रकृति के विविध रूपों का कलात्मक वर्णन मिलता है। भाव और भाव-चित्रण का अपूर्व सामंजस्य जो किसी भी महान् कलाकार की परख है, भट्ट जी में पूर्ण रूप से मिलता है। एक शब्द या वाक्यांश में ही कहीं-कहीं भावना को मूर्त रूप दे देते हैं। जैसे—

"आज उबलते जग कड़ाह में खौल रहे अरमान किसी के।"[२१]

हाँ, भट्ट जी के काव्य में विचार-गाम्भीर्य और नवीन कल्पनाओं का उद्घोष भी है। इसीलिए कविताएँ सहज और सरल हैं। भट्ट जी के काव्य मे जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण स्पृहणीय है। यथा :

"चाहता हूँ मैं जगत् की जलन का उपचार मीठा
यह कि यौवन-सा सुखद संसार का संसार मीठा॥"[२२]

भट्ट जी अपने अन्तिम कविता-संग्रह 'मुझ में जो शेष है' में नवीन प्रयोगों के मोह का त्याग नहीं कर सके हैं। पर ये प्रयोग सरस और मधुर हैं। इस सम्बन्ध मे भट्ट जी कहते हैं :

"जब-जब मैंने प्रयोग किए तो सन्तोष के लिए किये, अभिव्यक्ति के लिए किये, केवल प्रयोग के लिए प्रयोग नहीं किये और न मैंने पूर्व और पश्चिम की ओर देखा। साधारणत: व्यक्ति मूर्त से अमूर्त की ओर बढ़ता है, लेकिन मै अमूर्त से मूर्त की ओर चला हूँ।"[२३]

भट्ट जी अपने युग के श्रेष्ठ कवियों में से थे। अत: उनकी काव्य-कृतियों का मूल्यांकन भाव और कला के आधार पर अपेक्षित है। काव्यगत अनुभूति भी दो प्रकार की होती हैं, भावजन्य तथा चमत्कारजन्य। भावजन्य स्थिति में केवल अर्थ

२० 'मुझ में जो शेष है'—आत्मविश्लेषण, पृ० ङ, च
२१ 'अमृत और विष'—आज उबलते, पृ० ७।
२२ वही—आज का जीवन यही है, आज की है यही वाणी, पृ० ५।
२३ 'उदयशंकर भट्ट : व्यक्ति और सहित्यकार'—भट्ट जी की कुछ साहित्यिक मान्यताएँ,

प्रतीति होती है, किन्तु चमत्कारजन्य स्थिति में भाव भोग रूप में सहृदय द्वारा ग्रहण किया जाता है। इस भोग की स्थिति को ही रस दशा कहते हैं। रस-भावों के परिष्कार के साथ-साथ आस्वादजन्य आनन्द होता है। भट्ट जी की काव्य सरिता में रस की धारा अजस्र रूप से प्रवाहित हो रही है। सभी रस उनके काव्य में उपलब्ध होते हैं।

श्रृंगार रस

"प्रियतमा की याद मन का मीत बन जाती,
प्यार की बरबादियाँ ही जीत बन जातीं।।"[२४]

इसमे प्रेम की भावना श्रृंगार की कोटि तक पहुँच गई है। प्रेमिका आलम्बन है, प्रिय आश्रय। प्रेयसी की याद उद्दीपन विभाव है और प्रेमी का दुःखी होना अनुभाव है।

हास्य रस

भट्ट जी की शैली से ही उनकी विनोदप्रियता टपकती है। मानव जीवन के प्रत्येक पहलू पर उनकी सूक्ष्म दृष्टि थी, वे कचहरी और आफिस के बाबुओं की मनोवृत्ति से भी परिचित थे। हास्य रस पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है :

"जरा जा रहा हूँ मैं बाहर
साहब पूछे तो कह देना
अभी गया है पानी पीने—
एक मित्र आ गया उसी से बात कर रहा है वह बाहर।"[२५]

इसमें बाबू आलम्बन है, मित्र आश्रय। मित्र से बात करना उद्दीपन विभाव है और शेष क्रिया-कलाप अनुभाव है।

करुण रस

'तक्षशिला' षष्ठ स्तर में महाराजा अशोक पुत्र-वधू कांचनमाला को देखकर शोकमय हो जाते हैं :

"भीत मृगी-सी पुत्र-वधू को
निरख हुआ सन्ताप
करुणा रोई करुणा करके
सुनकर भूप विलाप।।"[२६]

उपर्युक्त पंक्तियों में दुःख एवं शोक स्थायी भाव है। महाराजा अशोक

२४ 'यथार्थ और कल्पना', पृ० २६।
२५ 'पूर्वापर', पृ० १२८।
२६ 'तक्षशिला', षष्ठ स्तर, पृ० २१३–१४।

आलम्बन हैं, पुत्र-वधू आश्रय। पुत्र-वधू की दयनीय स्थिति उद्दीपन विभाव है और भूप-विलाप अनुभाव एवं संचारी भाव हैं।

रौद्र रस

अर्जुन ने किरात पर गुरु से गुरुतर बाणों की वर्षा की पर सब निष्फल रहे। अन्त में अर्जुन क्रोधाभिभूति होकर मल्ल युद्ध के लिए दौड़ पड़े :

"तब तीव्र तीव्रतर गति से शर-वर्षा करते अरि पर
गांडीव-मुक्त भी कोई शर छू न सका तन अरि को।
चिन्तित से विस्मित अर्जुन क्रोधोदधि उमड़ रहा था
तूणीर रिक्त-शर पाकर तब मल्लयुद्ध को दौड़े॥"[२७]

इसमें क्रोध स्थायी भाव है। अर्जुन आलम्बन और किरात आश्रय है। शर-वर्षा उद्दीपन, मल्लयुद्ध के लिए दौड़ना अनुभाव की क्रियाशील स्थिति, चिन्ता और विस्मय संचारी भाव हैं।

वीर रस

"कभी न ऐसा होगा
बोले अभ्र-ध्वनि से वीर
खड्ग खड़कने लगे
म्यान में, खौला खून शरीर
धीरज धसका, बल का उठ बल,
हुई खलबली शोर
सेनापति तब यों उठ बोले
सुनिये भूप-किशोर॥"[२८]

इसमें वीर रस का समुचित परिपाक है। भूप-किशोर आलम्बन है, वीर लोग आश्रय। खड्ग खड़कना उद्दीपन है, खून खौलना अनुभाव, खलबली और शोर संचारी भाव हैं।

भयानक रस

भट्ट जी उदात्त भावों के कवि थे। उनकी कविताओं में पलायन के स्थान पर 'प्रवृत्ति' और संकुचन के स्थान पर 'प्रसारण' ही अधिक उपलब्ध होता है। यही कारण है उनके काव्य में भयानक रस की रचना खोज निकालना दुस्तर कार्य है। इसके साथ-साथ जीवन में कर्म उन्हें इष्ट था।

२७ 'कौन्तेय कथा', पृ० ६७।
२८ 'तक्षशिला', षष्ठ स्तर, पृ० १८१।

वीभत्स रस

भट्ट जी की की काव्य कृतियों मे वीभत्स रस की कविताएँ भी अत्यधिक अल्प मात्रा मे उपलब्ध होती है :

"सामने युद्ध के आंगन में गिद्धों, कुत्तों के चीत्कार,
स्यारों का मरण महोत्सव पर टूटना शवों पर कर प्रहार।
घायल अधमरे सैनिकों का निःसत्व मर्मभेदी क्रन्दन,
सुन पड़ा उसे अव्यक्त क्रूर विकराल मृत्यु का अभिनन्दन ॥"[२६]

इसका स्थायी भाव घृणा है। घृणा या जुगुप्सा का साहित्य-दर्पण में लक्षण इस प्रकार दिया है :

"दोषक्षणादिभिर्गर्हा जुगुप्सा विस्मयोद्भवा।"[३०]

अर्थात् दोष देखने से जो गर्हा, त्यागने और निन्दा का भाव होता है उसे घृणा कहते है। इसमें आलम्बन रावण है, आश्रय अधमरे सैनिक और उद्दीपन है युद्ध के आगन में गिद्धों, कुत्तों की चीत्कार और अनुभाव सैनिकों का निःसत्व मर्मभेदी क्रन्दन।

अद्भुत रस

भट्ट जी ने 'बंगाल' नामक कविता में बंगाल की दशा का चित्रण बड़े ही विस्मय और आश्चर्य के साथ किया है। विस्मय इसका स्थायी भाव है।

"आँखों देखी कहता हूँ
कल्पना नहीं है यह,
देखे मैंने फाड़ फाड़
नेत्र निज विस्मय से,
शोक, आश्चर्य से,
अन्तर के द्वार से
भुखमरे दीन हीन,
अनादृत औ अपृष्ट
रोगी और कंगले,
साथ साथ सोते हुए
हाथ हाथ दूर पर,
सटे वे अनेक जन ॥"[३१]

२६ 'अन्तर्मन्थन'—चार चित्र, पृ० ४२।
३० 'साहित्य दर्पण', ३।१७६।
३१ 'अमृत और विष'—बंगाल, पृ० ३६–४०।

शान्त रस

भट्ट जी के मुक्तकों में शान्त रस की प्रचुरता है। इस रस का स्थायी भाव निर्वेद है, जिसके मूल में संसार से विरक्ति की भावना कार्य करती है। ससार की निःसारता अपने पापों की गणना और किये पर पश्चात्ताप आदि अनुभाव तथा हर्ष, आत्मग्लानि आदि संचारी भाव हैं :

"स्वयं मृत्यु के मुँह में जाना
और जगत् को जीवन देना
क्या संसृति का तत्व यही है
जीना देना मरना लेना।
और, और क्या मैंने जाना
रोज सुबह खिल खिल कर हँसना
रोज झुटपुटे में सन्ध्या के
उड़ना और कहीं जा बसना।।"[32]

भट्ट जी के काव्य में रस का परिपाक तो अवश्य मिलता है पर वे परम्परा के निर्वाह के पचड़े में नहीं पड़े हैं।

काव्य में भावों के साथ-साथ कला का भी अपना महत्त्व है। काव्य मानवात्मा की तृप्ति हेतु है। यह तृप्ति काव्यगत सौन्दर्य के द्वारा ही होती है। कवि अपनी कविता में भाव के साथ-साथ सदैव सौन्दर्य-सृष्टि का प्रयास भी करता है। इसीलिए वह अपने काव्य में अलंकार, छन्दों आदि का समुचित प्रयोग करता है। भट्ट जी ने प्रारम्भिक काव्य कृतियों में अलंकार आदि का प्रयोग किया है पर बाद की रचनाओं में वे पूर्णतया बन्धनमुक्त हो गए हैं। इसीलिए उनके काव्य में रस की धारा तो अजस्र रूप से वेगवती है पर शैली, छन्द, शब्दयोजना आदि का चक्र वहाँ बहुत कम दीख पड़ता है।

इस सम्बन्ध में भट्ट जी ने अपने विचार व्यक्त किए हैं :

"काव्य ने माध्यम को कभी महत्त्व नहीं दिया है। शैली, छन्द, शब्द योजना आदि काव्य के माध्यम हैं। वे काव्य के अंग होते हुए भी स्वयं काव्य नहीं है। दूसरे शब्दों में वे काव्य के चमत्कारी अस्त्र है। उग्र अनुभूतिमूलक भावराशि ही काव्य है जो पाठक के हृदय में एक प्रकार की सजगता भरती है। उसे तन्मय बना देती है। वह तन्मयता जिससे उत्पन्न होती है वह काव्य है। काव्य विचारों की उत्तेजना द्वारा अभिनव रस-सृष्टि में समर्थ होकर जब जीवन की मूर्त असंगति को भुला देता है, तभी काव्य को काव्य कहकर पुकारा जा सकता है।"[33]

भट्ट जी ने अलंकारों की चिन्ता नहीं की परन्तु अलंकार उनकी कविता में

[32] 'मानसी'—पृ० ३०

[33] 'साहित्य के स्वर'—काव्य का मूल्यांकन, पृ० ३६।

अनायास ही आ गये हैं। प्रारम्भिक रचनाओं में अलंकार आदि अवश्य उपलब्ध होते हैं और रूपक उनका प्रिय अलंकार है जो अनायास ही आया है। इसके अतिरिक्त अन्य अलंकारों का प्रयोग बड़ी चारुता के साथ किया है :

रूपक

१. मेरा ध्येय नित्य स्वप्नों का
एक नया जग नित्य बनाना
कल्पित यौवन की प्याली में
सौन्दर्य सागर भर जाना ।।"[३४]

२. प्राण के उत्संग से कोई छिटकना चाहता है
श्वास पथ पर प्राण रथ ले विश्व उड़ना चाहता है ।।[३५]

३. तूने आशा के पंखों पर
उड़ कर देखा, क्या पहचाना
दुनिया के सम्मुख जी हाँ, हाँ,
औ' हटते सभी भूल जाना ।।[३६]

४. उम्मीदों की नौका पर
हम जाने को हैं आये
वरदान बुलाने पहुँचे
अरमान छोड़ने आये ।।"[३७]

उपमा

१. चुम्बन सी मीठी तन्द्राएँ
चारों ओर झाँकती आतीं
प्रिय स्पर्श सी पुलकित राका
एक नया मद मुझे पिलाती ।।[३८]

२. विश्व था उलझी कहानी सा
न जिसका छोर पाया
राग था, जिसमें न लय थी,
स्वप्न था, रव घोर छाया ।।[३९]

३४ 'विसर्जन'—प्रारम्भ, पृ० ६।
३५ वही, पृ० ११।
३६ 'कंकाल'—पृ० २४।
३७ 'कविता'—विदा, पृ० ५६।
३८ 'विसर्जन'—प्रारम्भ, पृ० ५।
३९ वही—कंकाल, पृ० २६।

३. तू पड़ा हुआ ऊसर भू-सा
तू हीन चेतना का समाज ॥[४०]

उत्प्रेक्षा

१. तडित समान, चंड तेजस्वी,
रत्न जटित नृप देखा
मानो रवि मण्डल से उतरी
दिव्य किरण की रेखा ॥[४१]

२. निर्झरी उन्मुक्त होकर
चूमने मानों चली नभ ।[४२]

३. महामते, वह मूर्तिमान है
भारत नृपति सन्देशा
आया भरत अयोध्यापति का
मानो शर हो ऐसा ॥[४३]

अनुप्रास

१. स्फटिक शिलायें रम्य वन-स्थल
सुरभि सुवासित शान्ति विशाल
सर पूरित जल, विकच कमलदल,
थल-थल पावनता का वास ॥[४४]

२. जहाँ कलमयी कोकिल कण्ठों
की तानें झरतीं रस राग ।[४५]

समासोक्ति

१. वह अपनी आँखों के मद से
सींच रही है जग फुलवारी
उसके कभी मुस्कुराते ही
हँस उठती है क्यारी-क्यारी ।[४६]

[४०] 'तक्षशिला'—द्वितीय स्तर, पृ० ३६ ।
[४१] वही—द्वितीय स्तर, पृ० ३८ ।
[४२] वही—प्रथम स्तर, पृ० २१ ।
[४३] वही—द्वितीय स्तर, पृ० ३६ ।
[४४] वही, पृ० २२ ।
[४५] वही, प्रथम स्तर, पृ० २२ ।
[४६] 'मानसी'—दर्शन, पृ० ७ ।

२. कमल जल की सतह से उठ
चाहता आकाश छूना
किन्तु हिम का वज्र गिर कर
कर रहा सब हास सूना।[४७]

३. शशिमुखी मधु यामिनी
परिधान नीला पहन आती
रवि मिलन उत्कार लिए
नित झाँकने उस पार जाती॥[४८]

अपह्नुति

१. छातियों से भूधरों की
नद नहीं पीड़ा बही है
उषा के आरक्त मुख से
नाश निर्झरिणी बही है।[४९]

विरोधाभास

१. अरे यहाँ ठण्डी आहों की
ज्वालामुखियाँ भी तो फूटीं,
क्या न जब कभी पीड़ाओं की
काली बदली नभ से टूटी ?[५०]

दृष्टान्त

१. प्रात केवल प्रेम स्वर भर
नित जाता और रोता
दिन यहाँ किसके सुखी हैं
स्वयं जल रवि शीत होता।[५१]

वीप्सा

१. ये सुमन हँस-हँस मरण को
वरण करने चल दिए हैं

४७ 'विसर्जन'—उन्मुक्त, पृ० १०।
४८ वही—गीत, पृ० ७५।
४९ 'मानव के प्रति'—कविता, पृ० ८८।
५० 'मानसी'—प्रश्न, पृ० १४।
५१ 'उन्मुक्त'—कविता, पृ० ८।

पंखुड़ी के धड़कते दिल लो,
किसी ने मल दिये हैं।[५२]

अत्युक्ति

यह सागर का बाँध तोड़
नक्षत्रों की सीमा कर भेदन
मानव की आशा से हिल-मिल
भर देती जीवन में धड़कन।[५३]
विधि भी वाम नहीं हो सकता
रहता है अनुयायी॥[५४]

अतिशयोक्ति

नागराज से भूषित मलयाचल
सम नृप शोभित थे
चमरी मृग सेवित हिम नग से
वारांगना विहित थे।"[५५]

भट्ट जी के काव्य में अलंकार आदि की खोज करना एक बौद्धिक व्यायाम है, क्योंकि अलंकार दूर-दूर जाकर भावों में सहायक के रूप में मिलते हैं।

प्रकृति के चित्र कवि ने बड़े स्नेह के साथ अंकित किए हैं। इसीलिए प्रकृति के विविध चित्र उनके काव्य में प्रायः मिल जाते हैं :

१. "शशि किरण सँग नाचने की आस ले नक्षत्र आये।
नील कानन में निशा ने ओस के मोती बिछाये
ताल भी पूरा न दे पाई निशा स्वर भी न आँका
एकदम अवसान की भेरी बजाकर काल झाँका।"[५६]

२. "मृदुल लतिका के करों में
हँस रहा मैं दिल छिपाये
पवन से सप्तक मिला
संगीत मेरे गुनगुनाये।"[५७]

३. "लहरों की माँगें सँवार कर
ईंगुर देने क्षितिज चला

५२ 'विसर्जन'—भ्रान्ति, पृ० ४७।
५३ वही—कवि का आत्मसमर्पण, पृ० २।
५४ 'तक्षशिला', पृ० ४१।
५५ वही, पृ० ३६।
५६ 'विसर्जन', पृ० १३।
५७ 'किसलय कथा', पृ० २७।

कलियों के सुहाग पर अर्पित
करता शशि का हृदय गला है।"[५८]

कवि ने विराट् चित्र भी खींचे हैं :

"तेरा भी तो नभ ऊँचा है,
भू शिखर खड़े छाती ताने
सम लय पर सागर गाते हैं
दिन रात गीत ये मस्ताने।"[५९]

मानवीकरण

"चीर कर दिल को बहाती
यह धरा सित रुधिर नाले
चीर कर दिल आस्माँ
पानी गिराता छील छाले
चीर कर दिल कर रहा है
प्रेम की बौछार मानव
निर्झरी उन्मुक्त होकर
चूमने मानों चली नभ।"[६०]

जहाँ तक भट्ट जी की शैली का प्रश्न है, काव्य में उनकी कोई विशिष्ट शैली नहीं थी। हाँ, उन्होंने अभियान शैली में गीत आदि अवश्य लिखे हैं :

"स्वतन्त्रता तुम्हें मिली कि वीरता मिली,
स्वतन्त्रता तुम्हें मिली कि धीरता मिली,
स्वतन्त्रता तुम्हें मिली विवेक वर मिला
स्वतन्त्रता तुम्हें मिली कि शक्ति, श्री, कला।"[६१]

उनके काव्य में प्रवाह अधिक है। यदि यह कहा जाए कि उन्होंने अपने काव्य की रचना प्रवहमान शैली में की है तो सम्भवतः उचित ही होगा :

"गूँज रहा था
महा नाश सा
दिशा-दिशा में
दसों कोण में
ऊपर नीचे
भू पर, नभ में

५८ 'विसर्जन'—नवनिर्माण पृ० ५२।
५९ 'विसर्जन'—१ पृ० ६३।
६० 'वही'—भ्रान्ति, पृ० ४६।
६१ 'पूर्वापर', पृ० १२२।

कल-कल-कल-कल
महा वात में,
एक दूसरे महाकाश सा।"[६२]

भट्ट जी ने प्रारम्भिक काव्य कृतियों में वीर या आल्हा छन्द, द्रुतविलम्बित और मुक्तक छन्द आदि का प्रयोग किया है। गीतों में छन्दों का प्रयोग प्रसाद, पन्त और अन्य गीतकारों से प्रभावित दीख पडता है। छन्द मुक्तता में निराला की छाया स्पष्ट प्रतिबिम्बित हो रही है।

वीर छन्द

"जहाँ सदर्य सिन्धु नद बहता
सब सरितों का कर उपहास
लिये अनन्त अशान्त तोयनिधि।
क्षार सिन्धु नद का उल्लास ।।"[६३]

इस छन्द के प्रत्येक चरण में ३१ मात्रायें होती हैं और १६ तथा १५ मात्राओं पर विराम होता है। जैसा कि भट्ट जी की उपर्युक्त पंक्तियों में है।

द्रुतविलिम्बित छन्द

"निरख दुःख घटा घिरती हुई,
सलज भूपट से सटती हुई
निपट शुष्क लता सम वो हुई
गल हुई सुषमा कटुतामयी।"[६४]

इस छन्द के प्रत्येक चरण में १२ वर्ण होते हैं। क्रमशः नगण, भगण, भगण और रगण होते हैं तथा पादान्त में विराम होता है। (द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ)।

मुक्तक

"यह न मानना कभी कुलीन के कुलीन होता,
मन मलीन कीचड़ में सरोज रोज खिलता है।
वर्ष भर तिमिर पीती काजल-सी रजनी से,
सुधा भरी चाँदनी से शरद हास मिलता है।"[६५]

यह छन्द अपने में पूर्ण और स्वतन्त्र होता है।

६२ वही, पृ० १३९।
६३ 'तक्षशिला', प्रथम स्तर, पृ० २।
६४ 'तक्षशिला', षष्ठ स्तर, पृ० २०३।
६५ 'कणिका', पृ० १०।

भट्ट जी ने 'कौन्तेय कथा' के हिमालय सर्ग में तांटक छन्द का प्रयोग किया है :

"आदि उदधि भव शक्ति योनि से
जिसका प्रादुर्भाव हुआ।
जो जीवन का नव प्रतीक था
जहाँ सृष्टि प्रस्ताव हुआ ॥"[६६]

भट्ट जी प्रारम्भिक काव्य कृतियों मे छन्द का बन्धन मानकर चले है, इसी लिए उनका वह काव्य कुछ सहमा हुआ-सा दृष्टिगोचर होता है। वह पूरी तरह अपने मन की बात नही कह पाता और जितनी कह पाता है प्रभाव उससे भी कम डालता है। बाद की रचनाओं मे भट्ट जी पूर्णतः छन्द-बन्धन से मुक्त हो गये है। इसीलिए उनकी वे कविताएँ अनुभूत जीवन की विषमताओं के साथ सौन्दर्य, उदात्त भावना, अमूर्त प्रेम की उत्कट अभिव्यक्ति लिये हुए हैं। यथा :

"शेष क्या पाना रहा पाकर तुम्हें
× × ×
हास-भीने स्मृति-सलज दृग
प्राण में पुलकन संजोये
ढूँढते किसको न जाने
स्वप्न आलिंगन भिगोये।"[६७]

भट्ट जी ने छन्द योजना के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किये है :

"छन्द काव्य का परिधान है, स्वयं काव्य नहीं। इसलिए किसी भी परिधान में काव्य को सजाया जा सकता है। 'अमृत और विष' आदि की रचनाएँ छन्दमुक्त हैं। 'महाजीवन', 'ऋतु-पुरुष' आदि की कविताएँ उस बन्धन से एकदम मुक्त हो गयी हैं।"[६८]

इसके अतिरिक्त भट्ट जी ने तुकान्त काव्य की अपेक्षा अतुकान्त काव्य को अधिक महत्त्व दिया है—"यदि अत्युक्ति न समझी जाये तो मैं कहूंगा कि अतुकान्त काव्य तुकान्त काव्य से अधिक प्रवाहमय एव जोरदार हो सकता है।"[६९]

कवि की इस प्रकार की कविताएँ 'पूर्वापर', 'इत्यादि', 'मुझ मे जो शेष है' आदि कविता-संग्रहों मे संग्रहीत हैं :

"दासता, विषाद की,
दुःख, दैन्य, त्रास की,
विनाश की महान् एक

६६ 'कौन्तेय कथा' हिमालय, पृ० ११।
६७ 'पूर्वापर', पृ० ६२।
६८ 'मुझ में जो शेष है'—आत्मविश्लेषण, पृ० ङ।
६९ 'विजय-पथ'—भूमिका, पृ० ७।

आज सब-जली जली
आज हम स्वतन्त्र हैं,
आज हम स्वतन्त्र हैं।"[७०]
"मेरे घन से उमड़े मन में
अनगिनत अर्थ हैं, शब्द नहीं
अर्थों को इंगित-अक्षर दो
मत दो शब्दों का आडम्बर,
केवल अर्थों को अम्बर दो।"[७१]

इसी तरह एक और :

"कालिदास सपना है,
मेरा धन अपना है,
मुझे पगडण्डी पर पनपना है।"[७२]

'मुझ में जो शेष है' का उदाहरण भी द्रष्टव्य है :

"साँसों के परिश्रम से उठा
थकावट का पानी भी
बैठ गया बैठ गया।
मृग की मरीचिका में
जल है जल-छाया क्या है?"[७३]

जो कवि शास्त्रानुसारी होता है, उसमें मौलिकता और अनुभूति का प्रायः अभाव रहता है। ऐसी कविताएँ अभिजात को आनन्द देकर केवल एक विशिष्ट वर्ग की ही बनकर रह जाती हैं। भट्ट जी की अधिकतर कविताएँ अनुभूतिपरक हैं। अनुभूति छन्द के बन्धन में बंधकर भला कैसे रह सकती है?

"तुम सजग साँस दो,
मुक्त मधुमास दो
मैं पवन बन बहूँ,
स्नेह के स्वर गहूँ।
जो जले जा रहे दुःख संघर्ष में।"[७४]

भट्ट जी ने भी लिखा है—"रचनाएँ पढ़ें, जो समाजपरक कम, व्यक्ति की अनुभूतिपरक अधिक हैं।"[७५] अतः छन्द का प्रयोग वास्तव में कवि की प्रतिभा पर

७० 'पूर्वापर'—पृ० ७।
७१ 'इत्यादि'—शब्द और अर्थ, पृ० १६।
७२ वही—आत्मनिवेदन, पृ० १।
७३ 'मुझ में जो शेष है'—कहना भी आया क्या, पृ० २१।
७४ 'इत्यादि'—पृ० १८।
७५ 'मुझ में जो शेष है'—आत्मविश्लेषण, पृ० ख।

आश्रित है। जैसे श्रेष्ठ खराद करने वाले के हाथों में जाकर हीरे की चमक द्विगुणित हो जाती है वैसी ही बहुत कुछ स्थिति छन्द की भी है। परन्तु छन्दों की अपेक्षा अनुभूति काव्य को अत्यधिक सरस और कोमल बना देती है। भट्ट जी के काव्य की मधुरिमा ही उनकी अनुभूति है।

जो कवि अपने उद्दिष्ट के प्रति जितना अधिक जागरूक होगा उसकी भाषा उतनी ही सरल और साफ एवं सुथरी होगी। भट्ट जी की भाषा भी उत्तरोत्तर सरल और गतिशील होती चली गई है। उनकी प्रथम कृति 'तक्षशिला' की भाषा द्रष्टव्य है :

> **"प्रकृति विहार-स्थल कुसुमाकर**
> **काश्मीर जिसका है छोर**
> **मृगमद से उन्मत्त मृगी के**
> **सचकित नयनों की-सी कोर।"[७६]**

अन्तिम रचना 'मुझ में जो शेष है' की भाषा भी द्रष्टव्य है :

> **"जीवन के बसन्त में**
> **फूलों से हँसे और**
> **चाँदनी की चादर ओढ़**
> **उषा की निरभ्र आभ**
> **छवि से बसे तुम**
> **मन के लघु आंगन में**
> **अथाह सुख सागर में**
> **प्राणों में प्राण छन्द**
> **ऊर्जस्वित प्राण बोले**
> **मैंने नहीं पहचाना।"[७७]**

बोलचाल की यह भाषा उसी कवि की है जिसकी आरम्भिक रचनाओं से यह अनुभव होता है कि कवि कहना तो चाहता है पर कह नहीं पाता। कवि भाषा की जटिलता में ही उलझकर रह जाता है। कहने की पूर्णता के प्रति जाग्रत दृष्टि कवि को नित नए-नए प्रयोग करने के लिए बाध्य करती है :

> **"आत्मविश्वासी**
> **कर्म ज्ञान के विलासी हम,**
> **पतझड़ में बसन्त प्राणवन्त कुसुमाकर हैं**
> **तम में दिवाकर**
> **घुप अँधेरी के निशाकर हैं।"[७८]**

७६ 'तक्षशिला', पृ० ३-४।
७७ 'मुझे में जो शेष है'—मैंने नहीं पहचाना, पृ० ४१।
७८ वही—मृत्युभक्षी भारतीय हम, पृ० ६६।

प्रयोग के सम्बन्ध में डा० हरबंसलाल शर्मा के विचार भी द्रष्टव्य हैं :

"प्रयोग की सदा गुंजाइश रहती है। परन्तु प्रयोग के नाम पर अतीत की शाश्वत परम्पराओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।"[७६]

भट्ट जी ने भी प्रयोग के लिए प्रयोग नहीं किए अपितु सन्तोष एवं अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग किए हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने विचार भी व्यक्त किए हैं :

"जब-जब मैंने प्रयोग किये तो सन्तोष के लिए किये, अभिव्यक्ति के लिए किये, केवल प्रयोग के लिए प्रयोग नहीं किये।"[८०]

भट्ट जी ने नियमों का पोषण नहीं किया। स्वाभाविक रूप से जो गुण या शब्द-शक्ति उनके काव्य में आ गई, वही उनके काव्य का शृंगार बनी हुई है। वे इस दिशा में प्रायः चेष्टाशील नहीं रहे। इस दिशा में उनके विविध रूप इन दृष्टान्तों से परखे जा सकते हैं।

गुण

१. माधुर्य :

चुम्बन सी मीठी तन्द्राएँ
चारों ओर झाँकती आतीं
प्रिय स्पर्श-सी पुलकित राका
एक नया मद मुझे पिलाती।[८१]

२. ओज :

शौर्य वह्नि से चमक उठा
युवराज प्रखरतर
अत्युत्कट उद्दीप्त हुआ
मुख साहस से भर।।[८२]

३. प्रसाद :

सुखद घन की बूँद हूँ
उन्मुक्त था उल्लास मेरा
पूर्ण शशि की किरण में
था छिटकता मृदुहास मेरा।[८३]

७६ भारतीय हिन्दी परिषद् के २२वे वार्षिक अधिवेशन में सभापति पद से भाषण, पृ० १४।

८० 'उदयशंकर भट्ट : व्यक्ति और साहित्यकार', पृ० २८।

८१ 'विसर्जन'—आरम्भ, पृ० ४।

८२ 'तक्षशिला', पंचम स्तर, पृ० १४२।

८३ 'विसर्जन'—उन्मुक्त, पृ० ८।

शब्द-शक्तियाँ

भट्ट जी के काव्य में शब्द-शक्तियों का भी समुचित परिपाक प्राप्त होता है :

१. अभिधा :

अरी, यहाँ जीवन प्याली में
दिल मदिरा का पान मना है
अपने आँसू की सरिता का
नित्य नया आह्वान मना है ।[८४]

२. लक्षणा :

"आज तुम्हें निज परिचय दूँ क्या और तुम्हारा
परिचय लूँ क्या ?
सावन आँखों में भर दूँ क्या ?"[८५]

३. व्यंजना :

३. "आज वल्लरी की धमनी में
मस्ती के सोते फूटे हैं
उमड़ उठे हैं आँखों के सुख
आँखों की सुख-छलक गगन से ।।"[८६]

इतने पर भी भट्ट जी को कला-शिल्प के प्रति जागरूक कहना कोरी असंगति होगी । जिस कवि में अनुभूति की प्रेरणा होगी तो वह निश्चित रूप से कला के प्रति उदासीन होगा । इसीलिए उनके काव्य मे कला समृद्ध नही हो पाई । ऐसे कवि की अभिव्यक्ति का सात्विक एवं सरस होना स्वाभाविक है । उनके काव्य को पढ़कर मन आत्मद्रव से भीगकर एक स्निग्ध शान्ति का अनुभव करता है और मानवीय गुणों के प्रति आस्था जागती है । इसके अतिरिक्त उनके काव्य में कल्पना और भाव-कोष पर चिन्तन का जोर दीख पड़ता है, फलतः भट्ट जी की काव्य कृतियाँ वैविध्य-पूर्ण हैं । वे मुख्यतः अतुकान्त कविता के कवि थे । उन्होंने जिन समस्याओं को लेकर काव्य की रचना की है वे एक युग विशेष की समस्याएँ होते हुए भी शाश्वत और सनातन हैं । जिनका समाधान खोज लेना सामान्य मानव के लिए सहज नहीं है । राष्ट्रीय भावना का आधार स्थूल राजनीतिक राजतन्त्र नहीं वरन् सांस्कृतिक परम्परा की रक्षा करते हुए राष्ट्रीयता की वरेण्य कल्पना करना उन्हें अधिक युक्ति-संगत और समीचीन प्रतीत हुआ । एक जागरूक प्रतिभाशाली कवि को जिस प्रकार की स्वस्थ भावनाएँ लेकर काव्य-सृजन करना चाहिए वैसा ही उन्होंने जीवन भर किया । यही कारण है कि प्रेम, सौन्दर्य, संस्कृति, इतिहास, मानवता आदि विविध

८४ वही—मधुश्री, पृ० १८ ।
८५ वही—नवनिर्माण, पृ० ४६ ।
८६ वही—मधुश्री, पृ० १६ ।

क्षेत्रों में विचरण करते हुए भी उन्हें कहीं विफलता नहीं मिली । उनके काव्य मे कला की आराधना बहुत कम और विचारों का सेवन अधिक है ।

वास्तव में भट्ट जी शिव के कवि थे, यद्यपि उनका शिव सत्य और सुन्दर से दूर नहीं है । शिव एवं शुद्ध मानवीय गुण और आत्म-परिष्कृति ही इनकी कविता का मूल है । उसमें भी जो बात सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है, वह है उदात्त भावों के प्रति गम्भीर निष्ठा । यह भावना काव्य तक ही नहीं अपितु समस्त साहित्य मे बिखरी पड़ी है जिसे समेटना या शब्दबद्ध करना एक कठिन कार्य है ।

इनके काव्य में करुणा व्यष्टि से समष्टि तक व्याप्त है और इसका धरातल भी शुद्ध मानवीय एवं व्यक्तिगत है । कल्पना का स्पर्श भावों को किस प्रकार जागृत करता है इससे वे अच्छी तरह परिचित थे । इनकी संवेदना इतनी तीव्र थी कि भावना के उठते ही उसे प्रायः मूर्त रूप दे देती है । विविध चित्रों का सजीव अंकन, उपमा एवं रूपक की मधुर योजना आदि उनकी अनुभूति एवं कल्पना का ही कौशल है पर कल्पना संगत है और अनुभूति से सामंजस्य रखती है ।

निष्कर्ष

भट्ट जी का काव्य एक ओर भूतल को छूता है तो दूसरी ओर अनन्त आकाश से बातें करता है और अचेतन संसार में पर्यटन कर उसे चेतनता से अनुप्राणित करता है । हृदय और जीवन के रहस्यमय प्रदेशों में घुसकर उनका यथाशक्ति उद्घाटन करता है और अज्ञेय को ज्ञेय बनाने का प्रयास करता है । भट्ट जी का काव्य अधिकतर अनुभूतिपरक है । उनका काव्य-कला पर ध्यान प्रायः नहीं रहा है और जो भी छन्द, अलंकार, आदि दीख पड़ते हैं, वह उनका स्वाभाविक आगमन है । व्यर्थ के अलंकारों से दूर और काव्य में स्वाभाविकता ही उनका निराला जी के बाद का स्थान निर्धारित करती है । स्वच्छन्द मनोवृत्ति में वे निराला जैसे हैं पर आत्मानुशासन की दृष्टि से वे निराला से भी कहीं-कहीं ऊपर उठ गए हैं । काव्य विधाओं की दृष्टि से वे प्रसाद के समकक्ष रखे जा सकते हैं । प्रकृति-प्रेम, मार्क्सवादी दर्शन के साथ भारतीयता और भारतीय संस्कृति के उन्नायक की दृष्टि से वे पन्त के समकक्ष ठहरते हैं । गद्य शैली और आत्म-विश्वास की दृष्टि से उनमें महादेवी वर्मा की मनोवृत्ति के लक्षण स्पष्ट हैं ।

उनकी कल्पना शालीन एवं संयत है और चित्रमयता से अनुप्राणित है । सबसे बड़ी बात यह है कि भट्ट जी अनेक राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्थाओं से क्षुब्ध होते हुए भी निर्माण चाहते हैं और सर्वहित की कामना करते हैं । उनकी कविता भावों की परिणति है, ज्ञान एवं सौन्दर्य और सृजन प्रवृत्ति की परिचायिका है । इसके अतिरिक्त संवेदना से ओत-प्रेत है और शिव की महत्ता को स्थापित करती हुई, सत्य और सौन्दर्य की सहचरी है । यह भट्ट जी का काव्य तुकान्त काव्य की तरह एक कटी-छँटी, चिकनी-चुपड़ी फुलवाड़ी नहीं है, बल्कि बहती हुई रस-धार है । संसार के

दु:ख से अपनी अनुभूति को तरल करके उन्होने काव्य मे सुखानुभूति की भावना को प्लावित किया है। इसीलिए उनके काव्य में करुणा का जोर है। उनकी कृतियों में तर्क एवं तत्त्व विमर्श कल्पना तथा भाव के गुण है। अतः वे दार्शनिक न होकर कवि हैं। उनका चिन्तन तथ्यों की सूची न प्रस्तुत करके उनका विहित और नियमित रूप में तर्कसंगत उपस्थापन करता है और काव्य अस्त-व्यस्त वैविध्यपूर्ण जीवन के तथ्यों का अनुकरण न करके व्यवस्थित एवं रमणीय अभिव्यंजना करता है। दोनों मे उनकी प्रतिभा और अनुभव का अद्भुत सामंजस्य है। वे अपने गहन अध्ययन, चिन्तन, मनन से जिन निष्कर्षो पर पहुँचे थे उन्हें उन्होंने अपने काव्य में व्यक्त किया है। वास्तव में वे मानवीय गुणों के सच्चे साधक और महान् कवि थे।

भट्ट जी के नाटकों का मूल्यांकन

नाटक-साहित्य का चरम लक्ष्य रसात्मकता में ही गतिशील होता है और जीवन के प्रत्येक स्पन्दन को मुखरित कर उसमें एक नवीन आनन्द और स्फूर्ति सचार करता है। नाटक ही साहित्य की वह विधा है जिसमें लेखक, पाठक और दर्शक की आत्मा एकाकार होकर बोल उठती है। इसके अतिरिक्त नाटक पात्र के चरित्र की परिवर्तनशील एवं प्रयोगात्मक अभिव्यक्ति है। घटना, संवाद, गीत आदि उसके साधन हैं साध्य नहीं। भट्ट जी के नाटकों में ये गुण प्राय: उपलब्ध होते हैं। उन्होंने प्राचीन शैली के बन्धनों को तोड़ते हुए अपनी नूतन शैली में मानवीय जीवन की अनेक समस्याओं को प्रस्तुत किया है। रंगमंच की ओर भी नाटककार का विशेष ध्यान रहा है। इसी-लिए भट्ट जी ने लिखा है:

"हिन्दी के नाटक के लिए एक बात और ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि रंगमंच पर सरलता से सम्पन्न हो सके। जहाँ तक हो वह सर्वसाधारण द्वारा तैयार किया जा सके।"[८७]

भट्ट जी के नाटकों का प्रतिपाद्य विस्तृत रहता है। उन्होंने भारतीय इतिहास, पुराण, समाज और तत्कालीन राजनीति को उनका विषय बनाया है। अपने नाटकों की विषय वस्तु के सम्बन्ध में भट्ट जी ने स्वय लिखा है :

"हमारी जातीयता में धर्मवाद की निकम्मी-थोथी रूढ़ियो ने हमे विवेक से गिरा दिया है मनुष्यत्व से खींचकर दासता, भ्रातृ-विद्रोह, विवेकशून्यता के गढ़े में ले जाकर पीस दिया है।"[८८] वास्तव में भट्ट जी के नाटकों की कथावस्तु इन्ही बातों को लिये हुए है।

भट्ट जी के नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनके नाटक पौराणिक और ऐतिहासिक होते हुए भी आधुनिक समस्याओं पर केन्द्रित है।

८७ 'साहित्य के स्वर'—नाटक के प्रति मेरा दृष्टिकोण, पृ० ८०—८१।

८८ 'शक-विजय'—भूमिका, पृ० ४।

अतः अब भट्ट जी के नाटकों का मूल्यांकन भारतीय और पाश्चात्य नाट्य सिद्धान्तों के आधार पर कर लेना आवश्यक है ताकि हमें उनकी कृतियों और नाट्य कला का सही-सही ज्ञान हो जाए। भारतीय आचार्यों ने नाटक के तीन तत्व माने हैं :

१. वस्तु
२. पात्र और
३. रस

अतः वस्तु, नेता और रस का रंगमंचीय विधान करने के लिए संवादों और दृश्य-विधान का आश्रय लेना आवश्यक है। पाश्चात्य विद्वानों ने नाटक के छः तत्व माने हैं : कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन देशकाल, उद्देश्य और शैली। भट्ट जी के नाटकों का मूल्यांकन भारतीय एवं पाश्चात्य शिल्प-विधि के आधार पर आवश्यक है।

कथावस्तु

भट्ट जी सफल नाटककार थे। उन्होंने अपने नाटकों की कथावस्तु के आधार भारतीय इतिहास और पुराण बनाये हैं। उनके कथानकों के घटनाक्रम में निश्चयात्मकता है। प्रायः कथानक उद्देश्य-प्रधान हैं। कथावस्तु को रोचक, प्रभावशाली और स्वाभाविक बनाने के लिये पाश्चात्य विद्वान् विरोध और संघर्ष को कथावस्तु का प्राण मानते हैं पर भारतीय पद्धति में उद्देश्य और सफलता को ही सर्वोपरि समझा जाता है। भट्ट जी के नाटकों की कथावस्तु में दोनों का समन्वय मिलता है। वे अपने नाटकों में दो परस्पर विरोधी धाराएँ प्रस्तुत करते हैं। इन्हीं दोनों के विरोध के सहयोग से कथावस्तु का विकास हुआ है। इसी प्रकार नाटक कार ने कथावस्तु में आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं का निर्वाह किया है। आदि से अन्त तक चलने वाली कथा 'आधिकारिक' होती है और नायक को फल प्राप्ति भी इसी कथा के माध्यम से होती है। 'प्रासंगिक कथा' अधिकारिक कथा की सहायिका होती है। भट्ट जी ने अपने नाटकों में कही इनको अनिवार्य रूप से अपनाया है, कहीं बिल्कुल नहीं। ऐतिहासिक नाटकों को मूल कथा के साथ अनेक उपकथाएँ भी चलती हैं, फिर भी अन्य नाटककारों के सदृश कथाओं की भीड़ भट्ट जी के नाटकों में नहीं मिलती।

'दाहर अथवा सिंध पतन' में दाहर के शौर्य की कहानी आधिकारिक है, सूर्य देवी और परमाल देवी की अकथ्य वीरता के प्रमाण और मानू के दस्युओं से सम्बन्धित विचार प्रासंगिक कथा के अन्तर्गत आते है। 'शक विजय' में शकों की जय और पराजय की मूल कथा के साथ-साथ अन्य उपकथाएँ भी चलती हैं। गन्धर्वसेन के कार्य, काल का और विदेशी शक हूणों से सम्बन्धित घटनाएँ, सरस्वती और सौम्या के पारस्परिक संवाद आदि प्रासंगिक कथा के अन्तर्गत आते हैं।

'विक्रमादित्य' नाटक में विक्रमादित्य के जीवन संघर्ष की कहांनी के अतिरिक्त चन्द्रलेखा एवं अनंगमुद्रा, चण्डांशुक और चन्द्रकेतु के कृत्य प्रासंगिक कथा के अन्तर्गत ही आते हैं। 'मुक्तिदूत' में सिद्धार्थ की कथा आधिकारिक है और देवदत्त का हंस पर विवाद आदि की घटनाएँ प्रासंगिक हैं। पौराणिक नाटक 'अम्बा' में 'सगर-विजय' की अपेक्षा प्रासंगिक कथा प्रायः नहीं के बराबर है सामाजिक नाटकों में तो प्रासंगिक कथा का सर्वत्र अभाव है। कुछ समस्याएँ उठाई गई है जो कथावस्तु के उद्देश्य में सहायिका का कार्य कर रही है। 'कमला', 'अन्तहीन अन्त', 'पार्वती, और 'नया समाज' की उपकथाएँ समाज की झाँकियाँ चित्रित करने के साथ-साथ मूल-कथा को रोचक, गतिशील एव उद्देश्य पूर्ण बनाने के प्रयोजन से हैं।

नाटक की कथावस्तु के लिए नाटकीय व्यापार का आयोजन नितान्त आवश्यक है। कथा-विन्यास में अर्थ-प्रकृति, कार्यावस्था, सन्धि आदि का समन्वय अपेक्षित है पर भट्ट जी अपने नाटकों में इनके निर्वाह में पूर्ण विफल रहे और तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं में ही उलझ कर रह गए हैं। प्रसाद जी ने भारतीय मनीषियों द्वारा प्रस्तावित नियमों का पालन किया है। इसीलिए भट्ट जी नाटकों के क्षेत्र मे प्रसाद जी से भिन्न परम्परा में जा पड़ते है। भट्ट जी ने अपने नाटकों में न तो कार्यावस्थाओं, आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, और फलागम का निर्वाह किया है और न ही कहीं अर्थ—प्रकृतियाँ, बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य की स्पष्ट प्रतिफलितता दिखायी है, फिर सन्धियों—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, निर्वहण की तो बात ही दूर की ठहरी।

उन्होंने पाश्चात्य शैली के अनुसार पाँच कार्यावस्थाओं का पालन किया है। ये कार्यावस्थायें प्रारम्भ, विकास, चरम सीमा, उतार और अन्त हैं। प्रारम्भ में संघर्षमयी घटना का आरम्भ होता है। यह संघर्ष या द्वन्द्व दो विभिन्न आदर्शों, उद्देश्यों, दलों, सिद्धान्तों आदि किसी का भी हो सकता है। विकास मे पारस्परिक विरोधी घटनाओं के घटित होने से वृद्धि होती है। पात्रों अथवा आदर्शों का संघर्ष एक निश्चित सीमा तक बढ़ जाता है। चरम सीमा में किसी एक पक्ष की सफलता के लक्षण प्रकट होते हैं। उतार में यह विजय निश्चित हो जाती है और अन्त में सम्पूर्ण संघर्ष का अन्त हो जाता है।

भट्ट जी के सभी ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक और राजनीतिक नाटकों में कार्यावस्थाओं का यही क्रम है। पर लेखक इनका निर्वाह बँधी परिपाटी से नहीं करता। वे नाटकीयता के प्रतिपादन हेतु आरम्भ, मध्य और अन्त पर अधिक जोर-देते हैं। संक्षेप में शास्त्रीय पक्ष की अपेक्षा समष्टि प्रभाव की ओर ही भट्ट जी का विशेष आग्रह रहा है।

नाटक की कथावस्तु को अभिनय की दृष्टि से दो रूपों में विभक्त किया जाता है—दृश्य और सूच्य। दृश्य कथावस्तु रंगमंच पर अभिनीत होती है। सूच्य वस्तु की रंगमंच पर सूचना भर दी जाती है। सूच्य वस्तु की सूचना रंगमंच पर विष्कम्भक,

चूलिका, अंकास्य, अंकावतार और प्रवेशक द्वारा दे दी जाती है। भट्ट जी के आरम्भिक नाटक 'विक्रमादित्य' में इसकी थोड़ी-सी झलक उपलब्ध होती है किन्तु परवर्ती रचनाओं में वह भी नहीं। क्योंकि भट्ट जी ने रंगमंच की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए ही नाटकों का सृजन किया है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कथावस्तु की दृष्टि से भट्ट जी के नाटक आधुनिकता लिये हुए और सफल हैं।

पात्र

नाटककार का मूल उद्देश्य मानव के मनोभावों को यथावत् चित्रित करना है। वस्तु-विन्यास में पात्रों का समुचित विनियोग करने के पश्चात् ही घटनाओं मे सम्पन्नता सम्भव है। एक के अभाव में दूसरे का विन्यास सम्भव नही क्योंकि वस्तु में पात्रों का चरित्र गुम्फित रहता है और चरित्रों के गुम्फन से वस्तु का निर्मिलीकरण होता है। भट्ट जी पात्रों के सम्बन्ध में विशेष सावधान रहे हैं। पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों के पात्र अपने परम्परागत प्रसिद्ध रूपों में ही चित्रित हुए हैं। नायक-नायिका उदात्त भावों के पोषक हैं। खलनायक कपटी, विश्वासघाती और आत्मश्लाघी हैं। लेखक की सहानुभूति उदात्त भाव वाले पात्रों के साथ रही है और अनुदात्त पात्रों को सर्वत्र पराजित और परास्त होना पड़ा है। नाटकों में पात्रों की संख्या भी काफी बढ़ जाती है और कुछ पात्र तो रंगमंच पर अनावश्यक रूप से आकर सदैव के लिए विलीन हो जाते हैं। जब पात्र नाटककार के बस में नहीं आते तो उन्हें आत्महत्या द्वारा इस लोक से सदैव के लिए विदा कर देता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह बात समुचित प्रतीत नहीं होती है। भट्ट जी ने छाया पात्रों का सर्वत्र नियोजन किया है। पर नाटकीयता और अभिनय की दृष्टि से यह तर्कसगत नहीं है कि छाया रंगमंच पर अपना कौतुक दिखा सकेगी।

पौराणिक नाटकों के पात्र

नाटककार ने पौराणिक नाटकों में पात्र चुन-चुनकर लिये हैं। 'विद्रोहिणी अम्बा', 'सगर-विजय' आदि नाटकों के पात्र अपनी उलझनों को सुलझाने में ही व्यस्त हैं। परन्तु इस पर भी नाटकों में पौराणिक वातावरण में अस्वाभाविकता नहीं आने पाई है। 'विद्रोहिणी अम्बा' मे आज की नारी समस्याओं का विशद चित्रण है। नाटक में अम्बा का व्यक्तित्व सर्वत्र अभिव्याप्त हो रहा है। कभी शाल्व के तिरस्कृत होने पर वह उसे फटकार रही है तो कभी परशुराम से भीष्म से प्रतिशोध लेने का अनुनय कर रही है। कहीं शिवोपासना में लीन है तो कहीं शिखण्डी बनकर भीष्म के प्राण लेना चाहती है। इस नाटक में अम्बालिका, अम्बिका और सत्यवती के मानस-द्वन्द्व का भी भावमय चित्रण किया गया है। नारी पात्रों के अतिरिक्त पुरुष पात्र भीष्म, शान्तनु और शाल्व उसी चिरन्तन पुरुषत्व दम्भ के प्रतीक हैं जो नारी को पुरुष की उपभोग्या मात्र मानता है। पौराणिक नाटकों में पुरुष पात्रों के चरित्र नारी

पात्रों के चरित्र के सम्मुख गौण और महत्त्वहीन प्रतीत होते हैं। मृत्यु के समय भीष्म की उद्विग्नता क्रमशः बढ़ती जाती है। व्यास अन्य व्यक्तियों से पूछे जाने पर उनके क्षोभ का कारण इस प्रकार व्यक्त करते है :

"काशीराज की कन्या अम्बा की प्रतिहिंसा का फल भीष्म को भोगना पड़ रहा है। एक स्त्री के अनादर का फल यह महाभारत हुआ और दूसरी स्त्री के अनादर का फल भीष्म की मृत्यु।"

इस नाटक में सत्यवती का चरित्र एक धूमिल छाया के सदृश है। पर नाटककार ने इस चरित्र को 'मत्स्यगन्धा' भाव-नाट्य में बड़े कौशल के साथ निरूपित किया है।

'सगर-विजय' मे बाहु, सगर, दुर्दम, विशालाक्षी और बर्हि आदि मुख्य पात्र हैं। बाहु में धीरोदात्त नायक के सभी गुण विद्यमान हैं। वह स्वार्थ की अपेक्षा देश-कर्त्तव्य पर अधिक जोर देता है : "ओह ! बड़ी पीडा है। किन्तु वीर पुरुष को पीड़ा में भी सुख मिलता है।...मैं शक्ति भर ..लडूँगा।" वन मे विक्षिप्ता-वस्था में पड़े हुए उसके हृदय में दार्शनिक विचारों की उद्भावना हो रही है : "विचित्र हैं सब, विचित्र...कभी सिंहासन, कभी वन। कभी स्वस्थ, कभी रोग। चलूँ। उठकर रानी को देखूँ। वह कोमलांगी......तुम, तुम। क्या तुम दुर्दम के आदमी हो ? तो सुनो, अन्याय से तुम्हारे राजा ने युद्ध किया।" नाटक मे बाहु का रूप एक वीर, साहसी, विश्वसनीय और देशभक्त के रूप मे हमारे सामने आता है।

नाटक का नायक सगर है, जिसने अपने शत्रु हैहयवंशी दुर्दम को ही नहीं परास्त किया है प्रत्युत दिग्विजय भी की है। सगर में भी सभी उदात्त गुण विद्यमान हैं। वह राजा के कर्त्तव्य से पूर्णतः परिचित है : "राजा प्रजा की रक्षा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वह केवल प्रजा का मूर्त स्वर है, इसलिए राजा बनने से पूर्व मैंने निश्चय किया है कि मैं प्रजा में शान्ति स्थापित करूँ।" परन्तु माँ की मृत्यु का दुःखद समाचार सुनकर दुःखी मन से कहने लगता है : "मैं संसार में पितृविहीन उत्पन्न हुआ। मिथ्या की तरह आश्रयहीन, छाया, कंकाल की तरह मातृहीन होकर पोषित हुआ......एक ही आश्रय था मेरे स्नेह का, एक ही स्रोत था मेरे उल्लास का, एक ही मूर्ति थी मेरी साधना की—हा माता ! त्रिपुर, अब मैं अयोध्या न लौटूँगा...... मैं अयोध्या न जाऊँगा।" पर त्रिपुर की प्रेरणा से जीवन को संग्राम मानकर सगर कर्त्तव्यरत हो जाता है और दिग्विजय करके चक्रवर्ती सम्राट् बनता है। इस प्रकार सगर का चरित्र आश्रयहीनता, पौरुष एवं शौर्य और कर्त्तव्य की बलिवेदी पर सब कुछ निछावर करने की भावना से ओत-प्रोत है।

दुर्दम क्रूर, कठोर और महत्त्वाकांक्षी पात्र है। सम्राट् बनने की महत्त्वा-कांक्षा के कारण निरीह जनता का वध तक कर डालता है : "इस समय राज्य की नींव दृढ़ करने की आवश्यकता है...मैं हैहयवंश की यशोध्वजा अयोध्या के सिंहासन पर सदा के लिए स्थिर कर देना चाहता हूँ। इनको फाँसी पर चढ़ा दो।" इतना ही

नहीं कुछ और भी : "उसकी रानी को मैं पकड़ना चाहता हूँ। वह गर्भवती है। उसके गर्भ को नष्ट कर डालना चाहता हूँ। हैहयवंश के निष्कण्टक होने का यही एक उपाय है।" बर्हि के शब्दों द्वारा दुर्दम का चरित्र पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है : "सब जानती हूँ। खूब जानती हूँ। नीच, कृतघ्न, पापी कुत्ते कहीं के। कपट से विजय पाने वाले कभी उसकी रक्षा नहीं कर सकते।"

भट्ट जी ने नारी चरित्र-चित्रण में कमाल ही कर दिया है। 'सगर-विजय' नाटक में बर्हि प्रतिशोध और ईर्ष्या की अग्नि में जल रही है : "पाताल फोड़कर तुझे ढूँढ निकालूँगी विशालाक्षी ! तुझे अभिमान हो गया है। मेरे हृदय की आग में तुझे जलना होगा।"[८६] कुन्त के शब्दों में बर्हि का चरित्र स्पष्ट हो जाता है : "स्पर्धा, प्रतिहिंसा का इतना उग्र रूप......कभी न देखा था। गई, साँपिनी-सी फुफकारती, चोट खाई सिंहनी-सी।"[९०] बर्हि का चरित्र क्रोध, ईर्ष्या, प्रतिहिंसा और प्रतिशोध की साक्षात् प्रतिमा है। ठीक इसके विपरीत विशालाक्षी का चरित्र प्रेम, दया, करुणा की साकार प्रतिमा है। वह बर्हि की मृत्यु पर दुःखी होकर कहती है : "हा बहिन ! तुमने अकारण द्वेष किया था। मैंने तो कुछ भी नहीं बिगाड़ा। कभी तुम्हारा विरोध नहीं किया।"[९१]

और्व ऋषि के सती न होने के लिए कहने पर वह अधीर होकर रोती हुई कहती है : "विधाता, तुझसे मेरा जलना भी न देखा गया। मैं गर्भवती हूँ पर मैं आँसुओं के अथाह सागर में बहती हुई बिना पतवार की, बिना मल्लाह की, बिना दिशा-ज्ञान की, बिना किनारे की नाव भी तो हूँ।...अब मैं क्या करूँ ?" लेखक ने विशालाक्षी के चरित्र-चित्रण में संघर्ष को जितना सुन्दर, आकर्षक रूप दिया है वैसा कदाचित् ही अन्यत्र किसी नाटक में उपलब्ध हो।

निष्कर्ष

संक्षेप में भट्ट जी के पौराणिक पात्र आधुनिक युग की समस्याओं और परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व-सा करते हैं और वर्तमान जीवन की अन्तरात्मा की पुकार उनकी वाणी से फूट-फूट कर निकल रही है। इनमें महान् पात्रों का गौरव भी अक्षुण्ण रखा गया है। इसके अतिरिक्त नाटककार पुराणों से ऐसे पात्र खोजकर लाया है, जिनका जीवन रहस्यमयी विषमताओं और वर्तमान समाज की पीड़ा और दुःखों से दुःखी है। इन पात्रों का जीवन वेदना और अश्रुओं से सिक्त है, पर ये प्रत्येक स्थिति में दृढ़ता और साहस से कार्य करने में तन्मय है। कर्त्तव्य पर आरूढ़ रहना ही मानों इनके जीवन का ध्येय है। उनके ये पात्र कहीं-कहीं जीवन की उलझनों को सुलझाने में ही लगे हुए हैं। वे जन-जीवन की समस्याओं, संघर्ष, राष्ट्रीय जागरण

८६ 'सगर-विजय', पृ० १६।
९० वही, पृ० ५१।
९१ वही, पृ० १०२।

तथा सामाजिक मूढ़ताओं को दूर करने में कहीं-कहीं तल्लीन दृष्टिगोचर होते हैं। वास्तव में वे धर्म, समाज, मानवता के पोषक हैं।

ऐतिहासिक पात्र

भट्ट जी के ऐतिहासिक नाटकों में देश के पतन की हृदय-विदारक स्थिति के साथ-साथ उदात्त चरित्रों की उद्भावना भी हुई है। 'मुक्तिदूत' का नायक सिद्धार्थ धीर, प्रशान्त है। नाटक में सिद्धार्थ प्रारम्भ से ही विचार-प्रवण और गम्भीर दृष्टिगोचर होता है। वह साधुक द्वारा की गई मृगया से घायल मृगशावक को देखकर कहता है :

"कितना निरीह पशु है देवदत्त ! तुमने बुरा किया देवदत्त (उसके शरीर पर हाथ फेरते हुए) इसे थोड़ा जल दो. ....ऐसे पशुओं को मारने मे कोई वीरता नहीं।"[६२]

स्वभाव से सिद्धार्थ दार्शनिक है। इसीलिए वह कहता है : "शास्त्र कहते है : ईश्वर सब कुछ करता है। वह ईश्वर कैसा है जो अपने बच्चो को दुःख देता है...?"[६३]

डा० सत्येन्द्र ने कहा है : "नाटककार ने अपनी कुशल लेखनी से आत्म-केन्द्रित सिद्धार्थ को असाधारण विशेषता से मण्डित दिखाया है कि उसका स्वरूप उसके आदर्श के समक्ष विद्रूप हो गया है......कही वह विभेदों मे आस्था रखता है। भगवान् बुद्ध का चरित्र विभेद की पराकाष्ठा है। उसके समक्ष समस्त मानव स्वरूप हीन-क्षीण हो गया।"[६४] सिद्धार्थ के चरित्र से सम्पूर्ण नाटक प्रतिबिम्बित हो रहा है।

दूसरा प्रमुख पात्र सिद्धार्थ का पिता शुद्धोधन है। इनमे राजत्व की अपेक्षा वात्सल्य की भावना प्रबल है। जैसे—"मेरी आँखों का प्रकाश, मेरे हृदय का बल, यह सिद्धार्थ है। मुझे उसके सामने न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म, ज्ञान-विज्ञान कुछ नहीं सूझता। मेरे जीवन का एकमात्र सूत्र यह युवराज है।"[६५]

सिद्धार्थ की पत्नी गोपा भी नाटक में रूप, कोमलता, शील, सौन्दर्य एवं गृहिणी आदि गुणों की प्रतिमा के रूप में दृष्टिगोचर होती है। एक ओर वह स्नेह से आप्लावित कुलवधू है और दूसरी ओर कर्त्तव्यरत माता भी है। उसके जीवन की एक कामना है—"इस जीवन की एक साध है—उनका दर्शन। वे मेरे हृदय की प्रतिभा है। मेरे आँसुओं के दृढ़ विश्वास है सुकेशी, वे महान् हैं मैं तुच्छ हूँ। वे प्रभु हैं

६२ 'मुक्तिदूत', पृ० ६।
६३ वही, पृ० ३६।
६४ 'हिन्दी एकांकी', पृ० ५१।
६५ 'मुक्तिदूत', पृ० ४२।

मैं सेविका...।"[९६] बस यही गोपा का चरित्र है।

नाटक में अन्य पात्र देवदत्त, साधुक, आकाशकालाय, बिम्बसार, राहुल, सुकेशी, गौतमी और इसी प्रकार के अनेक अन्य पात्र हैं। पर ये सब पात्र नाटक में नाम मात्र को रंगमंच पर आये हैं। इनके चरित्र का विकास कदाचित् नहीं हो सका है।

'शक-विजय' में गन्धर्वसेन, कालकाचार्य, वरद, सरस्वती तथा मंखलिपुत्र आदि प्रमुख पात्र हैं। गन्धर्वसेन धीरोदात्त राजा है। वह सच्चरित्र होते हुए भी प्रजा का विश्वास प्राप्त न कर सका। सरस्वती के शब्दों से ही महाराज का चरित्र स्पष्ट हो जाता है : "किन्तु जिन्होंने मुझे बन्दी किया है वे तो कभी नहीं आये? क्यों नहीं आते? क्या यह मिथ्या प्रवाद है कि महाराज कामुक हैं? मैं महाराज से मिलना चाहती हूँ। क्या पत्र लिखूँ? पत्र, यह मुझसे नहीं हो सकेगा, पर-पुरुष को......अरे।......नहीं, नहीं...... ।"[९७]

इस नाटक में कालकाचार्य का चरित्र भी कलात्मक है। आचार्य कालक नैमित्त ज्ञानी होते हुए भी राग-द्वेष से ऊँचे न उठ सके। अपनी भगिनी सरस्वती के बन्दी होने की पीडा से आहत होकर कहते हैं : "जो हो गया हो जाने दूँ। मैं राजा का बिगाड़ भी क्या सकता हूँ। क्यों, क्यों, मैं क्षत्रिय नहीं हूँ? मैं दण्ड दूँगा। मैं अन्य राजाओं की सहायता लेकर अवन्ती नरेश को भस्म कर दूँगा।"[९८]

गन्धर्वसेन की मृत्यु के पश्चात् और सरस्वती के आत्मघात कर लेने पर यह नैमित्त ज्ञानी पश्चात्ताप करता हुआ कहता है : "मैंने कितना बड़ा पाप किया! धर्म के नाम पर देश को नरक बना दिया। मैं विभीषण बन गया। मैं पापी हूँ—पापी! मैंने पाप किया है।"[९९] अन्त में आचार्य कालक आत्महत्या करके अपनी भूल का प्रायश्चित्त करते हैं।

इस नाटक में सरस्वती नारी के भव्य, कोमल, सुन्दर रूप और उदात्त भावों की पोषिका है। सरस्वती का सौन्दर्य अवन्ती के जीवन में एक हलचल और राजनीतिक बवण्डर था। वह एक साधिका के रूप में सम्मुख आती है। सरस्वती के जीवन में प्रतिहिंसा और प्रतिशोध की अग्नि तो भभकती है, पर देश-प्रेम पर सब कुछ निछावर कर देती है : "मुझे ज्ञात नहीं था कि इतना रक्तपात केवल मेरे लिए होगा, इतना नर-संहार केवल मेरे लिए होगा। एक विदेशी शक्ति को आचार्य लेकर आएँगे। आज हमारा हिंसा धर्म कहाँ गया? भगवान् ज्ञातृपुत्र, मुझे सहनशक्ति दो। आचार्य, तुम तो परम जैन थे। क्या तुम्हें यह अधर्म दिखाई नहीं पड़ा?"[१००]

९६ वही, पृ० ९०।
९७ 'शक-विजय', पृ० ७४–७५।
९८ वही, पृ० ४३।
९९ वही, पृ० १०४।
१०० वही, पृ० ८६।

अन्त में शकों के अत्याचारों से पीड़ित होकर वह आत्महत्या कर लेती है।

इस नाटक में वरद का चरित्र भी एक वीर, साहसी और शकों को परास्त करने वाले के रूप में चित्रित हुआ है। जैसे—"मेरा निश्चय दृढ़ है। मैं एक बार अवन्ती जाना चाहता हूँ। सुना है कल प्रातःकाल साहानुसाहि का अभिषेक है। आज्ञा दीजिए। मैं वन में जाकर क्या करूँगा? मैं भारत के भार शकराज तथा अन्य विश्वासघातियों को एक बार देखना चाहता हूँ। मेरा मार्ग स्पष्ट हो गया है।"[१०१]

अन्त में वरद शकों को परास्त करने के पश्चात् मंखलिपुत्र से कहता है: "गुरुदेव, आपके आशीर्वाद से हम शकों को पराजित करने में सफल हुए हैं। सभ्यो, यह वन्दनीय आचार्य का प्रभाव है, उन्हीं की प्रेरणा है जिन्होने मुझमे अदम्य शक्ति, अनथक उत्साह भर दिया।"[१०२]

एक योगी मंखलिपुत्र का चरित्र उन्हीं के शब्दो मे स्पष्ट हो जाता है: "वत्स, मैं भगवान् नहीं हूँ। मेरी जय वास्तविक जय नहीं है, यह इस वीरभोग्या वेद-वेदार्थ-जननी भारतमाता की जय है जिसके वात्सल्य ने एक बार फिर आपको सुसंगठित कर दिया है। पुत्र वरद! मैं आज देश से शकों का निर्वासन-प्रयत्न देख कर प्रसन्न हुआ हूँ। इसी दिन के लिए जीवित था, आज मेरी इच्छा पूर्ण हुई है। मैं अब पुनः हिमालय लौट रहा हूँ।"[१०३] ऐसे थे योगी मखलिपुत्र।

इस नाटक में वीरभद्र, अमात्य, सागर, बुद्धिव्रत, शर्वर, चित्रगुप्त, आदि पात्र भी हैं। पर ये नाम गिनाने वाले पात्र हैं। हाँ, शकराज का चरित्र शकों के चरित्र और जीवन-दर्शन पर अवश्य प्रकाश डाल रहा है।

'विक्रमादित्य' नाटक का नायक स्वयं विक्रमादित्य एक वीर पुरुष है। वह सभी उदात्त गुणों से अलंकृत है। पर स्वभाव से दार्शनिक है: "रात-दिन की चर्खी पर ओटी जाने वाली जीवन की कला-रूपी रुई क्षण-क्षण घटती है।"[१०४] पर कर्त्तव्य के प्रति जागरूक है: "कर्त्तव्य-पालन के लिए हमें उस विद्रोह को दबाना ही होगा।"[१०५]

सोमेश्वर के विश्वासघात पर दुःखी होकर कहता है: "सोमेश्वर भाई, तुमने भाई के नाते पर कुठाराघात करके दुष्ट चेंगी का साथ दिया। भाई का भाई से भंयकर युद्ध, भ्रातृ-विद्रोह, क्या इस विद्रोह वह्नि में मैं स्वयं नही जल रहा हूँ......भाग्य ने मुझे बचा क्यों लिया? वही शत्रुओं के षड्यन्त्र में मैं पिस क्यों न गया?"[१०६]

नाटक में प्रतिनायक के रूप में सोमेश्वर का चरित्र दर्शनीय है: "मेरी

१०१ वही, पृ० ८८।
१०२ वही, पृ० १११–१२।
१०३ वही, पृ० ११२।
१०४ 'विक्रमादित्य', पृ० १२।
१०५ वही, पृ० ७।
१०६ वही, पृ० ७३।

प्रतिहिंसा की अग्नि में जब तक उसका विजय और यशोर्जन रूप अमृत भस्म नहीं हो जाता जब तक हृदय में शान्ति की रागिणी अपना गायन न सुना सकेगी।''[१०७]

यह सोमेश्वर का चरित्र जो ईर्ष्या और प्रतिहिंसा की अग्नि में झुलस रहा है, इसमें दो पात्र चन्द्रकेतु, कूटनीतिज्ञ, विक्रमादित्य का पदच्युत सेनापति और चण्डांशुक सोमेश्वर का मन्त्री बड़े ही धूर्त हैं। जो सर्वत्र षड्यन्त्रों और विक्रम की मृत्यु में व्यस्त रहते हैं। शेष पात्र अपने ऐतिहासिक रूप और कथा के सहायक रूप में चित्रित हुए है।

पर नाटक में दो नारी पात्र अनंगमुद्रा और चन्द्रलेखा अत्यधिक महान् रूप लिए हैं। चन्द्रलेखा का चरित्र, भक्ति, प्रेम, भावुकता और कोमलता से ओत-प्रोत है : ''सखी अनंग, मेरी अभिलाषाओं के समुद्र में प्रियतम की देदीप्यमान प्रतिमा किस उमंग, किस प्रवाह से तैर रही है, यह मैं तुझे क्या बताऊँ ?''[१०८]

अन्त में ये दोनों सखियाँ विक्रमादित्य के जीवन हेतु अपने प्राणों को आहूत कर देती हैं। इनके इस अद्भुत त्याग ने इनके चरित्र में एक विशिष्ट गरिमा उद्दीप्त कर दी है।

'दाहर अथवा सिन्ध-पतन' में दाहर, जयशाह, मुहम्मद-बिन-कासिम, खलीफा, हज्जाज, भानू के अतिरिक्त सूर्य देवी एवं परमाल देवी दो भव्य और गौरव-शाली स्त्री पात्राएँ हैं। नाटक का नायक दाहर है जो उदात्त गुणों से अलंकृत है। युद्ध के समय कितनी वीरता से कहता है : ''आर्य लोग युद्ध से कभी नहीं डरते। युद्ध तो उनकी घुट्टी का रस है, जो कड़या होते हुए भी अन्त में लाभदायक है। एक नहीं हजार बार अरबी लोग आएँ, दाहर युद्ध से मुँह न मोड़ेगा।''[१०९] यह वीर अन्त में युद्ध में लड़ता हुआ ही अपने प्राणों की आहुति दे देता है।

जयशाह दाहर का पुत्र है। देशभक्ति, शौर्य एवं निर्भयता उसके वंशानुगत चारित्रिक गुण हैं। वह एक स्थान पर भानू से कहता है—''भानू, जिस प्रकार डाकू जीवन में तुमने नृशंसता, निर्दयता, क्रूरता, कठोरता के नियमों की, जो डाकू जीवन के अंग हैं, रक्षा की है, आज उसी दस्युता-शौर्य के सहारे, रुधिर-मनी पुष्करणी के सरोज बनकर अपनी वीरता और शौर्य के मकरन्द से समस्त सिन्ध रूप भ्रमर को चंचल कर दो भानू।''[११०] इससे जयशाह के साथ-साथ भानू के चरित्र का भी ज्ञान हो जाता है।

भट्ट जी ने मुहम्मद-बिन-कासिम के हृदय और बुद्धि का चित्रण बड़े कौशल के साथ किया है। वह सूर्य और परमाल को देखकर कहता है : ''गजब की खूबसूरती है। अगर सूर्य सूरज है तो परमाल चाँद है। ओह (कुछ सोचकर) बड़ी तेज औरत

[१०७] वही, पृ० ८-९।

[१०८] वही, पृ० २३।

[१०९] 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन', पृ० ९।

[११०] वही, पृ० ७९।

हैं। या खुदा, ये हिन्दू औरतें भी गजब की होती है!"[१११] खलीफा बगदाद का धार्मिक नेता था और हज़ाज खलीफा का सामन्त। इनके इसी रूप में नाटककार ने चरित्र अंकित किए हैं। शेष सब पुरुष पात्र गौण है।

हाँ, दाहर की दो कन्याओं सूर्य देवी और परमाल देवी का चरित्र अत्यधिक प्राणवान् और असीम त्याग और देशभक्ति से विलसित है। अन्त में हज़ाज को यह कहती हुई प्राणान्त कर लेती है: "तू क्या मारेगा? ले। (दोनों एक दूसरे के खंजर भोंक कर मरते हुए) मृत्यु हमारे लिए खेल है। प्रतिहिंसा पूर्ण हुई। इस वीभत्स काण्ड में, स्वर्णाक्षरों मे सिन्ध का बदला लिखा रहेगा।"[११२]

इस वीरता से प्रभावित होकर खलीफा भी बोल उठा—"ऐसा कभी नही देखा। कभी नही सुना। यह आदमियों का देश है। दाहर तूने अपनी मृत्यु का बदला ले लिया।"[११३] इस अनुपम बलिदान के कारण हमें परमाल और सूर्य के चरित्र के सम्मुख श्रद्धाभाव से झुक जाना पड़ता है।

भट्ट जी के ऐतिहासिक पात्र प्राय: परिस्थितियों से विक्षुब्ध हैं जो जीवन के घात-प्रतिघात और विषमताओं का नैतिक समाधान लेकर पाठकों के सम्मुख उपस्थित होते हैं। उन्होंने पात्रों के ऐतिहासिक स्वरूप की रक्षा करते हुए उन्हे मानवीय गुणो से सम्पृक्त रखा है। उनके उदात्त पात्रों में सभी उच्च गुण पाये जाते है। पुरुष पात्रों के समान स्त्रियाँ भी आदर्श गुणों से सम्पन्न हैं। वे वीरागनाएँ है जिनमे उदारता, त्याग, दूरदर्शिता, सहिष्णुता, सेवा-परायणता और निष्ठा आदि के गुण भरे पड़े हैं।

इनमें दूसरी तरह के पात्र देश-द्रोही, विश्वासघाती, स्वार्थी और छद्मवेशी हैं जिन्हें नाटक में कुछ स्थलों पर सफलता तो मिल जाती है, पर अन्ततोगत्वा निराशा, विफलता एवं पराजय का ही मुँह देखना पड़ता है। क्योंकि नाटककार को मानवीय उदात्त भावों से अधिक स्नेह था अस्तु उसने सर्वत्र उदात्त भावों की प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण रखा है। इसीलिए तामसिक मनोवृत्ति वाले पात्र आत्मग्लानि से दु:खी होकर आत्म-हत्या कर लेते हैं, या फिर हिमालय की कन्दराओं में तपस्या करने के लिए चले जाते हैं।

सामाजिक नाटकों के पात्र

भट्ट जी ने अपने सामाजिक नाटक 'कमला', 'अन्तहीन अन्त', 'पार्वती' और 'नया समाज' में भिन्न-भिन्न समस्याओं को उठाया और समाधान प्रस्तुत किया है। यह सब काम पात्र ही कर रहे हैं। 'कमला' नाटक का नायक देवनारायण सामन्त युगीन नारी-विषयक मनोवृत्ति का सच्चा प्रतिनिधित्व कर रहा है। जैसे:

[१११] वही, पृ० ९६।
[११२] वही, पृ० १०७।
[११३] वही, पृ० १०७।

"जमींदार मनुष्य है, स्त्री विलास की सामाग्री है। वह पुरुष के यदि वह धनी है तो उपभोग की वस्तु है।"[११४]

"आज इस युग में औरत नकेल डालकर रखने की चीज होती जा रही है।"[११५]

नाटक का दूसरा पात्र कमला है। जो दुर्भाग्य से देवनारायण की पत्नी भी है। वह सुशिक्षित, सरल, सहृदय और विदुषी भी है। समाज-सेवा अपना परम धर्म समझती है। इसीलिए शशिकुमार के सम्बन्ध में अनाथालय के स्वामी को कह देती है : "तुम इसे नहीं ले जा सकते। जाओ, खबरदार जो हाथ बढ़ाया...... नहीं, यह लड़का मेरे पास ही रहेगा। मैं इन राक्षसों के हाथों में इसे नहीं पड़ने दूँगी।"[११६]

अन्त में निराश होकर नदी में डूबकर मर जाती है। 'कमला' नाटक का एक अन्य पात्र विश्वनारायण है जो प्रण का पक्का, धन की उपेक्षा करने वाला, सहृदय एवं सहानुभूति से परिपूर्ण है। वह भावुक मन वाला व्यक्ति होते हुए भी अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक रहने वाला व्यक्ति है। 'उमा' का जीवन प्रेम की अदम्य लालसा का प्रतीक है। उसके मन में सदैव समाज के प्रति आक्रोश के भाव भरे रहते हैं। माधवी शासन की प्रतिमूर्ति है। वह जलते हुए दीपक की शिखा की भाँति हृदय में ईर्ष्या, द्वेष का धुआँ और विष लिये सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। इस नाटक के शेष पात्र प्रायः गौण हैं।

'पार्वती' नाटक में पार्वती, परमानन्द, गुलाब और महरी प्रमुख पात्र हैं। शेष पात्र नाटक में झलक भर देने के लिए आते हैं। 'पार्वती' नाटक की प्रमुख पात्र स्वयं पार्वती-परमानन्द की माँ है जो निर्धना और दरिद्रा है। जिसका जीवन मजदूरी के आश्रय पर ही चल रहा था। पार्वती का चरित्र उसी के शब्दों से स्पष्ट है : "मैं क्यों गई ? क्यों गई...मैं ? यहीं मरी रहती तो क्या बुरा था ? जैसे करती आई हूँ, मजदूरी करती, लोगों का आटा पीसती, बर्तन माँजती, क्या करूँ ?"[११७]

इसका पुत्र परमानन्द सीधा-सादा ईमानदार लड़का है, "मुझे मेज पर बैठ कर खाने का अभ्यास नहीं है। मैं तो रसोई में पटले पर बैठकर खाना पसन्द करता हूँ। यही हमारी भारतीय पद्धति है।"[११८] इसके आगे भी : "मैं सोचता हूँ यदि पढ़े-लिखे समझदार हमीं खाने और बेईमानी करने लगेंगे तो बाकी लोगों का क्या होगा ? हमें इस देश को उन्नत, मानसिक रूप में स्वस्थ बनाना होगा। चरित्र से देश बनते हैं और उन्नति करते हैं।...फिर मैं जो सेवा का भाव लेकर आया हूँ वह

११४ 'कमला', पृ० ३।
११५ वही, पृ० ३।
११६ वही, पृ० ६५।
११७ 'पार्वती', पृ० ६७।
११८ वही, पृ० १४।

भी नहीं रहेगा।"[११९]

परमानन्द की पत्नी गुलाब ठीक इसके विपरीत है, जिसे धनी पिता की कन्या होने का दर्प सदैव दम्भी बनाये रखता है। गुलाब की पड़ोसन रीता के शब्दों से ही गुलाब का चरित्र पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है :

"विचित्र नारी है ! बाप के घर के सिवा उसके सामने कोई घर नहीं है। लगता है जैसे अविकसित मन में कुछ भ्रान्तियाँ सिद्धान्त बन गये हैं। मिथ्या आडम्बर सत्य बन कर इसे सता रहे है। जिन लड़कियो की शिक्षा मे वास्तविकता नही होती उनका यही हाल होता है। चमक-दमक के साथ पश्चिमी देशों के अवगुण इसके कण्ठहार हो गये हैं। खूब है, बहुत पढी भी नहीं है, लगता है जैसे इसका वंश अभी-अभी रुपये के बल पर बड़ा बना है, विद्या योग्यता से नही। खूब है।"[१२०]

भट्ट जी ने गुलाब की माँ सौभाग्यवती को भी पाठको के सम्मुख ला दिया, ताकि दर्शक और पाठक यह अनुमान लगा लें कि गुलाब के मन पर किसकी छाया का चित्र अंकित है। अनुभूति चक्रवर्ती परमानन्द का मित्र है, जो क्लब में जाने के लिए बुलाने आता है पर अपने छ: बच्चों का राग अलापने लगता है। बस यही चक्रवर्ती का नाटक में कार्य है।

शेष सम्पूरन (परमानन्द का चाचा) और बहू (सम्पूरन की पत्नी), रामसहाय, हेडमास्टर और इन्सपैक्टर की चर्चा मात्र होती है। ये नाटक में केवल झलक देने भर के लिए आते हैं। भट्ट जी के इस नाटक में स्पष्टत: दो धाराएँ बह रही हैं—एक पाश्चात्य वैभव के झूले में पेंग बढाने वाले लोगों की, जिन्हें बाह्याडम्बर, मिथ्या सम्वाद, दुरभिमान, स्वार्थ, भोग से निपटारा नही है, जिसमें गुलाब और गुलाब की मम्मी और पापा आते हैं ; दूसरी धारा में परमानन्द रीता, पार्वती और कुछ-कुछ महरी भी आती है, जिनके मन मे अतीत के प्रति निष्ठा है, जो अपने सांस्कृतिक विभव को तनिक भी नही छोड़ना चाहते। परिणामत: नाटक मे पूर्व की जीत और पश्चिम की पराजय स्पष्टत: निनादित हो रही है।

शेष लोग बीच के हैं, जिनका अपना कोई निश्चित मत नही है। इस नाटक में भट्ट जी ने समाज की विषमता, परिस्थितियों और ऊँच-नीच के भाव के साथ-साथ देशप्रेम का चित्र भी खींचा है। अमर्यादित कठिनाई आने पर मन में कैसा अन्तर्द्वन्द्व मचता है, इसका चित्रण भी नाटक में दो स्थलों पर आता है—परमानन्द के मन मे जब पार्वती गुलाब से अपमानित होकर घर से चली जाती है और पार्वती के मन में जब वह गुलाब से तिरस्कृत होकर टूटे-फूटे मकान में आकर पुन: वास करने लगती है। यह नाटक के दोनों स्थल बड़े ही सुन्दर है।

'अन्तहीन अन्त' सामाजिक विचार-प्रधान नाटक है। इसमें अनेक समस्याओं को नाटककार ने उठाया है और उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है। समस्त

११९ वही, पृ० ३६।
१२० वही, पृ० १६।

समस्याएँ कन्हैयालाल के भतीजे सूर्यकुमार के इर्द-गिर्द घूम रही है। मैनेजर की स्त्री के मुख से सूर्य का चरित्र स्पष्ट हो जाता है : "इस मैनेजर की स्त्री ! ये सब लोग मिलकर रुपये उड़ाते थे। जब सूर्य ने इनका भण्डा फोड़ने की धमकी दी तो चोरी के अपराध में उसे फँसवा कर जेल भिजवा दिया। इस बेईमान मैनेजर ने मन्त्री के साथ मिलकर खूब रुपया खाया।"[१२१] शेष सब पात्र कथानक को आगे बढ़ाने के सहायक रूप में प्रकट होते हैं। इसमें भी लेखक ने अन्त में तामसिक मनोवृत्तियों की पराजय और सात्विक मनोभावों की विजय दिखलाई है।

'नया समाज' नाटक के प्रमुख पात्र मनोहरसिंह, चन्दू, धीरू बाबू, कामना आदि हैं। शेष सब पात्र नाममात्र के हैं।

मनोहरसिंह जमींदारी की समाप्ति के बाद का जमींदार है। इसमें सभी जमींदार के गुण विद्यमान हैं। एक स्थान पर वह कामना से स्वयं कहता है, "जमींदारी गई तो गई, पर मैं अभी हूँ। मुझमें भी तो उन्हीं का खून है, जो जमींदार थे, जिन्होंने हिन्दुस्तान पर हुकूमत की। हुकूमत करना आसान नहीं है बेटी !"[१२२]

चन्दू मनोहर सिंह का लड़का है जो आधुनिक विचारों का पूर्णतः हिमायती है। समय पर अपने पिता को भी कह देता है : "और मैं आपका पुत्र। मैं पिता का पाप धो डालना चाहता हूँ।"[१२३]

कामना मनोहरसिंह की पुत्री है जिसमें सभी स्त्रियोचित दुर्बलता विद्यमान हैं :

"अनजान तूफान। कितनी पतली नाक है ! कलमी आम की फाँक-सी आँखें। जा, तू यहाँ से चला जा। चला जा। अब मत आना मेरे पास। मैं यह बरदाश्त नहीं कर सकती, जा।"[१२४]

धीरू एक क्लर्क है जिसकी शादी अन्त में मनोहर की पाप की कमाई रूपा से हो जाती है।

भट्ट जी के सामाजिक पात्र परिस्थितियों में पलने वाले हैं। पात्रों की गहराई जीवन की संवेदना से उत्पन्न होकर वातावरण को गम्भीर और अनुभूतिपूर्ण बना देती है। समस्यायें उनके भीतर से निकलती हैं और नाटक में व्याप्त हो जाती हैं। नाटककार इनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने लग जाता है। पात्र तर्क के आश्रय से प्रत्येक परिस्थिति को कुशलता से निभाते चलते हैं। सभी नाटकीय पात्र अपने में पूर्ण और सजीव हैं। भट्ट जी के चरित्र-चित्रण में यही सबसे बड़ी विशेषता है। सभी वर्ग के व्यक्तियों को इनके सामाजिक नाटकों में समुचित प्रति-

१२१ 'अन्तहीन अन्त', चौथा अंक, पृ० ८३।
१२२ 'नया समाज', पृ० २६।
१२३ वही, पृ० ६७।
१२४ वही, पृ० २१।

निधित्व मिला है।

राजनीतिक नाटक के पात्र

भट्ट जी ने 'क्रान्तिकारी' नाटक चरित्र-चित्रण की दृष्टि से नहीं लिखा है, अपितु युगीन राष्ट्रीय एवं राजनीतिक चेतना से प्रभावित होकर लिखा है। समस्त नाटक जैसे दिवाकर के बलिदान के लिए लिखा गया हो। वीणा और रेणु जैसे दिवाकर के लिए ही सब कुछ निछावर करने के लिए नियोजित की गई हो। नाटक में, सन्देह कितना घातक और बहुमत कितना निराधार और भ्रामक होता है, का सही-सही चित्रण किया गया है। भट्ट जी ने स्वयं कहा है : "मेरा 'क्रान्तिकारी' नाटक उसी सामूहिक राष्ट्रीय जागरण की एक झाँकी मात्र है, क्योंकि यह युग स्वयं अपने में कई छोटे-छोटे युगों को समेटे हुए है। मैंने इस नाटक मे प्रतीक रूप से वैसी सुगठित झाँकी देने का प्रयत्न किया है।"[१२५] वस्तुतः दिवाकर के रूप में लेखक ने भगतसिंह और चन्द्रशेखर आजाद की आत्मा को निरूपित किया है। नाटक में पात्रों का नियोजन तत्कालीन देशभक्तों की भावनाओं को प्रकट करने के लिए ही किया गया है।

मनोहर का अन्तर्द्वन्द्व मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सगत है। वह पहले गुप्त रूप से दिवाकर को शरण देता है, तत्पश्चात् अपनी पत्नी वीणा से सारा भेद खोल देता है।

भट्ट जी ने अपने नाटकों में रंक से लेकर राजा तक, बच्चे से लेकर बूढ़े तक, सामान्य व्यक्ति से लेकर देवता तक, मजदूर, किसान, दूकानदार, जमींदार, मध्यवर्गीय सभी लोगों को पात्र बनाया है और उनके चरित्र को सफलता के साथ अंकित भी किया है। पात्र-नियोजन और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भट्ट जी वास्तव में सफल नाटककार थे।

निष्कर्ष

भट्ट जी के नाटकों में दो विरोधी विचारधाराओं के पात्र मिलते हैं। एक वर्ग भारतीय अध्यात्म, संस्कृति, त्याग, तपस्या, उदारता, सहिष्णुता, सदाशयता का अनुयायी है तो दूसरा वर्ग छल-छिद्री, छद्मवेशी और धोखेबाजों का है। जिन्हें अर्थ और भोग अत्यधिक प्यारा है। पर ये नाटककार की कृपा से वंचित रहे हैं। इसी लिए इन्हें अन्त में दुर्गति को प्राप्त होना पड़ा है। यही दो वर्ग स्त्री पात्रों मे भी मिलते हैं। एक वर्ग धर्म, देश और स्त्रीत्व पर सब कुछ निछावर कर देने वाली स्त्रियों का है, जिसमें विशालाक्षी, चन्द्रलेखा, अनंगमुद्रा और सूर्यदेवी एवं परमालदेवी आती हैं और दूसरा बर्हि आदि का है जो प्रतिशोध और प्रतिहिंसा की अग्नि में झुलस रही हैं। पर नाटककार ने प्रायः सर्वत्र उदार भाव वाले पात्रों की ही विजय

१२५ 'क्रान्तिकारी'—दो शब्द, पृ० ७।

स्थापित की हैं। इससे मानवता को बल मिलता है। वास्तव में पात्रों के चरित्र-चित्रण द्वारा भी नाटककार ने मानवता को ही पुष्ट किया है।

कथोपकथन

प्राचीन आचार्यों ने कथोपकथन के तीन भेद किए हैं—नियतश्राव्य, सर्वश्राव्य और अश्राव्य या स्वगत कथन। भट्ट जी के नाटकों के कथोपकथन में जहाँ भाषा भावानुकूल हो गई है, वहाँ उन्होंने तीनों ही प्रणालियों को अपनाया है। नाट्य शास्त्र में संवादों के कई प्रयोजन बताए गए है, जैसे—संवाद विशेषत: अभीष्ट साधक हों, वस्तु संविधान में साधन रूप से सहायक हों, चरित्र-चित्रण में पूरा योग दें, सुगुम्फित और सारगर्भित हों, व्यावहारिक और यथार्थ हों, विषय की प्रकृति के अनुसार वेगयुक्त या मन्दगामी हों, संवाद रसानुकूल हों, इत्यादि।

उपर्युक्त सभी गुण भट्ट जी के नाटकों में विद्यमान हैं। कथोपकथन कथावस्तु को अग्रसर करने में और चरित्र-चित्रण में पूर्णतया सहयोगी हैं। वे सरल, संक्षिप्त, प्रभावोत्पादक, व्यंजक, स्वाभाविक, पात्रानुकूल और नाटकोचित हैं। हृदय का अन्तर्द्वन्द्व बड़ी रोचकता के साथ अभिव्यक्त किया है :

"महाराज इन स्वरों की साधना यदि एक बार भी बुझा सकते, इस हृदय को एक बार भी विलास की उत्तुंग ऊर्मियों में उँडेलकर मेरे जीवन की तूफानी धार में बहा सकते। पर तुम्हें क्या ? भोगो। भोगो।"[१२६]

भट्ट जी के कथोपकथन की शैली मनोवैज्ञानिक है। भाव और विषय के अनुसार धारावाहिकता बढ़ती जाती है। अभिनय की दृष्टि से कथोपकथन अत्यन्त नाटकोचित हैं :

बर्हि—डरपोक, कायर !

दुर्दम—मैं कायर हूँ ? (क्रोध से) मुझे कायर कहती है ? जानती है इसका क्या परिणाम होगा ?

बर्हि—(हँसकर) सब जानती हूँ। सब जानती हूँ। नीच कृतघ्न, पापी, कुत्ते कहीं के ? कपट से विजय पाने वाले कभी उसकी रक्षा नहीं कर सकते।

दुर्दम—(क्रोध से पैर पटक कर) इतना साहस ?

बर्हि—वह मुझे लेने कहीं जाना न पड़ा।

दुर्दम—मैं नीच हूँ ?

बर्हि—कायर।

दुर्दम—(घबराकर) क्या चाहती है ?

बर्हि—(उसी तरह हँसकर) मुझे बुलाया था। मुझे पकड़ने को सैनिक भेजे थे। मैं स्वयं आ गई।

१२६ 'सगर-विजय', पृ० २६।

दुर्दम—मैंने बुलाया था ? भयंकर, क्रूर ! उधर रह वहाँ ।[127]

लेखक मनुष्य के मनोभाव को स्पष्ट करने में अत्यधिक कुशल है :

एक नागरिक—अरे, अब तो चन्द्रलेखा हमारे ऊपर राज्य करेगी ।

दूसरा—हम कुछ नहीं जानते, जो हमारी जमीन माफ कर दे, वही राजा बने ।

तीसरा—और मुझे महल के सामने खाली मैदान मे घर बनवा दे ।

चौथा—मेरे यहाँ बाहर से आने वाले माल पर जो चुंगी न ले वही राजा बने ।[128]

'शक-विजय' में भी नाटकीय चुटीलापन है :

महामात्य—महाराज…… ..!

गन्धर्वसेन—ठहरो महामन्त्री, तुम भी अयोग्य हो ।

मखलिपुत्र—मेरा काम समाप्त हुआ ।

महामात्य—मुझे भी आज्ञा दीजिए ।

वरद—मैं योगिराज को अपमानित नही देख सकता । मै भी जाता हूँ । (खड़ा हो जाता है) राज्य के अशुभ दिन आ रहे हैं ।

गन्धर्वसेन—जाओ । सब चले जाओ । मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं है ।

वरद—मुझे ज्ञात हो रहा है कि अवन्ती के बुरे दिन आ रहे हैं । कालक चुप नहीं बैठेगा ।[129]

'दाहर अथवा सिन्ध-पतन' में भी यह नाटकीयता अक्षुण्ण है :

सूर्य—तुझे हमसे कुछ भी पूछने का अधिकार नहीं है, जा अपना काम………।

मालिक—(गुस्से से) इतनी हिम्मत, मुझे कुछ भी पूछने का अधिकार नहीं है ?

सूर्य—(एक लात मार कर पीछे धकेल देती है) मूर्ख, चल तो खलीफ़ा के पास, तेरी बोटी-बोटी न उड़वा दी तो बात क्या ?

मालिक—(खलीफ़ा का ख्याल आते ही घबराकर) न बहिन, भूल हुई, माफ करो ।[130]

भट्ट जी के कथोपकथनों में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे आधुनिकता लिये हुए हैं । उनके द्वारा हमारे जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है । जैसे—''मनुष्य जाति बडी निष्ठुर है, वह स्वार्थ से प्रेम करती है, वासना की पूजा करती है और सदा से अपनी आँखों की जलन को दूसरे की आँखों के पानी से

१२७ वही, पृ० ३८ ।

१२८ 'विक्रमादित्य', पृ० ४० ।

१२९ 'शक-विजय', पृ० ६७ ।

१३० 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन', पृ० ९८–९९ ।

बुझाती आई है ।"[131]

भट्ट जी ने अपने कथोपकथनों में सिद्धान्त वाक्य और मर्मस्पर्शी उक्तियों का भी प्रयोग किया है :

१. पुरुष और स्त्री संसार की गाड़ी के दो पहिये हैं ।[132]

२. मनुष्य की आकृति अन्तर का प्रतिबिम्ब है ।[133]

३. अभिमान पतन का सबसे ऊँचा शिखर और पाताल की उल्टी पीठ है ।[134]

४. अनुराग आत्मा का गुण है ।[135]

५. विचारों से ही मनुष्य का निर्माण होता है ।[136]

६. पाप पाताल से भी बोलता है ।[137]

७. गरीबी मूर्खता की जननी है ।[138]

८. असफलता मनुष्य की कमजोरी है ।[139]

भट्ट जी के सामाजिक और ऐतिहासिक नाटकों में कथोपकथन संक्षिप्त, सरल, विचारानुकूल, स्वाभाविकता और चरित्र को प्रकट करने में सक्षम हैं। सरदार के शब्दों में दाहर का चरित्र दर्शनीय है :

"तुम क्या जानो, महाराज दाहर कितने प्रजारक्षक हैं, ज्ञानी और वीर हैं। उनके राज्य में शेर और बकरी एक घाट पानी पीते हैं ।"[140]

'क्रान्तिकारी' नाटक के कथोपकथन की वक्रता, वैदग्ध्य ने नाटक को सजीव बना डाला है, जैसे :

राजेन्द्र—बड़ी कठिन समस्या है। दिवाकर दा कहते हैं जो कुछ हुआ है उसके लिए वह उत्तरदायी हैं। क्या हम लोग विश्वास कर लें ?

नीलूदा—यह प्रश्न दिवाकर दादा का नहीं है। एक व्यक्ति का है। व्यक्ति के गुण-दोषों के अनुसार ही हमे दण्ड देना होगा।

यासीन—मैं नीलूदा से सहमत हूँ। उनके ऊपर विश्वास करने का अर्थ है हमारी सबकी मौत।

[131] 'विद्रोहिणी अम्बा', पृ० ४२ ।
[132] 'वही', पृ० ३० ।
[133] 'सगर-विजय', पृ० १२ ।
[134] 'वही', पृ० ६३ ।
[135] 'विक्रमादित्य', पृ० ३० ।
[136] 'मुक्ति-दूत', पृ० २३ ।
[137] 'अन्तहीन अन्त', पृ० १५ ।
[138] 'पार्वती', पृ० २३ ।
[139] 'कमला', पृ० ३५ ।
[140] 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन', पृ० ५ ।

स्वामी—मैं समझता हूँ दिवाकर दादा के मनोहर के यहाँ रहने की अपेक्षा वीणा को पार्टी में बिना आज्ञा शामिल करना भयंकर विद्रोह है। उस पर किसी तरह विश्वास नही किया जा सकता।

नीलूदा—आप ठीक कहते हैं।

स्वामी—क्या वीणा की परीक्षा लेने तक मामले को स्थगित नहीं किया जा सकता ?

यासीन—तब तक हम लोगों की समाप्ति हो गई तो ?

नीलूदा—मेरा मत है अनुशासन की दृष्टि से उन्हें मृत्यु-दण्ड दिया जाना चाहिए।[१४१]

भट्ट जी के सभी नाटकों के संवाद प्राय: प्रभावोत्पादक हैं। उनके संवादों में पर्याप्त सजीवता है, फिर भी कहीं-कही अनावश्यक रूप से लम्बे हो गये हैं, जो घटना-व्यापार और नाटकीयता को आघात पहुँचाते हैं, यथा—'विक्रमादित्य' नाटक में दूसरे दृश्य में क्रीडासर के जंगल में बैठे हुए महाराज सोमेश्वर का एक लम्बा भाषण और तीसरे दृश्य में महाराज तुंगभद्रा के किनारे टहलते हुए गाते-गाते एक लम्बी वार्ता कह जाते हैं। 'शक-विजय' में भी कहीं-कहीं पर संवाद बहुत लम्बे हो गये है, जैसे प्रथम अंक के चतुर्थ दृश्य में सौम्या का भाषण तथा प्रथम अंक के पंचम दृश्य में मंखलिपुत्र के लम्बे-लम्बे संवाद ; इसी प्रकार द्वितीय अंक के द्वितीय दृश्य में आचार्य कालक का भ्रमण करते हुए लम्बी गाथा गाना और तृतीय अंक के चतुर्थ दृश्य में सरस्वती का संवाद आदि हैं। 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन' में प्रथम अंक के द्वितीय दृश्य में दाहर एक लम्बा प्रवचन कर जाता है। इस प्रकार के लम्बे-लम्बे भाषण नाटक में नीरसता उत्पन्न कर देते हैं। सम्भवत: इनका कारण भट्ट जी की सरल भावुकता ही है।

भट्ट जी के आरम्भिक नाटकों में स्वगत कथनों की भरमार है, जिनसे नाटकों में अरोचकता एवं अस्वाभाविकता उत्पन्न होने लगती है। लेखक ने आवश्यकतानुसार नेपथ्य-भाषित और आकाश-भाषित कथोपकथनों का प्रयोग भी किया है :

विक्रम—(आकाश की ओर देखकर) पिता ! पूज्य पिता ! क्या आप यह स्पष्ट रूप से नहीं देख रहे है कि मैंने भाई का कुछ भी अपकार नहीं किया। हा, हन्त !"[१४२]

निष्कर्ष

संक्षेप में भट्ट जी के नाटकीय कथोपकथन सफल, उद्देश्यपूर्ण और नाटकीयता से युक्त हैं। वे कथानक को अग्रसर करते हैं, छोटे और गतिशील है, चरित्र-चित्रण में पूर्ण सहयोगी हैं। कथा के अभीष्ट को स्पष्ट करने की क्षमता, अन्तर्द्वन्द्व को

१४१ 'क्रान्तिकारी', पृ० ६३।

१४२ 'विक्रमादित्य', पृ० २१।

मुखरित करने की जिज्ञासा, पात्रानुकूलता आदि में पुष्ट है। इसके साथ-साथ संवादों में रसानुकूलता भी है। लेखक ने भाव एवम् भाषा का प्रयोग रस के अनुसार ही किया है।

देशकाल और वातावरण

नाटक में वातावरण का भी विशेष महत्त्व है। बिना समुचित वातावरण के नाटक की सजीवता एवम् नाटकीयता को आघात पहुँचता है। वातावरण के द्वारा ही नाटकों में तत्कालीन परिस्थिति को चित्रित किया जाता है। भट्ट जी ने ऐतिहासिक नाटकों में प्रायः तत्कालीन युग का चित्र खींचा है :

"हमारे देश की परिस्थिति बहुत विचित्र है। सारे प्रान्त में बौद्ध धर्म ने अपना अधिकार जमा रखा है। हिन्दुत्व तो नाम मात्र को रह गया है। सारा प्रदेश विहारों, भिक्षुओं और मठाधीशों से भरा है। कर्मचारियों में भी प्रायः सभी बौद्ध हैं। इसके अतिरिक्त हमारा यह प्रान्त अरब की नाक पर है। ऐसी दशा में कब क्या हो जाए यह कहा नहीं जा सकता। दुर्भाग्य ने बौद्धों को अपनाकर ही शान्ति लाभ नहीं की, उसने हिन्दुओं के चमकते हुए भाग्याकाश में ऊँच-नीच के वर्ण-भेद का काला मेघ उत्पन्न करके अविवेक का अन्धकार भी भर दिया है। स्वर्गीय पिता, तुम्हारे इस प्रमाद का फल मुझे भोगना पड़ेगा। सिन्ध में जो वीर जातियाँ थीं, उन्हें तुम्हारे ऊँच-नीच के भावों ने मसलकर विनष्ट कर डाला। हाय, वे लोहाना, जाट और गूजर जो हमारे राज्य की शोभा, वीरता की मूर्ति थे, आज ऊँच-नीच के विचारों से पद दलित हो रहे हैं।"[१४३]

इसी प्रकार पौराणिक नाटकों में भी युगीन वातावरण का चित्र खींचा है :

"संसार भविष्य के अज्ञात अंधेरे की ओर दौड़ रहा है। सब आगे को देखने की चिन्ता करते दौड़े जा रहे हैं। रोगी भविष्य में नीरोग बनने का स्वप्न देखता हुआ जी रहा है, निर्धन धन की, दुखी सुख की, ज्ञानी बृहद् ज्ञान की और वृद्ध मोक्ष की ; बस यही हाल है इस संसार का......।"[१४४]

सामाजिक नाटकों में समाज के वातावरण का ज्यों-का-त्यों वर्णन मिलता है : "तो इस स्वतन्त्र देश में लोग भूखों नहीं मर रहे ? क्या बेकारी से पीड़ित लोग आज भी आत्म-हत्या नहीं कर रहे हैं ? यह कोरी भावुकता है। वस्तु स्थिति यह है कि स्त्री के भी अपने अधिकार हैं। क्या उसे अधिकार नहीं है कि वह भी सुख चाहे ?"[१४५]

'क्रान्तिकारी' नाटक में तत्कालीन विक्षुब्ध वातावरण का चित्र खींचा गया है : "मनुष्य भावनाओं का पुतला है। विचारों से जीवन बनता है, लेकिन

१४३ 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन', पृ० १० ।
१४४ 'विद्रोहिणी अम्बा' पृ० ६२ ।
१४५ 'पार्वती', पृ० ४१ ।

देखता हूँ, जैसे गुलामी के भीतर से हँसी फूट रही है। जैसे सड़ाँध भरे तालाब में कमल हँस रहा हो। क्या एक चना भाड़ फोड सकता है ? (कुछ देर चुप रहकर) क्यों, एक सूर्य सारे जगत् को प्रकाशित नहीं करता ?"[१४६]

भट्ट जी ने वातावरण में सजीवता उत्पन्न करने के लिए पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है, अंग्रेज पात्र से 'यस प्लीज रिंग अप इन दि आफिस' और मुसलमान पात्रों से, 'असबाब', 'हुजूर' और 'खुदा' आदि शब्दों का प्रयोग कराया है। मकान, बरामदे, क्लब आदि का वर्णन पृष्ठभूमि में दे दिया है, जिनसे पाठक के सम्मुख अभिनीत दृश्यों का वास्तविक वातावरण उपस्थित हो जाता है। इसके अतिरिक्त नाटककार ने समकालीन रीति-रिवाज, रहन-महन, वेश-भूषा का नियोजन भी प्राय काल के ही अनुसार किया है। कुल मिलाकर कह सकते है वातावरण की दृष्टि से भट्ट जी के नाटक सफल है।

उद्देश्य और शैली

भट्ट जी का आधुनिक हिन्दी नाट्य साहित्य के उन्नायकों में रचना-कौशल की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने हिन्दी नाटकों के लिखने की प्राचीन शैली से दूर हटते हुए नवीन शैली को अपनाया है। उद्देश्य और शैली की दृष्टि से उनके नाटक अपना विशेष परिधान लिये हुए है। भट्ट जी ने स्वयं लिखा है :

"आज नाटक के लिए दो बातों की आवश्यकता है—नये विचारों की वैज्ञानिक दृष्टि से उपस्थिति और रंगमंच का पुनर्निर्माण। ये दोनों ही बातें नाटक के लिए आज जितनी आवश्यक है उतनी पहले कभी नहीं थी।"[१४७] इसके अतिरिक्त भट्ट जी ने अपने ऐतिहासिक और सामाजिक नाटकों के उद्देश्य के विषय में भी लिखा है :

"ऐतिहासिक नाटक लिखने का उद्देश्य सांस्कृतिक चेतना को जगाना भर है और इनका आधार सम्पन्न भारतीयता का दिग्दर्शन है तथा सेवा और प्रेम द्वारा चिर शान्ति और चिर कल्याण की कामना। एक दूसरा उद्देश्य यह भी हो सकता है कि प्राचीन द्वारा नवीन जीवन की खोज की जाय। सामाजिक नाटकों के द्वारा वर्तमान समस्याओं के समाधान की ओर एक प्रयत्न है।"[१४८]

लेखक ने साहित्य के विषय में भी विचार व्यक्त करते हुए उद्देश्य पर बल दिया है :

"साहित्य के स्वास्थ्य पर हमारे जीवन का स्वास्थ्य निर्भर होगा। उस अवस्था में हमको यह भी देखना होगा कि वह साहित्य ऐसा तो नही है कि मानवता को उठाने की अपेक्षा पतन की ओर ले जाय। आज हमारे साहित्य को सबको

१४६ 'क्रान्तिकारी', पृ० १३।

१४७ 'साहित्य के स्वर'—नाटक के प्रति मेरा दृष्टिकोण, पृ० ७६।

१४८ वही—नाटक का विकास और वैविध्य, पृ० ६८।

मनुष्य बनाने की, सबका कल्याण सोचने की भावना का भव्य ध्येय लेकर चलना होगा। मानववादी भावना के विश्वरूप में ही हमारा साहित्य प्रफुल्ल हो सकता है। वह दिन दूर नहीं जब साहित्य की प्रयोगशाला में हम मानवतावाद के रस-विज्ञान की खोज करेंगे।"[१४९]

वास्तव में उनके समस्त साहित्य का और विशेषकर नाटकों का मूल उद्देश्य यही मानवतावाद है। उन्होंने नाटकों के उद्देश्य के विषय में भी स्पष्ट रूप से लिख दिया है :

"वर्तमान के सुख-दुःख, स्थिति, परिस्थिति का चित्रण करना ही नाटक का मूल उद्देश्य होना चाहिए। हमारे सामने जो प्रतिदिन की समस्यायें हैं, उनको अधिक से अधिक जागरूक रूप में हमें जनता के सम्मुख रखना चाहिए। कल्पना-लोक एवं आदर्श का चित्रण उतना ही अपेक्षित है जितने से मूल वस्तु कला से ढक न जाए।"[१५०] भट्ट जी के नाटकों में यही उद्देश्य भावना सर्वत्र प्रतिफलित हो रही है।

भट्ट जी के नाटकों को भारतीय और पाश्चात्य नाट्य शास्त्र की कसौटी पर कसने से ज्ञात होता है कि उन्होंने पाश्चात्य शैली को ही अधिक स्वीकार किया है। नाटककार ने पाश्चात्य शैली के अनुसार ही प्रारम्भ, विकास, चरम सीमा, उतार और अन्त कार्यावस्थाओं को अपने नाटकों में अपनाया है। भट्ट जी ने स्वयं लिखा है : "प्राचीन नाटकों में नान्दी, मंगलाचरण, प्रस्तावना, सूत्रधार, विष्कम्भक आदि होते थे। आज के नाटककार को ये सब वस्तुयें व्यर्थ लगती हैं। वह नेपथ्य का बहुत कम प्रयोग करता है। विष्कम्भक के बिना भी उसकी गति नहीं रुकती।"[१५१]

इसके अतिरिक्त भट्ट जी ने प्राचीन और नवीन नाटकों की धाराओं को स्पष्ट करते हुए लिखा है : "प्राचीन काल में नाटक का ध्येय मनोरंजन, राजाओं के विलास-सौन्दर्य का प्रदर्शन था। आज के नाटक में बाह्य और आभ्यन्तर सभी प्रकार के बदलाव हुए हैं—वस्तु शैली, अभिव्यक्ति, संवाद तथा अन्तर्द्वन्द्व, इन सबमें, किन्तु इन सबका कारण समाज और उसकी परिस्थितियाँ हैं। इसलिए आज के युग ने साहित्य को जो प्राण-रस, जो भोजन दिया है, हिन्दी का नाटककार भी उसी चेतना को लेकर जागरूक है।"[१५२] संक्षेप में भट्ट जी ने अपने विशिष्ट उद्देश्य का प्रतिपादन अपनी विशिष्ट शैली में किया है।

१४९ वही—साहित्य के प्रयोग और उनकी दृष्टि, पृ० २१, २२, २३।
१५० वही—नाटक का विकास और वैविध्य, पृ० ६७।
१५१ वही—हिन्दी नाटक की नवीन धाराएँ, पृ० ९६–९७।
१५२ वही, पृ० ९८–१००।

रस

भारतीय नाट्य शास्त्र के अनुसार नाटक का मूल उद्देश्य रस-परिपाक है। भट्ट जी पाश्चात्य शैली के अनुगामी होते हुए भी रस-परिपाक की ओर भी सावधान एवं सजग रहे है। भट्ट जी के ऐतिहासिक, पौराणिक और सामाजिक नाटकों मे वीर, श्रृंगार और करुण तीनों रसों का अच्छा परिपाक हुआ है। इसके साथ-साथ रौद्र, शान्त और अद्भुत रसों की योजना भी प्रसंगानुसार यत्र-तत्र उपलब्ध होती है।

वीर रस

इनके नाटको मे वीर रस का सचार या तो नायक के क्रिया-कलाप और संवादों द्वारा या फिर अन्य किसी पात्र के वीर कर्मों द्वारा होता है। 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन' मे जब परमाल पूर्णतः निराश हो जाती है तो सूर्यदेवी उसे उत्साहित करती है : "आज यह शत्रु साठ हजार सेना लेकर सिन्ध पर आक्रमण किया चाहता है, घमासान युद्ध होगा, खून-खच्चर हो जाएगा, उस समय पुरुषों के साथ स्त्रियों का क्या कर्त्तव्य है, यही आज हम सिन्ध की नारियों को सीखना है। हमारे भाई और पिता युद्ध में लड़े और हम हाथ पर हाथ रखकर बैठी रहें, यही क्या हमारा कर्तव्य है ? क्या स्त्रियाँ केवल देखने की वस्तु हैं ?" [१५३] सूर्य के उपर्युक्त शब्दों से परमाल की दार्शनिकता विलीन हो जाती है। सूर्य देश की नारियों और राजपूतों को एकत्रित करके सब कुछ निछावर करने के लिए कहती है : "अरुण, ब्राह्मणवाद, शिवस्थान, देवल आदि सारे प्रान्तों में बिजली के समान कडको, आँधी के समान उड़ो, बादल के समान गरजो और कायर देशद्रोहियों को युद्ध के लिए उत्साहित कर दो। जाओ, मैं भी अपनी बहन के साथ देश-देश में घूमूँगी, वनों में विचरूँगी, पहाड़ों को छान डालूँगी, लोगों को एकत्र करूँगी और उन्हें सेना में भरती होने के लिए उभारूँगी।" [१५४]

'विक्रमादित्य' नाटक में विक्रमादित्य, चन्द्रलेखा, अनंगमुद्रा आदि वीर रस की साक्षात् प्रतिमा हैं। इस नाटक में करुण रस की धारा अजस्र रूप से बह रही है। अनंगमुद्रा और चन्द्रलेखा की मृत्यु के पश्चात् विक्रमादित्य की करुणामयी दशा द्रष्टव्य है :

"क्या मै चन्द्रलेखा के समान सुखी हो सकता हूँ, जिसने मेरी स्मृति में, मेरे प्रेम में, मेरे विलास के लिए, मेरी हित-कामना में सब कुछ दे दिया। हा ! जीवन के विधान मे कर्त्तव्य के नुकीले बाण कितने पैने हैं यह उसी ने समझा···। वह मुझे भूलकर भी नहीं भूलती। आँखों मे उसी की मूर्ति नाचती है। हृदय में उसी का

[१५३] 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन', पृ० ५७।

[१५४] वही, पृ० ५६।

स्थान है।"[१५५]

करुण

इसी प्रकार 'सगर-विजय' नाटक में महाराज बाहु की मृत्यु के पश्चात् उनकी रानी विशालाक्षी का विलाप कितना करुणाजनक है :

"हे प्रभो ! मैं यह क्या देख रही हूँ। मेरे महाराज, आपकी यह दशा ! जिन्हें संसार की आँखें भी देखकर तृप्त नहीं होती थीं वे आज अनादृत, अपृष्ठ और मूक होकर पड़े हैं। मेरे हृदय, तू फट क्यों नहीं जाता ? मेरी आशाएँ, मेरे जागृति के स्वप्न, मेरे सौन्दर्य, मेरे विश्वास, मेरे सुख आज सब हिल गए हैं। हाय, मेरे प्रकाश की पुतली फूट गई, मेरा विश्वास अन्धा हो गया। मेरी निराशा की रात चारों ओर से गहरी होती चली जा रही है। अब मैं किसके सहारे चलूँगी—मैं अकेली हूँ। मेरे हृदय, तुम विस्फोट की तरह फटो और मेरे आँसुओं का एक प्रलयान्तक सागर बना दो। मुझे बहा ले चलो, मैं अकेली हूँ।"[१५६]

शृंगार

शृंगार रस की धारा उनके भावनाट्यों में प्रवाहित हो रही है :

विश्वामित्र—**ठहर-ठहर, रे आँखों से क्यों खेलती।**
खेल अनूठे, वाणी के रस के मधुर॥
मेनका—**मैं तो तितली हूँ उड़ती प्रति पुष्प पर**
और थमकती, छनन-छनन-छन नित्य ही
मेरे चख पीयूष छलकते क्या तुम्हें
करते हैं आकृष्ट, हो रहे मुग्ध क्यों।[१५७]

'मुक्तिपथ' नाटक की परिणति शान्त रस में होती है। सामाजिक नाटकों में लेखक की दृष्टि समस्या-निरूपण करने में लीन रही है। फिर भी 'कमला', 'नया समाज', 'पार्वती', 'अन्तहीन अन्त' और राजनीतिक नाटक 'क्रान्तिकारी' में करुण रस अविरल रूप से प्रवहमान है।

रस के सम्बन्ध में भट्ट जी ने शास्त्रीय पद्धति का पूर्णतः अनुगमन नहीं किया है। भट्ट जी ने सुखान्त, दुःखान्त और प्रसादान्त तीनों प्रकार के नाटक लिखे हैं। वियोगान्त शैली अपनाने के विषय में भट्ट जी ने स्वयं लिखा है :

"हिन्दी साहित्य में वियोगान्त नाटक लिखने का कदाचित् मेरा ही प्रयास है।"[१५८]

भट्ट जी के 'विक्रमादित्य', 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन', 'अम्बा' और 'कमला' नाटक दुःखान्त शैली पर लिखे गये हैं। कुछ आलोचक 'सगर-विजय' को भी वियो-

१५५ 'विक्रमादित्य,' पृ० ३४।
१५६ 'सगर-विजय', पृ० ३४।
१५७ 'विश्वामित्र और दो भाव-नाट्य', पृ० २८-२६।
१५८ 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन'—भूमिका, पृ० ७।

गान्त नाटक मानते हैं। पर माता और पुत्र के वियोग को आधार मानकर ऐसा कहना अनुचित है। क्योंकि नाट्य शिल्प मे वियोगान्त नाटक की आधार-शिला कार्य की सफलता या असफलता पर निर्भर है। अत: 'सगर-विजय' को करुणा-सुखान्त या प्रसादान्त नाटक कहना अधिक समीचीन होगा।

इस प्रकार 'शक-विजय' को भी प्रसादान्त नाटक ही कहा जा सकता है। 'मुक्ति-दूत' को सुखान्त नाटक की कोटि में रखा जा सकता है।

भट्ट जी ने अपने नाटकों में संस्कृत के कवित्वमय वातावरण को भी अपनाया है। वास्तव मे उनके नाटकों में प्राचीन और अर्वाचीन शैलियों के समन्वय का रूप प्राप्त होता है।

संगीत और काव्य तत्त्व

भट्ट जी की अन्तिम रचनाओं में संगीत और काव्य सफलता के साथ मुखरित हुआ है। इस काव्य और संगीत ने ही उनके नाटकों को दृश्य काव्य का रूप दिया है। इनके आश्रय से ही नाटककार ने पात्रों के आन्तरिक विचारों को बडी सफलता के साथ अभिव्यक्त किया है। इन्होंने कथा में गतिशीलता और रोचकता भी उत्पन्न की है। पर प्रारम्भिक नाटकों में गीत कुछ लम्बे हैं, जैसे—'विक्रमादित्य' नाटक के पहले अंक के तीसरे दृश्य में विक्रमादित्य स्वयं एक लम्बा गीत गाते हैं :

"निशा चषक में उषा-काल की मद लाली उठ जागी।
उन्मादिनी-सी दृष्टि तारिका मुकुलित हो छिप भागी ॥"[१५९]

'दाहर अथवा सिन्ध-पतन' में भी लेखक ने इसी परिपाटी का निर्वाह किया है। पर गीत कुछ अनुभूतिपरक हो गये हैं—

"है यह दुनिया का सार हृदय का मतवालापन इसमें।
इन आँखों का संसार डूबता-उतराता है जिसमें ॥
पीकर विभोर मद बौर नाचती कोयल कूकी वन-वन।
मधु सुरभि उड़ी इस पार बिछाती जीवन के स्वर्णिल-मन ॥"[१६०]

भट्ट जी के ऐतिहासिक नाटकों के गीतों का लक्ष्य सामुदायिक भावना जाग्रत करना है। उनके मानस में एकता की भावना निरन्तर जाग्रत रहती है :

"काश्मीर से अन्तरीप तक एक शक्ति संस्कृतिमय हो।
कम्बोज से कामरूप तक भू गतिमति अक्षय हो।
उस वरदायक विघ्न-विनायक भारत पर अभिमान करें।"

युद्ध के प्रसंग में जो राष्ट्रीय गीत है वे प्रयाण गीत के अच्छे प्रमाण हैं :

"हे अरब दुलारे जाओ, दुश्मन को खूब छकाओ।
निज देश-धर्म की रक्षा करना, बढ़-बढ़ कर लड़ना।

[१५९] 'विक्रमादित्य', पृ० १९।
[१६०] 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन', पृ० १२।

मत पीछे कदम हटाना, मत दाएँ-बाएँ जाना।
दुनिया को रंग दिखाना, अपना सब देश बनाना।
हे अरब दुलारे जाओ, दुश्मन को खूब छकाओ ।।"[१६१]

नाटककार ने गीतों के द्वारा पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है :

"फूल-सा हँस झड़ चुका है हृदय का उल्लास मेरा।
सतत पतझर से घिरा-सा, अया सा आकाश मेरा ।।
कहीं भी तुमको न पाकर
आँसुओं में छवि पुलकती,
कौन युग से पथ निरखती ।।"[१६२]

भट्ट जी के नाटकों में पात्रों की विवशता के गीत भी देखने को मिलते हैं :

"कैसे तोड़ बन्धनों को, जो अनादि काल से हैं
आज मैं अबन्ध हो चलूं, क्यों अविधेय पथ है।"[१६३]

भट्ट जी ने गीतों द्वारा अन्तर्द्वन्द्व का भी अच्छा चित्रण किया है :

"तरल गरल पीयूष बनाकर अखिल को बरसाना होगा
मैं खंजर हूं, मुझे शत्रु को तिल-तिल कर तरसाना होगा
× × ×
खेल-खेल में मुझे मृत्यु का जीवन-रास रचाना होगा ।।"[१६४]

विशालाक्षी का निम्न गीत रस-संचार की दृष्टि से उत्कृष्ट है :

"आशाओं का पुंज अंधेरा बनकर आँखों में आता है,
फिर रोने के लिए हँसी को कोई यहाँ बुला लाता है।"[१६५]

भट्ट जी ने अपने नाटकों में नृत्य-गीतों का भी आयोजन किया है :

"छलक-छलक चले,
सुरा भरे मधुर-मधुर चषक ढलक चले।"[१६६]

प्रकृति भी पात्रों के मनोभावों के अनुसार ही चित्रित की गई है :

"हो गया यह हास मेरा सब कहीं उपहास क्यों ?
मैं तिमिर में खोजती हूँ हृदय का उल्लास क्यों ?"[१६७]

भट्ट जी के गीतों में भावानुकूल भाषा भी उपलब्ध होती है :

१६१ वही, पृ० ९६।
१६२ 'विश्वामित्र और दो भाव-नाट्य' पृ० १३८।
१६३ वही, पृ० ७४।
१६४ 'सगर-विजय', पृ० २७।
१६५ वही, पृ० ७७।
१६६ 'शक-विजय' पृ० १२८।
१६७ 'विश्वामित्र और दो भाव-नाट्य,' पृ० ९८।

"छलक-छलक कर, ललक-ललक कर
शत-शत उद्गार, शत-शत हाहाकार।"[१६८]

अन्ततः भट्ट जी के गीत विविधता लिये हुए है और प्रारम्भिक नाटकों के कुछ लम्बे गीतों को छोड़कर शेष सभी गीत वातावरण और अभिनय की दृष्टि से सफल हैं। इसके अतिरिक्त सभी गीत स्थल और संगति के आधार पर साभिप्राय है। संक्षेप में कहा जा सकता है इन गीतों द्वारा भी नाटकों में नाटकीयता को प्रायः उत्कर्ष ही मिला है।

भट्ट जी के गीतों की भाषा शब्दों की मधुरिमा से युक्त है। शब्दों के द्वारा पात्रों के सुख-दुःख की अभिव्यक्ति ने संगीत मे और अधिक स्पन्दन उत्पन्न कर दिया है। संगीतात्मकता के लिए शब्द-चयन के साथ लय, सुर, ताल तथा राग-रागिनी का ध्यान भी भट्ट जी ने रखा है :

"सजा कर सुख-स्वप्नों का साज।
भेंटूंगी प्रियतम से जी भर बुझा विरह-विष आज।
वायु-विलोडित जल-बुदबुद पर नाचूं उन्हें रिझाऊँ।
मधुर कुन्द मकरन्द सार से प्रियतम को नहलाऊँ॥"[१६९]

अतः भट्ट जी के गीतों में शब्दों की मधुरिमा अवश्य है पर कहीं-कहीं संयुक्ताक्षारों ने गीतों के माधुर्य को बिगाड़ दिया है। पंक्ति के आरम्भ में स्मृति, क्षितिज, निश्चिन्तता, स्वप्न, मत आदि शब्दों का प्रयोग गीतों की मधुरिमा में बाधक है। भट्ट जी ने अपने नाटकों में उचित स्थल पर गीतों का समावेश किया है। भट्ट जी के गीत पात्रानुकूल होते हुए भी पात्रों के आन्तरिक एवं बाह्य दोनों ही भावों को स्पष्ट करते हैं और कथा में अपूर्व सयोग भी देते हैं। अतः भट्ट जी ने गीतों का समावेश उचित स्थान पर ही किया है। इसीलिए गीत की स्थान-उपयुक्तता और भाव-प्रदर्शन ने उनके नाटकों के दृश्यों को अधिक तीव्र और मधुर बना दिया है। उन्होंने गीतों में गायक की पात्रता का भी समुचित निर्वाह किया है और उनके गीत कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, वातावरण, समय और देशानुकूल होने के साथ-साथ सामाजिक भावनाओं के साथ भी बंधे हुए हैं।

भट्ट जी सफल गीतकार थे। संगीत की दृष्टि से उनके गीत सर्वथा निर्दोष नही कहे जा सकते क्योंकि उनके आरम्भिक नाटको में गीतों की अधिकता दिखाई पड़ती है, और ऐसा अनुभव होता है कि लेखक उन्हें निरुद्देश्य तथा सप्रयास अपने नाटकों में स्थान देने के लिए उतावला है। 'विक्रमादित्य' में दस गीत आए है, सोमेश्वर, विक्रमादित्य, चन्द्रलेखा सभी को गाने का रोग है। 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन' में इनकी संख्या बढ़ कर तेरह तक पहुँच गई है। 'सगर-विजय' मे केवल चार गीत हैं पर 'मुक्तिदूत' में इनकी संख्या फिर सात हो गई है और 'कमला' में केवल एक

१६८ वही।
१६९ 'मुक्तिदूत', पृ० ७६।

गीत है जो उपयुक्त है ।

अनेक गीतों का आकार आवश्यकता से अधिक बड़ा है, गीतों में पुनरावृत्ति का दोष भी है, संयुक्ताक्षरों ने नाटकोचित प्रासादिकता को आघात पहुँचाया है। सम्भवत: कवि-हृदय होने के कारण यह दोष आ गये हैं । परन्तु प्रसाद जी की भाँति भट्ट जी के गीत अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रखते । भावों के सारल्य और भाषा की प्रांजलता के कारण अनायास ही भट्ट जी के गीत प्रसाद जी के नाटकीय गीतों से अधिक नाटकीय एवं सरस हैं ।

दृश्य-विधान

नाटककार ने दृश्य-योजना में पर्याप्त कुशलता से काम लिया है । फिर भी प्रारम्भिक नाटकों में रंगमंचीयता का अभाव लगता है । जैसे 'विक्रमादित्य' नाटक में युद्ध का दृश्य और 'सगर-विजय' में शास्त्र-वर्जित दृश्य—राजा बाहु का शव और उसकी चिता में आग लगना, 'दाहर अथवा सिन्ध-पतन' में युद्ध दृश्यों की योजना, मार-काट आदि भारतीय नाटक विधान के विपरीत है । पर बाद के नाटकों में काफी सफलता मिली है । 'शक-विजय' नाटक के प्रथम अंक का द्वितीय दृश्य कितना मनोहर है : "अवन्ती में महाकालेश्वर के मन्दिर से कुछ दूर उद्यान में एक कुटीर । लता, पल्लवों और पुष्पों से आच्छादित उस कुटीर के प्रांगण में काष्ठपीठ पर व्याघ्रचर्म बिछा है । योगी मंखलिपुत्र प्राय: दर्शनार्थियों, भक्तों के लिए इसी स्थान पर बैठते हैं । इसीलिए काष्ठपीठ के चारों ओर दूर तक उपनिष्ट भूमि में कुशासन बिछे हैं । पूर्वाभिमुख कुटीर में पश्चिम की ओर स्फटिक वेदिका पर सिंह-चर्म तथा अन्य आसनों पर मृग-चर्म बिछे हैं ।"[१७०]

'मुक्तिदूत' में बड़े ही सुन्दर प्राकृतिक दृश्य उपलब्ध होते हैं । इनमें से कुछ तो सरलता से चित्रपट पर दिखाए जा सकते हैं । प्रथम अंक का दूसरा दृश्य द्रष्टव्य है :

"वाटिका फूलों की सुगन्धि से महक रही है । बेला, चमेली, जुही, मालती, गेंदा, सूरजमुखी के पौधे पंक्तियों में लगे हुए हैं । उद्यान छोटा होते हुए भी बहुत सुन्दर है । उद्यान के बीच में एक संगमरमर का फव्वारा है, जिसमें चारों ओर अप्सराएँ बनी हैं । उनके सिर से पानी की धार निकल कर चारों ओर बिखर रही है ।"[१७१]

घटना-बाहुल्य भी अभिनय और दृश्यों में बाधा उपस्थित करता है । भट्ट जी ने दृश्य-विधान का आयोजन अपने सामाजिक नाटकों में सफलता के साथ किया है । इसलिए वे सरलता से रंगमंच पर अभिनीत हो सकते हैं ।

'क्रान्तिकारी' नाटक में दृश्यों का आयोजन नहीं के बराबर है । नाटक चार

१७० 'शक-विजय', पृ० १२ ।
१७१ 'मुक्तिदूत', पृ० १० ।

दृश्यों में विभक्त है। तीसरे, चौथे का एक ही दृश्य-विधान है :

"ऊबड़-खाबड़ जंगल का एक भाग। फूस की एक कुटी के सामने कुछ चटाइयाँ बिछी हैं। पूर्व की तरफ एक तख्त बिछा है। देखने से मालूम होता है किसी साधु की कुटी है। परदा उठते ही दो आदमी बातें करते हुए आते हैं...।"[१७२]

इस नाटक के सम्बन्ध में सुमित्रानन्दन पन्त ने भी लिखा है : 'क्रान्तिकारी' मे भट्ट जी की प्रतिभा नवीन वस्तु-क्षेत्र मे प्रवेश कर उसे प्रभावोत्पादक रंगमंच पर प्रतिष्ठित कर सकी है।"[१७३]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भट्ट जी की नाट्य-कला में क्रमिक विकास हुआ है। उनके आरम्भिक नाटकों मे अभिनय शिथिल और दृश्य-विधान जटिल है। परन्तु धीरे-धीरे नाटकों मे अभिनय का कौशल, दृश्य-विधान मे सरलता, कौतूहल, जिज्ञासा और अचानक घटित होने वाली घटनाओं का समावेश भी हुआ है। अन्त में कहा जा सकता है कि दृश्य विधान की दृष्टि से प्राय. भट्ट जी के प्रारम्भिक नाटकों की अपेक्षा परवर्ती नाटक अधिक सफल है।

अभिनय

अभिनेता की विभिन्न अवस्थाओं की अनुकृति को ही अभिनय कहते हैं। अभिनय नाटक का विशेष तत्त्व है। नाटककार अभिनय के माध्यम से विविध समस्याएँ, पात्रों का चरित्र, विभिन्न सभ्यता और संस्कृतियों के चित्रों को दर्शकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। इसी तत्त्व के आधार पर नाटक को दृश्य-काव्य की श्रेणी के अन्तर्गत रखा गया है। इस सम्बन्ध में भट्ट जी ने स्वयं कहा है :

"क्षिप्र संवादों मे मुझे दिलचस्पी है, वातावरण-निर्माण के लिए मै भाषा की लोच, वेशभूषा और रंगमंच निर्देश तथा अभिनेयता का विशेष ध्यान रखता हूँ। मेरे नाटक रंगमंच पर सफलतापूर्वक खेले गये हैं। 'अम्बा', 'सगर-विजय', 'कमला', 'दाहर' इत्यादि नाटकों को तो कई बार खेला जा चुका है और एकांकी तो प्रायः सभी खेले जा चुके हैं।"[१७४]

भारतीय नाट्य-शास्त्र मनीषियो के द्वारा अभिनय के चार प्रकार बताए गए है :

१. आंगिक अभिनय—आंगिक अभिनय से तात्पर्य शरीर के विभिन्न आंगिक हाव-भावों से है। भट्ट जी ने अपने नाटकों में स्थान-स्थान पर कोष्ठकों में आंगिक अभिनय के लिए संकेत दिए हैं। लेखक ने पात्रों का सकोच से सिर नीचा करना, चौक कर, तलवार आदि खींचकर, मदिरा-सेवन, मसनद के सहारे बैठकर आदि

१७२ 'क्रान्तिकारी' पृ० ६०।

१७३ वही, पृ० १।

अर्द्ध-स्फुटित वाक्यांशों के द्वारा आंगिक अभिनय को पूर्णता दी है।

२. **वाचिक अभिनय**—वाचिक अभिनय का सम्बन्ध वाणी से है। वचन की वक्रता ही इस अभिनय के प्राण हैं। भट्ट जी के नाटकों में प्यार-भरे उलाहने, व्यंग्य-भरे स्वर, परिहास, प्रसन्नता आदि वाचिक अभिनय के अन्तर्गत आते हैं।

३. **सात्विक अभिनय**—सात्विक अभिनय के अन्तर्गत स्वेद, रोमांच, कम्प, स्तम्भ, अश्रु आदि आते हैं। भट्ट जी ने भी इसका निर्वाह भावाभिभूत होकर, आँखों में अश्रु भरकर, रोमांच आदि शब्दावली का आश्रय लेकर किया है।

४. **आहार्य**—आहार्य के अन्तर्गत वेश-भूषा, आभूषण, वस्त्र आदि आते हैं। भट्ट जी ने अपने नाटकों में इसके निर्वाह हेतु जार्जेट की साड़ी, माथे पर बिन्दी, कानों में डायमण्ड-क्रास-इयरिंग, लाल रंग की चप्पल आदि का प्रयोग किया है।

सफल अभिनय की दृष्टि से नाटक में निम्न तत्वों का होना आवश्यक है :

१. दृश्य विधान की रंगमंचोपयोगिता का ध्यान रखना। शास्त्रवर्जित दृश्य यथा रंगमंच पर चीते, व्याघ्र आदि का लाना, युद्धभूमि प्रस्तुत करना, अति-मानवीय और अतिभौतिक वस्तुओं का निषेध।

२. दृश्यों के क्रमों का विशेष ध्यान रखा जाए।

३. नाटक का कलेवर सीमित होना चाहिए।

४. कथोपकथन संक्षिप्त, सरल, सजीव, पात्रानुकूल और स्वाभाविक होने चाहिएँ। विस्तृत कथोपकथनों तथा अधिक स्वगत-संवादों का निषेध आवश्यक है।

५. रंग संकेतों का उपयुक्त प्रयोग।

६. पात्रानुकूल भाषा।

७. संगीत एवं काव्य तत्व का यथास्थान प्रयोग।

८. दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन कम हो।

९. घटनाओं के प्रस्तुत करने में संग्रह और त्याग-प्रवृत्ति का पालन।

१०. संकलन-त्रय का निर्वाह हो।

उपर्युक्त अधिकांश तत्व भट्ट जी के नाटकों में उपलब्ध होते हैं। इस सम्बन्ध में भट्ट जी ने स्वयं ही कहा है :

"मैं मानता हूँ नाटक में मनोरंजन को प्रधानता नहीं दी जानी चाहिए, प्रधान होनी चाहिए समस्या। मनोरंजन उतना होना चाहिए जो दर्शक को गुदगुदा भर दे। अट्टहास में कथावस्तु उड़ जाती है और नाटककार का ध्येय व्यर्थ हो जाता है। उसका उचित प्रभाव नहीं पड़ता। दूसरी बात है रंगमंच की। जैसे मनुष्य के विभिन्न रूपों को प्रतिबिम्बित करके हम रंगमंच पर उतरते हैं इसी तरह रंगमंच उसकी स्थिति का प्रदर्शन करता है, उसकी रुचि-अरुचि का चित्र देता है। जहाँ तक हो सके रंगमंच सानुरूप, सादा और सहज होना चाहिए, स्वाभाविकता का प्रदर्शन रंगमंच का विशेष गुण होना चाहिए। नाटक की सफलता इसमें है कि पात्रों के साथ उसका तादात्म्य हो जाय, दर्शक और दृश्य में भेद न रहे। तल्लीनता नाटक

की सफलता की कसौटी होनी चाहिए। वस्तु में जीवन हो और उसकी समस्याएँ। जीवन में मनुष्यत्व को उभारना ही आज के साहित्य का ध्येय होना चाहिए। इन सभी दृष्टियों को ध्यान मे रखकर मैने नाटक लिखा है।"१७५

वास्तव में अभिनय के प्राय: सभी गुण उनके नाटकों मे विद्यमान हैं।

सक्षेप में उनके समस्त नाटकों और विचारों को देख लेने के पश्चात् कहा जा सकता है कि भट्ट जी ने भारतीय नाट्य पद्धति की अपेक्षा पाश्चात्य शैली को अधिक अपनाया है। फिर भी यत्र-तत्र भारतीय पद्धति के स्वर मुखरित हो गये है।

यह कहा जाता है कि भट्ट जी के नाटक भाव, भाषा, शैली, वस्तु, उद्देश्य और अभिनय आदि सभी तत्वों की दृष्टि से पर्याप्त सफल है। उनके नाटकों को यदि पूर्णत: निर्दोष नहीं कहा जा सकता तो वस्तुस्थिति यह है कि उच्चस्तरीय नाटक अवश्य हैं।

संक्षेप में वे एक सफल नाटककार थे। भट्ट जी ने अपने विषय मे बड़े आत्म-विश्वास से कहा है :

"वर्तमान नाटकों में प्रसाद की छाया ढूँढना आलोचकों की रूढ़िप्रियता एवं मूढाग्रह के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मेरा नाटक साहित्य स्वयं अपनी एक दिशा है, एक प्रकाश है जो अपने पात्रों के जीवन से आलोकित है। देखने की क्षमता चाहिए।"

भट्ट जी के नाटक एक प्रकाश अवश्य हैं पर उनमें प्रसाद की छाया ढूँढना रूढ़िप्रियता कदापि नहीं है। वास्तव में ये दोनों शंकर—जयशंकर और उदयशंकर—महान् नाटककार थे। प्रसाद जी की अपनी एक विशिष्ट नाट्य-कला थी जिसमें उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। इसी प्रकार भट्ट जी की भी अपनी एक विशिष्ट नाट्य-कला है, इसमें भी कदाचित् उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है।

भट्ट जी के नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता है कि जनसाधारण के प्रति-निधित्व के साथ-साथ नाटकीय तत्वों का संरक्षण भी करते हैं। इसके अतिरिक्त वे नाटकों के आरम्भ से लेकर अन्त तक अपने प्रभाव की ओर सचेत रहे हैं। वे अपने उद्देश्य और लक्ष्य को प्राप्त करने में तनिक भी विचलित नहीं होते, यही उनकी नाट्य-कला का सबसे बड़ा कौशल है।

वस्तुत: भट्ट जी कुशल कलाकार थे, जिनके पास गतिशील कल्पना और वैविध्यपूर्ण रचना-कौशल था। हिन्दी के लोक-नाट्य क्षेत्र में उनका स्थान एक अप्रतिम नाटककार के रूप मे अक्षुण्ण रहेगा।

भट्ट जी के एकांकियों का मूल्यांकन

हिन्दी एकांकी का प्रचलन पिछले दो दशकों से ही हुआ है। हिन्दीतर अन्य भारतीय भाषाओं में भी उसका जन्मकाल इसी के आस-पास का है। हिन्दी में

एकांकी का प्रचलन बहुत कुछ स्टेज की दृष्टि से ही हुआ है। इसकी कला नाटकों की कला से सर्वथा भिन्न है।

एकांकी शिल्पविधि की मूल पकड़ उसकी चरम सीमा है। इसकी कला में चरम सीमा ही वह लक्ष्य-बिन्दु है जहाँ एकांकी का समूचा संविधान उससे केन्द्रित होता है। वहाँ तक पहुँचने के लिए एकांकीकार जितने भी तन्त्र उसमें प्रस्तुत करता है, वह सम्यक् रूप से उसकी शिल्पविधि होती है।

आरम्भ में एकांकी में विकास-अंश जन्म लेता है और इसके माध्यम से नाटक की मूल संवेदना घटनाओं, कार्य-व्यापारों से होती हुई चरम सीमा पर पहुँचती है। एकांकी अपने सम्पूर्ण प्रभाव को प्राप्त करने के लिए कथोपकथन, घटना, कार्य-व्यापार की सीढ़ियों को पार करता हुआ अपने गन्तव्य पर पहुँचता है। इस सम्बन्ध में डा० रामकुमार वर्मा ने अपने विचार व्यक्त किए हैं :

"यदि महत्त्व की दृष्टि से देखा जाय तो एकांकी में प्रथम स्थान पात्र और उसके मनोविज्ञान का है, दूसरा स्थान सम्भाषण या कथोपकथन का है, तीसरा स्थान चरम सीमा या क्लाइमेक्स का और चौथा स्थान घटना का है। मनोविज्ञान में प्रतिष्ठित पात्र चरम सीमा से अपनी गति स्वयं निर्धारित कर लेता है। वह गति चाहे आदर्श में हो या यथार्थ में।"[१७६]

डा०. नगेन्द्र ने भी लिखा है : "उसके लिए एकता एवं एकाग्रता अनिवार्य है, किसी प्रकार वस्तु-विभेद उसे सह्य नहीं। एकाग्रता में आकस्मिकता की झंकोर से चरम सीमा में स्पन्दन पैदा हो जाता है।"[१७७]

एकांकी रचना समय की माँग थी। भट्ट जी ने समय की माँग को पहचाना। आज के युग का मानव अत्यधिक व्यस्त होने के कारण मनोरंजन कम समय में करने का अभिलाषक है। इसीलिए थोड़े समय में मनोरंजन प्राप्त करने के उद्देश्य और भावना को लेकर ही एकांकी की रचना की गई। एकांकी नाटक मानव जीवन अथवा समाज के एक पक्ष को प्रस्तुत करता है। इसमें विचार, समस्या अथवा विषय किन्हीं निश्चित परिस्थितियों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। परन्तु इसमें जो कुछ होता है, वही प्रमुख होता है। गौण के लिए यहाँ स्थान नहीं होता। एक पहलू ही इसमें सर्वत्र फैला रहकर निश्चित लक्ष्य की ओर प्रभावित रहता है। एक से अधिक पहलुओं का संयोजन एकांकी में किसी प्रकार सम्भव नहीं है। एकता और संक्षिप्तता एकांकी के अनिवार्य गुण हैं। घटनाओं की सम्भाव्यता उसका स्वाभाविक गुण होना चाहिए। कौतूहल पर विशेष ध्यान देना अपेक्षित है क्योंकि कथानक इसी के माध्यम से चरम सीमा पर पहुँचता है। भट्ट जी के एकांकियों में प्रायः सभी गुण मिल जाते हैं परन्तु भट्ट जी की एकांकी टेकनिक प्रायः मौलिक है। उन्होंने अपने एकांकियों में 'क्लाइमेक्स' पर बल दिया है और अर्थ-प्रकृतियों में बीज पर।

१७६ 'हिन्दी एकांकी नाटक', पृ० ४–५।
१७७ 'हिन्दी में एकांकी', पृ० ३।

एकांकी की कथा भी आरम्भ, मध्य और अन्त तीन भागों में बाँटी जा सकती है। भट्ट जी के एकांकी जीवन को नई चेतना दे देने के सदुद्देश्य से अनुप्राणित है :

"हमारा जीवन समस्यामूलक है। हमारे सामने अनन्त समस्यायें हैं। एकांकी नाटक की उन समस्याओं का समाधन उपस्थित कर सकता है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद अब देश में स्थायी, अस्थायी रंगमचों के निर्माण की आवश्यकता है जिनके द्वारा हम विषम परिस्थितियों से उत्पन्न जीवन की गति को ठीक दिशा में मोड़ सकते है, उसको एक तर्क-पूर्ण व्यवस्थित मार्ग दिखा सकते हैं।"[१७८] अत: भट्ट जी हिन्दी एकांकी के कथ्य और शिल्प की दृष्टि से सच्चे उन्नायक थे।

भट्ट जी हिन्दी के प्रसिद्ध एकांकीकार थे। इनके एकांकी कला की समृद्धि, कथा की रोचकता और नाटकीय सजीवता से सम्पन्न हैं। उनके एकांकियों मे युग की समस्याएँ और सभी वर्गों के व्यक्ति अपनी-अपनी बात कह रहे हैं। नाटककार ने युगीन सामाजिक संघर्ष, जागृति और सांस्कृतिक चेतना को इनका प्रतिपाद्य बनाया है, क्योंकि मानव की उन्नति और समाज की प्रगति की चाह उनके हृदय में उथल-पुथल मचाए हुए थी।

डा० नगेन्द्र ने भी उनके एकांकियो के विषय में लिखा है : "भट्ट जी के व्यक्तित्व में परम्परा की गरिमा और प्रयोग की स्फूर्ति है और वे प्राचीन संस्कारों का आदर्श लिये नवीन यथार्थ के प्रति चिर जागरूक रहे हैं। उनमें मानव के प्रति सहज निष्ठा, जीवन के प्रति सच्चा अनुराग है और इस निष्ठा तथा अनुराग को मूर्त रूप देने की लगन है।"[१७९]

भट्ट जी ने भी स्वयं अपने एकांकियों के सम्बन्ध में लिखा है : "मेरा अपना वाद है और वह है विवेकपूर्ण मानवतावाद, जिसके लिए कलम उठाई है, और जीवन के विकृत अंगों पर तीक्ष्ण प्रहार करने का सदुद्देश्य ग्रहण किया है। अपने प्राणों से पुष्ट करके लोगों को चिरजीवी बनाने का प्रयोजन ही मेरे एकांकियों का मूल है।"[१८०]

इसके अतिरिक्त भट्ट जी ने अपने एकांकियों में युग की समस्याओं को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है और इस विषय में स्वयं लिखा है : "वर्तमान काल में नाटक तत्वों में मनोवैज्ञानिक तथ्यों का समीकरण आवश्यक हो गया है। कोई भी नाटक यदि मानसिक सन्तुलन एवं मनोविज्ञान की कसौटी पर ठीक नहीं उतरता तो वह आधुनिक दृष्टि से व्यवहार्य नहीं है और वह आपके युग के अनुरूप समस्याओं का समाधान भी नहीं कर सकता और जन-साधारण में व्यवहृत भावुकता, व्यापार, परिणति की भूलें हैं, तो सहृदय संवेद्य नहीं हो सकता।"[१८१] इसीलिए

१७८ 'समस्या का अन्त'—प्राक्कथन, पृ० ४।
१७९ 'पर्दे के पीछे', पृ० १।
१८० 'धूमशिखा'—आमुख, पृ० घ।
१८१ 'समस्या का अन्त'—प्राक्कथन, पृ० ४।

भट्ट जी के एकांकियों में कथा-संकोच के कारण कल्पना कुछ सहम गई है और नाटकीय संवेदना का स्पन्दन जोर पकड़ गया है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि उन्होंने भाव पर बल नहीं दिया है क्योंकि एकांकियों में भाव पर उनकी दृष्टि टकटकी लगाए हुए चल रही है। भट्ट जी ने भी इसे स्वीकार किया है : "मेरी दृष्टि मूल भाव पर रहती है। मैं टेकनीक को वहीं तक उपयोगी मानता हूँ, जहाँ तक वह मूल भाव या समस्या को उद्दीप्त करे और यथार्थवादिता को नष्ट न करे।"[१८२]

बाह्य द्वन्द्व के साथ-साथ आन्तरिक द्वन्द्व भी आपके एकांकियों का प्राण, स्फूर्ति और स्पन्दन है। भट्ट जी ने इस पर भी अपने विचार स्वयं व्यक्त किए हैं : "नाटक वस्तुतः संघर्ष-प्रधान होता है। उसमें किसी न किसी प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व होना आवश्यक है। मूलतः नाटक सदा द्वन्द्व से उभरता है। द्वन्द्व दो विरोधी विचारों के पात्रों, घटना की विषमताओं, वातावरण की टकराहट पाकर अपनी मूल स्थिति में नई प्रतिक्रिया उत्पन्न करके जीवन को ऊँचा उठाता या गिराता है।"[१८३]

अतः अब भट्ट जी के एकांकियों का विवेचन नाटकीय तत्वों के आधार पर आवश्यक है।

कथावस्तु

भट्ट जी के एकांकियों की कथावस्तु में तीव्रानुभूति है। संक्षिप्त कथानक में आरम्भ से ही कौतूहल, जिज्ञासा, मिश्रित विस्मय, आकस्मिकता आदि का प्राधान्य है। उनके एकांकियों की कथावस्तु का आधार भारतीय इतिहास, संस्कृति, तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ हैं। इनके एकांकियों की कथा को हम आरम्भ, मध्य और अन्त तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं। वहाँ पाश्चात्य शैली वाली पाँचों कार्यावस्थाएँ क्रमशः उपलब्ध नहीं होतीं और क्लाइमेक्स भी अन्त में ही आता है। अर्थ-प्रकृतियों में नाटककार ने बीज पर जोर दिया है और कथा की गति को बनाए रखने के लिए संवाद, घटना, वस्तु पात्रों के एकीकरण के महत्त्व को स्वीकार किया है :

"एकांकी नाटक अपने में पूर्ण होता है। वह अपने से बाहर किसी की अपेक्षा नहीं रखता। वह बाण से चिड़िया की आँख बेधने वाले अर्जुन की तरह एकाग्रता, तन्मयता का ध्येय लेकर चलता है। नाटककार प्रारम्भ में आवश्यक सामग्री प्रस्तुत करके चरित्र-चित्रण को संवाद, चेष्टा, भावभंगी के सहारे दिखलाता है और बीच अथवा अन्त में एक ऐसी अवस्था आकर उपस्थित हो जाती है जहाँ घटना तीव्र वेग से गतिवती होने लगती है। एक धक्के की तरह या तो रुक जाती है जिसे देखकर दर्शक अभिभूत हो उठता है या फिर वह और आगे चलती है और परिणाम दिखाकर

१८२ 'साहित्य के स्वर'—नाटक के प्रति मेरा दृष्टिकोण, पृ० ७८।

१८३ वही—नाटक का विकास और वैविध्य, पृ० ६६।

समाप्त हो जाती है। मेरे नाटकों में 'क्लाइमेक्स' प्राय: आखिर में आता है। एकांकी पूरे नाटक का सूत्र रूप है। जो नाटक जितना ही गतिमान होगा वह उतना ही रोचक एवं आकर्षक होगा। गति को बनाये रखने के लिए सवाद, घटना, वस्तु पात्रों का एकीकरण होना आवश्यक है। सभी घटनाएँ, सभी वस्तुएँ नाटक का विषय नहीं बन सकती। उनमे काल की एकता, स्थान की एकता का होना भी आवश्यक है।"[१८४]

भट्ट जी ने कुछ एकाकियों की कथा का आधार मनुष्य की विभिन्न मानसिक प्रवृत्तियों और वैयक्तिक समस्याओं को भी बनाया है। इसके अतिरिक्त युग की बदलती हुई मान्यताओं को भी एकांकियों की कथा का आधार बनाया है। भट्ट जी के एकांकियों की कथावस्तु का विकास स्वाभाविक ढंग से होता है और मुख्य पात्रों की परस्पर विरोधी भावनाओं के तीव्र संघर्ष के माध्यम से चरम सीमा पर पहुँचकर समाप्त हो जाता है। कथा का अन्त प्राय: समस्या का हल प्रस्तुत करता हुआ होता है।

पात्र

भट्ट जी ने पात्रों के विषय मे लिखा है : "एकांकी नाटक मे इधर-उधर की बातों के लिए कतई गुंजाइश नही होती, क्योंकि उसका रचना-विधान सदा ही उसे ध्येय की ओर चलने को बाधित करता रहता है। पात्र के चेतना तन्तु व्यापक होकर निर्दिष्ट दिशा विशेष की ओर भागते हैं।"[१८५] वास्तव मे भट्ट जी के एकांकियों के पात्र यथार्थ की ओर अधिक झुके हुए है। जीवन की विभीपिकाओं, विवशता, विकलता और विफलता से वे दु:खी है। जीवन के कल्पना-लोक मे विचरण तो खूब करते हैं पर यथार्थ की ठोस धरती पर आते ही उनकी दशा दयनीय और करुणाजनक हो जाती है। सभी वर्गो के व्यक्तियो को इन्होंने अपने एकांकियों का पात्र बनाया है : "मेरे एकाकी नाटको मे सभी तरह के पात्र विद्यमान हैं और आज का मानव सत्य की डौंडी पीटने के बाद भी असत्य को प्रतिष्ठित कर रहा है। छल-छद्म और कपट जैसे आज उसके अस्त्र है। चरित्र और आदर्श जैसी चीज केवल कल्पना की वस्तु है। वह भीतर से कुछ और है, बाहर से कुछ और। यही और इसी प्रकार की ध्वनि पाठक और दर्शक नाटकों मे पायेंगे।"[१८६]

सांस्कृतिक एकांकियो मे पात्र अपनी-अपनी संस्कृति की दुहाई दे रहे है : "यह सब नाटक वैदिक युग से लेकर मध्य युग तक के विभिन्न चित्र उपस्थित करते है। जहाँ इनसे एक ही सग्रह मे इन दोनों कालो की झाँकी मिल सकती है वहाँ पाठकों और दर्शको को मेरी तत्कालीन चिन्तन प्रकृति का ज्ञान भी हो सकता है।

१८४ वही, पृ० ७०–७१।
१८५ वही, पृ० ७१।
१८६ 'आज का आदमी'—भूमिका, पृ० ख।

मेरे एकांकियों के पात्र भारतीय संस्कृति और भारतीय आदर्शों को आलोकित करने में सहायक होंगे।"[१८७]

नाटककार ने पात्रों का आश्रय लेकर सुन्दर ढंग से मानवीय प्रवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है : "वर्तमान काल में नाट्क तत्वों में मनोवैज्ञानिक तथ्यों का समीकरण आवश्यक हो गया है। कोई भी नाटक यदि मानसिक सन्तुलन एवं मनोविज्ञान की कसौटी पर ठीक नहीं उतरता तो वह आधुनिक दृष्टि से व्यवहार्य नहीं है और आज के युग के अनुरूप समस्याओं का समाधान भी नहीं कर सकता। मैंने पात्रों के माध्यम से इस कार्य को सम्पादित किया है।"[१८८]

नाटककार का मन उदात्त भावों और निःस्वार्थ सेवा में अधिक रमा है। इसीलिए कुशल एकांकीकार भट्ट जी ने 'मायोपिया' एकांकी में केशव को आदर्श पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है। इसीलिए वह सुधी से कहता है :

"जीवन केवल प्रेम, सौन्दर्य के बल पर ही नहीं चलता, वहाँ जीवन की गाड़ी को सुन्दर ढंग से चलाने से लिए तत्परता, सहयोग, सदाशयता की भी आवश्यकता है। वह चन्द्रिका में है। तुम्हारे भीतर मनुष्य के प्रति तिरस्कार, अपने प्रति अहंकार, ज्ञान के प्रति जागरुकता का भाव कभी भी उभर कर तुम्हें विद्रोही बना सकता है। वह मेरी भूल थी जो मैंने केवल सौन्दर्य और ज्ञान के सहारे तुमसे जीवन की भिक्षा माँगी थी। वह भूल थी सुधी।"[१८९]

भट्ट जी ने अपने एकांकियों में पात्रों के मानसिक संघर्ष को सफलता के साथ अंकित किया है। 'अन्धकार और……?' एकांकी में सेना का कैप्टेन महेन्द्र अन्तर्द्वन्द्व की आग में झुलस रहा है। 'दस हजार' नामक एकांकी में विशाखाराम और 'धूमशिखा' एकांकी में मन्दाकिनी इसी तरह के पात्र हैं। भट्ट जी के कुछ एकांकियों में प्रमुख पात्र स्त्री ही हैं। उनमें भट्ट जी ने आज की नारी की स्वच्छन्दता, उच्छृंखलता, विषयलोलुपता, विकृत अहं, पश्चिम के अन्धानुकरण का और उसकी विवाह-विषयक मान्यताओं का यथार्थ चित्रण किया है। जैसे 'यह स्वतन्त्रता का युग' नामक एकांकी में मीना जयन्त को कह रही है : "जीवन किसे कहते हैं ? क्या घर में पिसते रहना जिन्दगी है ? सुनो जयन्त, आज नारी का दृष्टिकोण बदल गया है। वह शादी को अब एक कण्ट्रैक्ट मानती है, जब तक भी निभे।"[१९०]

इसके विपरीत एक भारतीय विचारों की पोषिका नारी मधु है, जिसकी अपने पति में दृढ़ आस्था है :

"स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध निश्छल भाव से एक दूसरे को देने के लिए है। जो कुछ स्त्री के पास है यदि वह पुरुष को दे डाले, तो कोई कारण नहीं कि पुरुष से

१८७ 'आदिम युग और अन्य नाटक'—भूमिका, पृ० ख।
१८८ 'समस्या का अन्त'—प्राक्कथन पृ० ४।
१८९ 'पर्दे के पीछे'—मायोपिया, पृ० ६५।
१९० वही—यह स्वतन्त्रता का युग, पृ० ७०।

वह उतना या उससे अधिक प्राप्त न कर सके। यही पाया भी है मैंने।"[१६१]

भट्ट जी वास्तव मे समाज के विनाशकारी कीटाणुओं के विपक्ष में हैं और सर्वत्र सुख, शान्ति, प्रेम, सद्भाव की कामना करते हैं। यही काम उन्होंने अपने नाटकों में पात्रों के द्वारा सम्पन्न कराया है। उनका यह मन्तव्य द्रष्टव्य है :

"अन्धानुकरण मत करो, सोचो और प्रयोग करो।"[१६२]

भट्ट जी ने अपने पात्रों के द्वारा व्यक्ति को लोक मे विवेक से चलने का सन्देश और अनुरोध किया है।

कथोपकथन

भट्ट जी के एकांकियों के सम्वाद सरल स्वाभाविक पात्रानुकूल होने के साथ-साथ तीक्ष्णता तथा यथार्थ के पोषक भी हैं। भट्ट जी ने स्वय लिखा है :

एकांकी नाटक मे क्षिप्रगति के साथ संवाद की तीक्ष्णता तथा यथार्थ का होना आवश्यक है।"[१६३] इनके एकांकियों के संवादों में ये गुण प्रायः उपलब्ध हो जाते हैं, यथा :

माँ—क्या हुआ, क्या हुआ बेटा ?

रमा—क्या हुआ, क्या हुआ भैया ?

नौकर—कैसी गोली ? क्या हुआ साहब को, माँ जी ?

(नौकर और माँ चले जाते हैं)

रमा—(सकपकाई हुई) क्या है भैया ?

महेन्द्र—(उसकी तरफ देखता रह कर) गोविन्द तुम्हारे साथ मजाक करता था न, कुदृष्टि से तुम्हें देखता था न ?

रमा—नहीं तो, तुझसे किसने कहा ?

महेन्द्र—मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा है कि वह तुम्हारे साथ हँसता था।

रमा—तो हँसना क्या बुरी बात है ?

महेन्द्र—(क्रोध से) हँसना कोई बुरी बात नही है ? दुष्टे, मैं तुझे मार डालूँगा।

रमा—(वैसे ही निर्भीक रहकर) उनकी दृष्टि शुद्ध है। वे दार्शनिक हैं, भोले हैं।

महेन्द्र—वे दार्शनिक हैं ?

रमा—हाँ।[१६४]

भट्ट जी के कथोपकथन चुस्त एवं पात्रों के चरित्र और विचारों की

१६१ वही—मायोपिया, पृ० ८६।

१६२ 'मुक्तिदूत', पृ० ७७।

१६३ 'साहित्य के स्वर'—नाटक का विकास और वैविध्य, पृ० ७१।

१६४ 'धूमशिखा'—अन्धकार और ? पृ० ९४–९५।

व्याख्यानमाला हैं :

रघुवंश—जी ।

किशोरी—बात तो ठीक है । इसीलिए आपका महत्त्व समाज मानता ही है ।

भूषण—किस रूप में ?

रघुवंश—आपको समाज का संचालक मानकर, साहित्य-स्रष्टा, हितेच्छु के रूप मे।

भूषण—आप मानते हैं ?

रघुवंश—जी ?

भूषण—कि मै समाज का संचालक हूँ ?

रघुवंश—यानी वास्तविक कवि, दार्शनिक, विचारक ?[१६५]

व्यंजना और व्यंग्य की तीखी चोट उनके सामाजिक एकांकियों की प्रिय निधि है । 'नई बात' एकांकी में रघुवंश के ये शब्द द्रष्टव्य हैं :

"तुम और हम, यदि सच्चाई से देखा जाए, तो शासन की क्रूरता की रस्सियों को मजबूत करने वाले पुर्जे हैं, जहाँ कानून की भूमि पर कुछ लोगों के विलास और नृत्य का आयोजन होता है । कुछ लोगों से मेरा मतलब एक पार्टी, एक प्रकार के विचार के लोगों से है, जो सरकार चलाते हैं ।"[१६६]

भट्ट जी ने अपने एकांकियों के कथोपकथन में मनोवैज्ञानिकता को विशेष प्रश्रय दिया है । अस्तु—

आगन्तुक—हाँ मन्दाकिनी, प्राणवाही सतत स्वर तुम्हें जीवन के स्वर्ग की ओर पुकार रहा है ।

मन्दाकिनी—दोपहर की लू में उड़ते हुए बगूलों में मेरी छाया हँसती देख पड़ रही है । परन्तु···

साधना—मैं स्वयं भुआली तक तुम्हारे साथ चलूँगी जीजी ।

मन्दाकिनी—चलूँ, चलूँ, तो क्या ? (चुप रहती है) ठहरो मुझे सोच लेने दो ।

आगन्तुक—मैं एम्बुलेंस का प्रबन्ध करने जाता हूँ । (उठने लगता है) ।

मन्दाकिनी—(ध्यानस्थ-सी होकर) ठहरो । मुझे बहन की आँखों के आँसू छलछलाते दिखाई देते हैं । चित्र के हृदय की धड़कन बढ़ रही है ।

आगन्तुक—यह तुम्हारी कल्पना का चित्र है मन्दाकिनी । मुझे अवसर दो प्रिये ।

मन्दाकिनी—नहीं, यह नहीं हो सकता । मैं नहीं जाऊँगी । तुम जाओ विपिन बाबू, अब यहाँ कभी मत आना ।[१६७]

१६५ 'पर्दे के पीछे',—नई बात, पृ० २१ ।
१६६ वही, पृ० ११ ।
१६७ 'धूमशिखा', पृ० १७–१८ ।

इस प्रकार अन्त में हम संक्षेप में कह सकते है कि भट्ट जी के एकांकियों के कथोपकथन सरल, संक्षिप्त, चुस्त, भावानुकूल, मनोवृत्तियों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषक और रहस्यों का उद्घाटन करने के लिए व्यग्य की तीखी मार लिये हुए हैं। मानव के अन्तर्द्वन्द्व का अभिव्यक्तिकरण इनके कथोपकथन की विशेषता है। नाटककार कथनोपकथन के माध्यम से ही पात्रों का चरित्र-चित्रण भी कर देता है। वास्तव मे भट्ट जी के कथोपकथन ने उनकी एकांकी नाट्य-कला के उत्कर्ष को और अधिक सशक्त और प्राणवान् बनाया है।

दृश्य-विधान

भट्ट जी ने अपने एकांकियों में दृश्यों का विधान रंगमंच को पूर्णत: दृष्टि में रखकर किया है। भट्ट जी ने इस सम्बन्ध में अपने विचार भी व्यक्त किए है :

"जिन देशों में साहित्यिकों ने नवीन चेतना दी है वहाँ वे नाटकों के द्वारा ही सफल हुए हैं। रंगमंच की सफलता उसका सार्वजनिक होना है और सार्वजनिक होकर ही रंगमंच अपना उद्देश्य पूरा कर सकता है। भट्ट जी दृश्य को सजाकर पाठकों और दर्शकों के सम्मुख प्रस्तुत करने में सफल है :

"अंग्रेजी ढंग से सजा हुआ कमरा, जिसमें कालीन, सोफा सेट, छोटी मेज, गुलदस्ता पीतल के गमले मे, कुछ चित्र पाश्चात्य देशों के है।"[१९९]

भट्ट जी ने प्राय: सीधे-सादे दृश्यों का आयोजन किया है, जो सरलता से रंगमच पर दिखाये जा सकते है, यथा : "किताबों की रैक के ऊपर दीवार पर एक कलेंडर टंगा है, मेज के ऊपर दीवार में साधारण चित्र, पलंग पर किताबें इधर-उधर फैली हैं। एक तरफ सवेरे का समाचार-पत्र पड़ा है। कोने में मोटी-मोटी दो-तीन किताबें।"[२००]

उनके पाँच-छ: एकाकियों को छोड़कर प्राय: सभी एकांकी एक दृश्य में समाप्त हो जाते हैं। उन्होंने इस विषय में लिखा है :

"एकांकी नाटक मे अंक का अर्थ दृश्य-पूर्णता है। इसलिए साधारणतया एकांकी एक दृश्य मे समाप्त हो जाना चाहिए। जहाँ ऐसा नहीं होता वहाँ समझना चाहिए कि नाटककार बाध्य होकर कई दृश्यों में उसकी परिसमाप्ति करना चाहता है। फिर भी एकाकी की सफलता एक ही दृश्य मे है, यह प्राय: व्यापक सत्य है। मैं तो समझता हूँ कि कई दृश्य देकर नाटक न समाप्त करने पर उसे द्वयंकी या त्रयंकी नाटक कहना उपयुक्त होगा।"[२०१] इसके अतिरिक्त भट्ट जी ने रंगमच और दृश्य-नियोजन के महत्त्व पर भी स्वयं प्रकाश डाला है—"कला रंगमच की सादगी

१९८ 'समस्या का अन्त'—प्राक्कथन, पृ० ३।
१९९ 'पर्दे के पीछे'—बाबू जी, पृ० २९।
२०० 'धूमशिखा'—नया नाटक, पृ० ४४।
२०१ 'साहित्य के स्वर'—नाटक का विकास और वैविध्य, पृ० ७१–७२।

में है, उसकी चमक-दमक में नहीं। अन्यथा दर्शक यही मानता रहेगा कि वह नाटक देख रहा है। दर्शक और दृश्य में भेद न रहे। तल्लीनता नाटक की कसौटी होनी चाहिए। इसीलिए रंगमच पर प्रकाश भी उतना अपेक्षित है जितने से दर्शक को पात्रों के मन के भीतर प्रवेश करने की सुविधा हो।"[२०२]

"चारों ओर शोर मच रहा है। एक तरफ वेद-पाठ की आवाज, दूसरी तरफ यज्ञ की ध्वनि, 'स्वाहा' लिये। 'साग हो गया है', 'लड्डू रख दे', आदि की आवाजें।"[२०३]

इसी तरह सभा के दृश्य का वर्णन कितनी कुशलता से किया गया है : "कुर्सी-मेज के सामने जनता बैठी है। स्वामी जी भाषण देने खड़े होते हैं।"[२०४]

इसी तरह और :

"बीच में एक तख्त, जिस पर गद्दा और चादर बिछी है। पीछे तकिया। एक तरफ अलमारी में कुछ बहियाँ रखी हैं। सामने सन्दूक की तरह लम्बी मेज जिसके किनारे पर दावात, कलम, रेतदानी हैं। उसके पूर्व की तरफ एक बेंच। सामने दीवार पर गाँधी और जवाहर लाल की दो बड़ी तस्वीरें। दामोदर लाल अपने आप बोल रहा है।"[२०५]

"अरावली पहाड़ी पर मन्दिर का भग्नावशेष। मन्दिर की सीढ़ियाँ उतर कर झुरमुट में एक गुफा है। द्वार पर एक टूटी-सी चटाई पड़ी है, उस पर एक वृद्ध लेटा है, जिसके शरीर पर घावों के कई चिन्ह हैं, कुछ घाव ताजे भी हैं।"[२०६]

वस्तुत: भट्ट जी के एकांकियों की दृश्य-योजना कला और रंगमंच की दृष्टि से प्राय: सफल, सरल एवं आकर्षक है।

देशकाल और वातावरण

भट्ट जी के एकांकियों के माध्यम से पाठक को आदिम, मध्य और आधुनिक काल के साथ-साथ वैभिन्न्यपूर्ण वातावरण ज्ञान उपलब्ध होता है। हमें इनके सांस्कृतिक एकांकी नाटकों में आदिम युग से लेकर आज तक की संस्कृति के विभिन्न चित्र मिलते हैं। इनके सामाजिक एकांकियों से तत्कालीन समाज के वातावरण का और राजनीतिक एवं ऐतिहासिक एकांकियों से तत्कालीन राजनीति और इतिहास का ज्ञान हो जाता है। इस सम्बन्ध में भट्ट जी के विचार द्रष्टव्य हैं :

"फिर प्रत्येक देश की अपनी-अपनी समस्याएँ, अपना इतिहास होने के

२०२ वही—नाटक के प्रति मेरा दृष्टिकोण, पृ० ८०।
२०३ 'आज का आदमी'—सत्य का मंदिर, पृ० ६०।
२०४ वही, पृ० ६०।
२०५ 'जवानी और छ: एकांकी'—मन का रहस्य, पृ० ५३।
२०६ 'अभिनव एकांकी'—दुर्गा, पृ० ३५।

कारण वे व्यवहार में भिन्न हो गए है । हाँ, देशकाल के व्यवधान समाप्तप्राय होने के कारण जीवन की गति, उसकी समस्याएँ प्राय: एक-सी है ।"[२०७]

इसके अतिरिक्त देश-काल और वातावरण के महत्त्व को स्वीकार करते हुए लिखा है :

"प्रत्येक देश की अपनी परम्परा, संस्कृति और तर्कसंगत विश्वास होते है जो जाति की जड़ों तक गहरे पैठे होते है । उनका मर्म-दर्शन करके ही हम उसकी समस्याओं को सुलभा सकते हैं । मै मानता हूँ मेरे देश की समस्याओं का समाधान भी मेरे ही देश में है । उसका समाधान ढूँढने हमें कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है । केवल आर्थिक समीकरण ही हमारी समस्या का समाधान नहीं है । मनुष्य की एक और भी भूख है, वह है उसका आध्यात्मिक चरित्र-निर्माण, उसका सांस्कृतिक-चेतनात्मक जीवन । हम जो कुछ नहीं हैं वह हमें बनना होगा ; जो कुछ हैं हम भूल गए हैं, उसे पाना होगा ।"[२०८] इस प्रकार भट्ट जी ने देश के विभिन्न कालों के वैभिन्न्यपूर्ण चित्र प्रस्तुत करते हुए और तत्कालीन वातावरण के सब रंगों को उभारते हुए आज के मानव के लिए सुख-शान्ति, प्रेम, सद्भाव, चारित्रिक दृढता की कामना की है । प्राचीन, मध्य और आधुनिक युग की प्राय: सभी झाँकियाँ उनके एकांकियों में भरी पडी हैं । पर इनमें उदात्त मानवीय रंग सबसे अधिक आकर्षक और प्राणवान् है । इसके साथ-साथ भट्ट जी जिस युग का चित्र अंकित करते हैं, उस युग का वातावरण भी पाठकों की आँखों के सम्मुख घूमने लगता है । वस्तुत: भट्ट जी दृश्य-विधान और वातावरण-निरूपण में सिद्धहस्त कलाकार थे ।

उद्देश्य और शैली

भट्ट जी ने अपने एकांकी नाटक किसी-न-किसी उद्देश्य को लेकर लिखे हैं । उन्होने इस सम्बन्ध में लिखा भी है :

"नाटकों में रस-संचार के अतिरिक्त उद्देश्य की भी प्रधानता है केवल रस ही जीवन नहीं है, उसमें उद्देश्य की भी प्रधानता होनी चाहिए । बीज में फल की तरह नाटक का एक उद्देश्य होना चाहिए । और समस्या-नाटकों के लिए तो उद्देश्य का होना परमावश्यक है । रस मनुष्य के मनोभावों मे एक सन्तुलन, प्रवृतियों में एक संघर्ष, चेतना के प्रति तीव्रता, मानसिक क्रिया-प्रतिक्रिया से जन्य दर्शक के विवेचक को जागृत करता है । त्याज्य और उपादेय की प्रवृत्ति को रगड़ कर उकसाता है, किन्तु उद्देश्य तो जीवन की वास्तविकता है । आज के नाटक का परम तत्व हमारा वैज्ञानिक तर्क सिद्ध होना चाहिए ।"[२०९] दरअसल भट्ट जी के एकांकियो का उद्देश्य प्राय: यही वैज्ञानिक तर्क है । वैसे तो आपने समष्टि भावना से प्रेरित होकर

२०७ 'साहित्य के स्वर,, —नाटक का विकास और वैविध्य, पृ० ७३ ।
२०८ 'समस्या का अन्त'—प्राक्कथन, पृ० ४–५ ।
२०९ वही,—प्राक्कथन, पृ० ५ ।

ही अपने एकांकियों का सृजन किया है। व्यष्टि का समष्टि में लीन होना ही उनका मुख्य स्वर है।

शैली की दृष्टि से उन्होंने पाश्चात्य नाट्य कला की टैकनीक को अपनाया है पर साथ-साथ भारतीय नाट्य-शैली को भी आवश्यकतानुसार प्रयोग में ले लिया है। इसीलिए उनके एकांकियों में पाश्चात्य कलेवर के साथ-साथ ही भारतीय नाट्य-कला की आत्मा का स्वर भी मुखरित हो रहा है। भट्ट जी ने स्वयं कहा है :

"हमारा विश्वास है हिन्दी का एकाकी नाटक एकदम नये रंगढंग से भारत के रंगमंच पर प्रविष्ट हुआ है। वह उसका भारतीय रूप होते हुए भी पश्चिमीय अनुकरण, प्राण, स्फूर्ति लेकर आया है। फलत: हमारे हिन्दी एकांकी नाटक पाश्चात्य-साहित्य की प्रेरणा हैं।"[२१०] भट्ट जी का नाटक की परिणति में पूर्ण विश्वास है :

"यह परिणति नाटक की जान है। इसके बिना उसमें पूर्णता नहीं आती। यह पूर्णता या परिणति समन्वित होकर ही चरमोत्कर्ष का रूप ग्रहण करती है।"[२११]

"इन्होंने पाश्चात्य शिल्प को मात्र ढाँचे के तौर पर अपनाया है। उसमें हाड़-माँस भारतीय है, रूप-रंग और चेतना भारतीय है, समस्याएँ, आकांक्षाएँ, विचार-धाराएँ, कल्पनाएँ, अनुभूतियाँ, यथार्थ जीवन की संगतियाँ, असंगतियाँ एवं विकृतियाँ सब मौलिक रूप से भारतीय हैं। एकांकीकार के रूप में भट्ट जी की इस अविकल भारतीयता एवं निश्छल मौलिकता ने ही उन्हें हिन्दी-साहित्य-जगत् में सर्वाधिक अभिनन्दनीय एवं पूज्य बनाया है। भट्ट जी के एकांकी मात्र मनोरंजन की वस्तु नहीं। वे जीवन को नई चेतना दे देने के सदुद्देश्य से अनुप्राणित हैं।"[२१२]

निष्कर्षत: भट्ट जी के एकांकियों की शैली पाश्चात्य होते हुए भी भारतीय ही है, और सभी नाटक उद्देश्यपूर्ण हैं। अत: उद्देश्य और शैली की दृष्टि से उनके नाटक मौलिक और नवीन हैं। इसके अतिरिक्त भट्ट जी की एकांकी कला में अन्त-र्द्वन्द्व और घटनाओं का घात-प्रतिघात सबसे प्रधान तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है। इनके एकांकियों में दो परस्पर-विरोधी भावनाएँ अपने-अपने सत्य के साथ आपस में टकराती हैं और उनका संघर्ष समूचे एकांकी में फैल जाता है। इस प्रकार एकांकी में एक निश्चित समस्या की तीव्रता, विकास, आवेग ही मूल विशेषता है। कौतूहल और जिज्ञासा इन्हें एक सूत्र में बाँधे रहते हैं। समस्या की चरम अन्विति भट्ट जी के नाटकों की बड़ी भारी विशेषता है। शैली की दृष्टि से भट्ट जी के नाटक अपने ढंग के हैं। कला की दृष्टि से भट्ट जी की प्रौढ़ कला के दर्शन उनके एकांकियों

२१० 'साहित्य के स्वर'—नाटक का विकास और वैविध्य, पृ० ६६।

२११ वही, पृ० ७३।

२१२ 'उदयशंकर भट्ट : व्यक्ति और साहित्यकार'—आधुनिक हिन्दी के उन्नायक : पं० उदयशंकर भट्ट, पृ० ११३।

में होते हैं । अतः उनके एकांकी जीवन में आनन्द या मनोरंजन देने वाले ही नहीं हैं, अपितु एक निश्चित उद्देश्य के प्रतिपादक है ।

अभिनय

भट्ट जी के अनेक एकांकी अभिनीत हो चुके हैं । अभिनय की क्षमता तो प्राय: सभी एकांकी रखते है। क्योंकि उन्होंने अभिनय की दृष्टि से ही एकांकी लिखे है, इसलिए अभिनय की कला उनके एकांकियों मे चरमोत्कर्ष पर है । उन्होने स्वयं लिखा है :

"हमें नाटकों को अभिनय की सुन्दरता की दृष्टि से उठाना होगा । उनमें जीवन की सच्ची व्याख्या करनी होगी, उनके लिए रगमच को नई कला, नई सुविधाओं के अनुसार बनाना होगा ।"[२१३]

अभिनय के लिए उपयुक्त रंगमंच की भी आवश्यकता होती है, इसीलिए भट्ट जी ने रंगमच के सम्बन्ध में भी अपने विचार व्यक्त किए हैं :

"रंगमंच स्वयं कुछ भी नहीं है, वह उस मकान की तरह है जहाँ मनुष्य रहता है । जहाँ तक हो सके रंगमंच सानुरूप, सादा और सहज होना चाहिए । स्वाभाविकता का प्रदर्शन रंगमंच का विशेष गुण होना चाहिए ।"[२१४]

भट्ट जी ने अपने एकांकियो मे वाचिक आंगिक, आहार्य और सात्विक सभी प्रकार के अभिनय का आश्रय लिया है ।"[२१५]

१. वाचिक अभिनय—जहाँ पात्र कोष्ठक में 'धीरे से', 'चुप', 'जोर से' आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं, वहाँ पाठकों को उनके वाचिक अभिनय का परिचय मिलता है ।

२. आंगिक अभिनय—यह हँसकर, दीर्घ साँस लेकर, बैठकर, देह छूकर, आदि क्रियाओं से जाना जाता है । भट्ट जी के एकाकियो मे प्राय: यह क्रियाएँ मिल जाती है । जैसे—आँखे पोंछकर,[२१६] आश्चर्य से,[२१७] हँसकर,[२१८] हाथ मटकाकर ।[२१९]

३. आहार्य—भट्ट जी के एकांकियो में इस अभिनय का परिचय पात्रो की पोशाक, आभूषण और बिन्दी लगाने की क्रिया आदि से मिल जाता है । जैसे—घूँघट में,[२२०] खादी की खाड़ी ।[२२१]

२१३ 'साहित्य के स्वर'—हिन्दी का नाट्य साहित्य, पृ० ८७–८८ ।
२१४ वही—नाटक के प्रति मेरा दृष्टिकोण, पृ० ८० ।
२१५ 'पर्दे के पीछे'—नई बात, पृ० ७ ।
२१६ वही, पृ० ६ ।
२१७ वही, पृ० २२ ।
२१८ वही—ग्रहदशा, पृ० १५६ ।
२१९ वही, पृ० १५५ ।
२२० वही, पृ० १५५ ।
२२१ वही, पृ० १६२ ।

४. सात्विक इस अभिनय के अन्तर्गत स्वेद, रोमांच, अश्रु आदि का प्रभाव रहता है। भट्ट जी के परिस्थितियों से और जीवन-संघर्ष में पराजित पात्र इस अभिनय का परिचय सहज में दे देते हैं। जैसे—रोकर, हू—हू—हू—हू।[२२२] पैरों में गिरकर—अश्रुओं का……।[२२३]

वस्तुतः भट्ट जी के एकांकी अभिनय की दृष्टि से काफी सफल हैं। हाँ, कुछ बहुत थोड़े संशोधन की आवश्यकता अवश्य पड़ेगी। जैसे—छाया पात्रों का हटाना और 'समस्या के अन्त' एकांकी में माणविका का स्वयं अपना सिर अपने हाथ से काट लेना, आदि।

अभिनय की दृष्टि से भट्ट जी के एकांकी प्रायः सफल हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में भट्ट जी के एकांकी नाटक सामाजिक जीवन की आलोचना, राष्ट्रीय जागरण तथा भारतीय संस्कृति के वैभव एवं गौरव के आख्याता हैं। ये एकांकी विषय-वैविध्य की दृष्टि से व्यापक सूक्ष्म अन्तःदृष्टि, व्यंग्य की मार, जन-जीवन का यथार्थ चित्रण लिये हुए हैं।

"ज्यों-ज्यों भट्ट जी की कला प्रौढ़ होती गई है, त्यों-त्यों उसमें व्यंजना का विकास होता गया है। चिन्तन तथा अनुभव से परिपुष्ट भट्ट जी की जीवन-दृष्टि अब प्राचीन और नवीन, प्रवृत्ति और निवृत्ति, अनुशासन और स्वच्छन्दता में सहज ही सन्तुलन कर लेती है और इस युग की समस्याओं के मर्म तक पहुँच कर व्यंग्य के द्वारा उनके समाधान की ओर संकेत कर सकती है। उनका व्यंग्य केवल काट करके नहीं रह जाता, उसमें जोड़ने की भी क्षमता है। दूसरे शब्दों में वह केवल निषेधात्मक ही नहीं है, रचनात्मक भी है। उसमें केवल भर्त्सना-मात्र नहीं है, सहानुभूति भी है।"[२२४]

भट्ट जी के एकांकियों की शैली पश्चिम की होते हुए भी भारतीयता के रंग में रंगी हुई है। उनकी भाषा मंजी हुई और सम्वाद सौम्य हैं। जब भट्ट जी भारतीय संस्कृति के धूमिल चित्रों का अनावरण करते हैं, तो भाषा शुद्ध संस्कृत शब्दों की अनुगामिनी होकर चलती है और जब आधुनिक समाज का चित्रण करते हैं तो भाषा में अंग्रेजी शब्द और वाक्य सुनाई पड़ने लगते हैं। अतः भाषा युगानुरूप और पात्रानुकूल है। नाटककार दुःखान्त घटना में एक-न-एक ऐसा मर्मस्पर्शी स्थल लाकर जुटा देता है जो पाठक और दर्शक को और अधिक दुःखी बना देता है। इससे दृश्य और भी अधिक करुण हो जाता है। वस्तुतः भट्ट जी को करुण परिस्थितियों से अधिक प्रेम था। इसलिये उन्हें 'हिन्दी का करुण कलाकार' कहना अधिक समीचीन होगा।

२२२ वही—अपनी-अपनी खाट पर, पृ० १०८।

२२३ वही—मायोपिया, पृ० ६४।

२२४ वही—भूमिका, पृ० ३ डॉ० नगेन्द्र।

भट्ट जी अपने एकांकियों में आदर्श की अपेक्षा यथार्थ की ओर अधिक झुके हुए हैं। वास्तव में उनकी वस्तुवादी और यथार्थवादी दृष्टि ने उन्हें यथार्थवादी कलाकार बना दिया है।

उनके एकांकियों में एक निश्चित समस्या की तीव्रता द्रुत विकास, आवेग और चरम सीमा पर उस समस्या की अन्विति एक विशेषता बनी हुई है। उन्होंने अपने एकांकियों में पात्रों का भी बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया है। इस सम्बन्ध में विचार भी व्यक्त किए है :

"संवाद स्वयं नाटक नहीं है, नाटक तो केवल पात्र है।"[२२५]

वस्तुतः भाव, भाषा और कला की दृष्टि से भट्ट जी के एकाकी सफल कहे जा सकते हैं। अतः भट्ट जी हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठित और कुशल एकांकीकार थे।

२२५ 'साहित्य के स्वर'—नाटक का विकास और वीवध्य, पृ० ६२।

नवम अध्याय

उपसंहार

भट्ट जी द्विवेदी युग से लेकर अधुनातम साहित्यकारों में से एक महान् साहित्यकार थे। उनके कवि रूप का विकास द्विवेदी युग में हुआ पर वह उस युग का ही होकर नहीं रह गया था। युग-चेतना के साथ-साथ उनकी काव्य-सीमाएँ विस्तृत, गतिशील एवं कल्पना विचार-स्वातन्त्र्य को लेकर और चिन्तनमय होकर व्यापक हो गई। उनकी काव्य-कला उत्तरोत्तर विकास की ओर गतिशील रही। भट्ट जी एक जागरूक, विकासशील और सार-ग्राहिणी प्रवृत्ति के कवि एवं नाटककार थे। उन्होंने नवीनता को बड़े चाव से अपनाया और उनकी मानसिक भूमि कभी अनुदार नहीं हुई, यही उनके साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है। भट्ट जी को किसी काव्य-धारा का प्रतिनिधि कवि नहीं कहा जा सकता पर वे भारतीय जीवन और संस्कृति के प्रतिनिधि अवश्य हैं। उन्होंने नए और पुराने सभी प्रकार के काव्योपकरणों का प्रयोग किया है, परन्तु अपने ढंग से। वे काव्य की अन्तर्वर्तिनी सांस्कृतिक प्रवृत्ति के प्रवर्तक, परिपोषक और पुरस्कर्ता कवि थे। मानव जीवन का इतना व्यापक वर्णन किसी अन्य कवि के काव्य में कदाचित् ही उपलब्ध हो। भट्ट जी निष्ठावान् और मानवतावादी कवि और नाटककार थे। उन्हें जो समय की गति के अनुसार उपयोगी और आवश्यक जान पड़ा उसका वर्णन उन्होंने बड़ी निष्ठा से और तन्मयता से किया। वे जिस वस्तु में विश्वास रखते थे, उसमें उनके हृदय का सम्पूर्ण योग रहता था। उनके काव्य और नाटकों का सही-सही मूल्यांकन भी इसी विश्वास-परायणता और आस्था की परख के द्वारा ही हो सकता है। भट्ट जी युग-प्रवाह में बहते नहीं थे अपितु नीर-क्षीर-विवेक के अनुसार जो शिवं लगा उसे ही ग्रहण किया। इसीलिए उन्होंने युग की किसी काव्य-धारा को निस्सार अथवा अर्थ-हीन नहीं माना। सभी का अपने साहित्य में आवश्यकतानुसार समावेश किया है। जितनी सामाजिक चेतना भट्ट जी के साहित्य में अभिव्यक्त हुई है उतनी सम्भवतः ही किसी अन्य कवि में उपलब्ध हो। उन्होंने धर्म और संस्कृति के सामंजस्य को भी

अपना काव्य-विषय बनाया है,' शुद्ध आख्यानात्मक विषयों से लेकर व्यक्ति-वैचित्र्य-प्रदर्शक काव्य तक की रचना की है। उनकी मनोभूमि सूक्ष्म सौन्दर्य-बोध मात्र तक ही सम्बद्ध नहीं, अपितु प्रत्यक्ष व्यावहारिक जीवन के भी वे सच्चे उपासक और पथ-प्रदर्शक थे। भट्ट जी का कर्तृत्व महान् है, उनकी सर्जन शक्ति तथा काव्य प्रतिभा श्लाघनीय एवं मर्मस्पर्शी है। वे जितने उदार थे उतने ही विनयशील एवं विश्वासों में दृढ़। वे अपनी युग-चेतना में मध्य-युगीन संस्कारों और मानवोत्थानकारी आदर्शों को इस प्रकार समन्वित रखते है कि आश्चर्यान्वित होना पडता है।

भट्ट जी की साहित्य परिधि को युग-परिस्थितियों ने सिंचित किया, उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ाई और बीजों ने अकुरित होकर शनैः-शनैः पौधे का रूप धारण कर लिया। एक दिन यही पौधा विशाल वट-वृक्ष हो गया जो आज हिन्दी जगत् को शीतल छाया एवम् आनन्द प्रदान कर रहा है। उनमें आवेग और कल्पना का मणि-कांचन योग सहज रूप में हुआ है। कभी उन्होने समय के वातावरण से उद्वेलित हो विक्षोभकारी घोष किया है और कभी प्रकृति तथा मानव संसर्ग से आत्मगत अनुभूति-परक सौन्दर्य और प्रेम के गीत गाए हैं। उनका जीवन गत्यात्मक था जो उनकी काव्य-कृतियों एवं नाटको में अभिव्यक्त हुआ है। उनका साहित्य सजग, क्रियात्मक एवं प्रभावशील है। उसमें समसामयिक परिस्थितियों का स्पन्दन और मानवीय मनोवृत्ति का कुण्ठारहित समावेश है।

भट्ट जी के साहित्य को समग्र रूप से देखा जाय तो प्रेम (राष्ट्र-प्रेम, मानव-प्रेम) तथा यथार्थ, ये दो रूप दीख पड़ते है। जीवन के मोड़ों तथा जीवन की उपलब्धियों के साथ चिन्तन एवं जीवन-दर्शन में भी परिवर्तन आता गया और कविता का स्वर भी क्रमशः परिवर्तित होता रहा। भट्ट जी का साहित्य मात्रा मे स्वल्प नहीं है। उनके द्वारा लिखित बारह काव्य कृतियाँ, तेरह नाटक और साठ के लगभग एकाकी उपलब्ध होते हैं। भट्ट जी की सर्वाधिक सफलता उनके गीति-नाट्य और मुक्तकों में हैं। वस्तुतः व्यष्टि पर उनकी दृष्टि सर्वाधिक टिकी है। उनके काव्य में सर्वत्र मुक्त छन्द के साथ-साथ मुक्त आत्मा का मुक्त आख्यान मिलता है। सांस्कृतिक जागरण का जितना काव्याभिव्यंजन भट्ट जी ने किया है उतना प्रसाद जी के अतिरिक्त सम्भवतः किसी अन्य कवि ने शायद ही किया हो। मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति के अग्रदूत के साथ-साथ वे सफल नाटककार के उत्तर-दायित्व का निर्वाह भी सफलता के साथ करते हैं और विशेषकर स्वतन्त्रता संग्राम के साहित्य में उनका विशिष्ट स्थान है। साहित्य का प्रयोजन आत्मानुभूति है। उसकी प्रेरणा भी अनुभूति ही है। अनुभूति वही है जो काव्य या कलाओं के रूप में अभिव्यक्त होती है। गहरे अनुभवों का व्यक्तित्व से निकट सम्पर्क और जीवन के इतिहास में, उपक्रम में जो घनिष्ठतम अनुभव होते हैं उन्हें ही अनुभूति की सज्ञा दी जाती है। साहित्य का मूल भी आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति ही है। भट्ट जी के साहित्य में यही अनुभूति सर्वत्र अभिव्यक्त हुई है।

भट्ट जी ने समाज की किसी भी रूढ़ मान्यता और परम्परा के आगे अपने को नहीं झुकाया। अविराम संघर्ष और निरन्तर विभीषिकाओं का सामना करने से उनमें एक मानवोचित आत्म-निष्ठा उत्पन्न हो गई थी जो उनके साहित्य में आस्था के रूप में अभिव्यक्त हुई है। भट्ट जी ने कहीं पर भी विपदाओं के प्रति आत्मार्पण नहीं किया है। इसीलिए उनके पाठक को उनकी रचनाओं में एक विशेष प्रेरणा और स्फूर्ति मिलती है। उनकी कृतियों में निम्नांकित तत्त्व द्रष्टव्य हैं :

१. समाज में प्रचलित जीवन मान्यताओं का पर्यालोचन एवं संस्कृति के उपकरणों के प्रति आस्था।

२. मृत आदर्शों और जीर्ण रूढ़ियों का विरोध।

३. उनके काव्य और नाटकों का मूल भाव करुणा है और धरातल शुद्ध मानवीय है, दूसरे शब्दों में उसका मूलभूत जीवन-दर्शन विशुद्ध मानववाद है।

४. चिन्तन और कल्पना के कारण उनके साहित्य में अन्तर्मुखी चेतना अधिक दृष्टिगोचर होती है।

५. उनके काव्य और नाटकों में उदात्त के प्रति निष्ठा का भाव सर्वाधिक स्पृहणीय है।

६. बहिर्जीवन के साथ अन्तर्जीवन के सामंजस्य की आकांक्षा भी अत्यधिक गौरवशालिनी है।

७. आधुनिक युग की सभी समस्याएँ उनके साहित्य में समाधान खोजती हुई विचरणशील हैं।

८. नारी के प्रति विशिष्ट दृष्टिकोण प्रायः सर्वत्र व्याप्त हैं।

भट्ट जी एक चिन्तनशील मनीषी साहित्यकार थे। अन्तप्ररणा प्रायः सभी साहित्यकारों में होती है पर भट्ट जी में वह सर्वाधिक है। वे अपने सभी भावों और विचारों को चिन्तन की कसौटी पर पहले कस लेते हैं और फिर उन्हें ऐसा रूप दे देते हैं कि बिना प्रयास ही अभिव्यक्त हो जाते हैं। उन्होंने खुलकर कला को मूर्त रूप दिया है। वस्तुतः वे एक महान् कलाकार थे।

भट्ट जी ने एक विशेष युग में साहित्य-सृजन प्रारम्भ किया था, वह युग था हमारे राष्ट्रीय जागरण का। इसीलिए उनमें सर्वत्र उद्बोधन का स्वर है। भट्ट जी भीड़-भाड़ से दूर और तपस्या में रत रहने वाले साहित्यकार थे। आत्मा की सत्ता में उनका अटल विश्वास था। उनके काव्य और नाटकों में मानव हृदय की दैवी सम्पत्तियों का चरम विकास मिलता है। उनके जीवन-दर्शन में भौतिकता केवल साधन मात्र है और सर्जन आत्मा का उल्लास। सर्जन की स्फूर्ति उनके नाटकों का गौरव है।

सार्वभौम अधःपतन के कारणों पर भट्ट जी जब विचार करते हैं तो उन्हें इस ह्रास का मूल कारण जीवन में सन्तुलन का अभाव और व्यक्तिगत ईर्ष्या, द्वेष आदि प्रतीत होते थे। इसलिए समन्वय की भावना भी उनके काव्य और नाटकों में

प्रवहमान है। उन्हें जगत् में स्व और पर, महान् और लघु, उच्च और निम्न आदि भाव किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं। भट्ट जी का दृढ़ विश्वास था कि सदाचार, देश-प्रेम, सामाजिक प्रगति, राजनीतिक उत्कर्ष आदि का मूल्यांकन भौतिक उपकरणों द्वारा न होकर मानसिक एवं आत्मिक उपकरणों द्वारा ही किया जा सकता है। सामाजिक उत्कर्ष के लिए भौतिक वैभव की अपेक्षा मानव गुणो का उत्कर्ष अधिक अभिप्रेत है। इसलिए भट्ट जी ने मानव-गुणों के प्रति गम्भीर आस्था प्रकट की है और प्राणिमात्र के कल्याण की कामना भी की है। वे जीवन के रहस्य को खोजने वाले मानव थे। अनुभूति ही उनके लिए सब कुछ थी। भट्ट जी ने अपने भावों को व्यक्त करने के लिए काव्य, गीत, मुक्तक और नाटक को अपना माध्यम चुना। प्राचीन संस्कृति का नवीन स्वप्न एवं आदर्श ही उनको अभीष्ट है।

भट्ट जी की अन्तिम काव्य कृतियों की कला प्रौढ़ है। कविता में उभरे चित्रों की रेखाएँ पुष्ट और शालीन हैं। कल्पना, अनुभूति और माधुर्य से काव्य संवेदनशील बना हुआ है। जन-जीवन के प्रकृत चित्र इनका प्रतिपाद्य है। इनमें अधिकतर वस्तुवादी और यथार्थवादी चित्र है। यथार्थ और वस्तु से तात्पर्य यहाँ किसी वर्ण्य विशेष के आग्रह से नहीं है, अपितु काव्य की प्रकृत भाव-भूमि से है। काव्य की सहज भूमि का, सरल बोधगम्य भाषा का और अबाध प्रेषण का ऐसा रूप सम्भवत: अब तक नहीं देखा गया है।

भट्ट जी कर्मवादी और मानवतावादी दोनों थे। मानवतावाद एक सैद्धान्तिक उपपत्ति है जबकि जनवाद उसका क्रियात्मक व्यावहारिक रूप। इन सबका मूल कारण यही है कि कवि के प्रस्तुत धर्म का पालन भट्ट जी ने ईमानदारी के साथ किया है। छायावादी कवियों पर कल्पना-विहार और स्वप्निलता के आक्षेप का परिहार भट्ट जी जिस कुशलता से करते हैं, कदाचित् युग का कोई कवि वैसा कर पाया हो। युग का सही-सही चित्रण करने के लिए भट्ट जी में जन-जीवन के साथ घनिष्ठ सम्पर्क की नहीं अपितु तादात्म्य की स्थिति मिलती है।

सामान्यत: कविता के तीन तत्व होते हैं—राग-तत्व, बुद्धितत्व और कल्पना-तत्व। प्राय: ऐसा अनुभव किया जाता है कि किसी में किसी तत्व की प्रधानता होती है और किसी में किसी तत्व की। उसके काव्य का मूल इनमें से कोई न कोई तत्व होता है। भट्ट जी में रागतत्व की प्रधानता है, और सौन्दर्य के प्रति सहज आकर्षण की जिज्ञासा।

भट्ट जी के काव्य का प्रत्येक मोड युग के लिए उनकी देन स्वीकार की जा सकती है। मुक्त छन्द से लेकर खण्ड-काव्यात्मक औदात्य सामाजिक यथार्थ के रूप में मानवतावादी काव्य का एक नवीन दिशाबोध है। इस विविधता और व्यापकता, साधना और प्रौढ़ता के कारण उनके काव्य को महत् काव्य कहने में हमें तनिक भी संकोच नहीं है। मानवतावादी नैतिक-सांस्कृतिक काव्यधारा के तो वे विशिष्ट कवि थे। उनकी कृतियों में उनके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है और

इसीलिए उनकी रचना के साथ उनका नाम उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है।

भट्ट जी के नाटकों का संयोजन स्वप्न और जागृति का मिलन है, कल्पना और वास्तविकता का संयोग है। आज का नाटक हमारे जीवन की गतिविधि से बहुत मिल-जुल गया है। नाटक ही क्या सम्पूर्ण साहित्य पुराने जीर्ण-शीर्ण कलेवर को छोड़कर नवीनतम धारणाओं, भावनाओं में अग्रसर हो रहा है। भट्ट जी की काव्य कृतियाँ और नाटक इसके प्रमाण हैं। भट्ट जी के नाटकों में जहाँ एक ओर भावुकता तथा यौवनोचित आवेश और ऊष्मा है वहाँ दूसरी ओर उनकी ज्ञानभूमि और कर्मभूमि गम्भीर एवं विचारशील है।

भट्ट जी के नाटकों का कथानक सरल है। वे प्रसाद के प्रौढ़ ऐतिहासिक नाटकों की भाँति उलझने नहीं पाये। जहाँ प्रसाद जी ने एक ही नाटक में अनेक कथानकों की भीड़ लगा दी है, वहाँ उन्होंने एक नाटक में एक ही मुख्य कथानक पर अपना सारा ध्यान और कौशल केन्द्रित रखा है। प्रसाद के नाटकों की भाँति इनके नाटकों में चरित्र-चित्रण भी प्रायः आदर्शवादी ढंग का ही है और मुख्य पात्र अधिकतर असाधारण गुणों और आदर्श भावनाओं से ही युक्त हैं। उनके नाटकों में भाषा सरल है और संवादों में व्यर्थ का पाण्डित्य-प्रदर्शन, भावुकता, दार्शनिकता अथवा सिद्धान्त-प्रतिपादन का बोझिलपन नहीं है।

भट्ट जी के ऐतिहासिक नाटकों में प्रधान पात्र किसी न किसी बलवती सामयिक चेतना से प्रेरित होकर आगे बढ़ते हैं चाहे वह देशरक्षा की भावना हो या आक्रान्ताओं को बाहर खदेड़ने की भावना हो अथवा प्रतिशोध की भावना हो। ये भावनाएँ कुछ पात्रों में इतनी सबल हो उठी हैं कि अपना विशिष्ट व्यक्तित्व खोकर इन भावनाओं के प्रतीक मात्र बने हुए हैं। एक ओर पात्र वीरता, साहस, देश-भक्ति, स्वाभिमान, स्वातन्त्र्य-प्रेम तथा भ्रातृ-भाव आदि गुणों का राग अलापते हैं, दूसरी ओर फूट, परस्पर द्वेष, स्वार्थ, संकीर्णता, धर्मान्धता, जातीय दम्भ आदि दुर्गुण उन्हें पीसे डाले जा रहे हैं।

लेखक ने आधुनिक समस्याओं का समुचित वर्णन पौराणिक नाटकों में किया है। इन नाटकों में प्राचीन और अर्वाचीन का ग्रन्थिबन्धन भी बड़े कौशल के साथ नाटककार ने किया है।

समाज के जीवन में पाश्चात्य वैभव के अनुकरण से अनेक विकृतियाँ भर गई हैं और व्यक्ति दर्शन में अपूर्णता आ गई है जिसके परिणामस्वरूप आज के मानव में छल, कपट और छद्म भरे पड़े हैं। आदर्श चरित्र जैसी चीज़ केवल कोरी कल्पना है। जैसे-जैसे युग बढ़ता है वैसे-वैसे मानव मन अधिक संश्लिष्ट, अधिक ग्रन्थिमय, अधिक गुम्फित होता जाता है। बुराइयों को छिपाने का उसका कौशल निहायत चुस्त और सभ्यतापूर्ण होता जाता है। आज सामाजिक मर्यादा, राजनीतिक जीवन में धार्मिक कुण्ठाओं ने अपने को छिपाने की कला में जैसे निपुण बना दिया है। यह

सम्भवत: राजनीति का प्रभाव है कि उसका विवेक उसका साथ नहीं दे रहा है और वह अपने स्वार्थ के लिए, अपने भौतिक सुखों के लिए अपने वास्तविक रूप को विस्मृत किये हुए है। भट्ट जी ने अपने नाटकों एवं एकांकियों में इसका और आज के आदमी का सही-सही चित्र अंकित कर दिया है। मानव के अन्तर का चित्र भी उन्होंने तटस्थ पर्यवेक्षक के रूप में बड़ी ईमानदारी से खींचा है। यह सब लेखक ने मानववाद की भावना से प्रेरित होकर ही किया है।

भट्ट जी को नवीन विचार सदैव ग्राह्य थे। उनका पर्यालोचन एक स्वतन्त्र समीक्षक के रूप में करने के लिए वे सदैव प्रयत्नशील रहते थे। इस सम्बन्ध मे भट्ट जी ने लिखा है :

> **"शब्दों में, अर्थों में, भावों में,**
> **ध्वनियों, रसों में, रूप सुन्दर की वाणी में,**
> **पाता जो रहता हूँ गाता ही रहता हूँ।**
> **मैं ही एक पथचारी**
> **मैं ही एक पथचारी आदि से अनन्त तक।"[1]**

भट्ट जी का साहित्य उनकी अनुभूति के द्वार को खटखटाकर अभिव्यक्त हुआ है। इसीलिए वे कुछ नवीन अभीष्ट चित्र उपस्थित करने में पूर्णत: सफल हुए हैं। लेखक ने युग की दृष्टि के अनुसार न किसी को आमूल गुणी माना है और न किसी को आमूल बुरा। मूलत: मनुष्य न बुरा है न भला। उसके मानस की ग्रन्थियाँ निरन्तर खुलती और बंधती रहती है। मानव का यह रूप उनके एकांकियों में पर्याप्त मात्रा में मिलता है। दरअसल भट्ट जी मानव को सुखी, सच्चरित्र मानवीय गुणों से आभूषित देखने के इच्छुक थे। इसीलिए वे बार-बार मनुष्य से शुद्ध मानवीय भूमि पर चलने का अनुरोध करते रहे और नैतिकता को जीवन प्रगति का अमोघ शस्त्र मानते रहे। इस सम्बन्ध में डा० एस० एन० दास गुप्ता ने भी लिखा है :

"Indian philosophy believes that the world about us is a moral world and that by following a moral life both objectively and subjectively we are bound to attain perfection at some time or other."[2]

भट्ट जी के काव्य और नाटकों का मूल उद्देश्य मानव मे इसी नैतिक भावना का विकास और उसके प्रति आस्था जगाना है। वे मनुष्य को धृति, क्षमा, उदारता, सहानुभूति और त्याग की प्रतिमूर्ति के रूप में देखना चाहते हैं। इस विषय मे उन्होने विचार भी व्यक्त किये हैं :

"मनुष्य पशुता के विकास की चरम परिणति है। यहाँ केवल इतना ही तात्पर्य है कि विकासोन्मुख पशुत्व से ही मनुष्य का निर्माण हुआ है, जिसमें धीरे-

१ 'उदयशंकर भट्ट : व्यक्ति और साहित्यकार'—कवि, पृ० १७२।
२ 'The Cultural Heritage of India', volume III, Page 24.

धीरे अहंकार के साथ बुद्धि, धृति, क्षमा आदि गुण विकसित हुए। इन गुणों की विशेषता के कारण ही अन्य पशुओं से मनुष्य में भेद हुआ, ऐसा मेरा विश्वास है।"[३]

बस मानवीय गुणों के विकास की भावना से प्रेरित होकर ही उन्होंने अपने साहित्य की रचना की है। इसी मानववाद के लिए वे जीवन भर प्रयत्नशील भी रहे। इस सम्बन्ध में उनका यह मुक्तक दर्शनीय है :

"तुम हो मनुष्य तो सृजन करो सुषमा का,
अपनी साँसों का महल नया बनने दो।
अपने मन की किरणों से द्योतित भू पर
बस नए चाँद का चंदोवा तनने दो॥"[४]

भट्ट जी ने मानव से उसकी महत्ता को बड़े स्नेह से बताया है :

"तुम में ही बहता है अथाह सुख शान्ति नव,
जिसमें अखण्ड रूप आनन्द पलता है।
भीतर जमीन के ही मिलते हैं रत्न सदा,
बिना सीप मोती कहीं पड़ा हुआ मिलता है ?"[५]

अतः उनके काव्य और नाटकों की विशिष्ट देन, यही मानव निष्ठा और उसकी आन्तरिक शुद्धि का अनुग्रह एवं प्रयास है। भट्ट जी ने जो कुछ लिखा मानव प्रकाश हेतु ही लिखा—"मैंने कभी गर्व नहीं किया कि एक या सवा फुट की उठान का मेरा यह लघु दीपक साहित्य दो-चार गज से अधिक प्रकाश बिखेर सकेगा। फिर इसके प्रकाश में किसी को कोई खोई चीज मिल जाए तो मेरा सौदा बुरा नहीं कहलाएगा।"[६]

सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् के दर्शन भी भट्ट जी के साहित्य में सर्वत्र होते हैं। उन्होंने अपने साहित्य में सत्य और सुन्दर को देवी के दानस्वरूप माना है :

"जो कुछ मैंने लिखा धरोहर है वही,
जाने कितना व्यर्थ और कितना सही।
जो कुछ सुन्दर, और सत्य देवि का दान है,
बाकी है सब व्यर्थ सृजन अभिमान है।"[७]

इसके अतिरिक्त लोक-मानवता भट्ट जी की आलोकवान् देन है। मानव-विकास की लहलहाती लता के दो पुष्प है : नर और नारी। भट्ट जी ने इन दोनों के मूल रूप की मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और सांस्कृतिक व्याख्या सभ्यता और

३ 'आदिम युग और अन्य नाटक'—भूमिका, पृ० क।
४ 'कणिका', पृ० ५।
५ 'वही', पृ० १४।
६ 'साहित्य के स्वर'—नाट्य रचना प्रक्रिया और उद्देश्य, पृ० ६६।
७ 'उदयशंकर भट्ट : व्यक्ति और साहित्यकार', पृ० १।

संस्कृति के मनीषी, आलोचक के रूप में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत की है। इस प्रयास में जो जीवन की विशद महत्ता निहित है, उसका सार यह है कि मानव के मानवीय गुण ही सब कुछ हैं।

एक जागरूक कलाकार की भाँति भट्ट जी ने जहाँ-जहाँ भी मानव की व्यावहारिक समस्याओं और प्रश्नों को लेकर उनको हल करने का प्रयास किया है वहाँ उनकी स्थिति एक युगान्वेषी चिन्तक की भी है। उन्होंने मानवीय आदर्शों को अपने काव्य और नाटकों में पाँच प्रकार से अभिव्यक्त किया है :

१. करुणा की अन्तर्धारा के रूप में।

२. नारी-चरित्र की गौरव व्यंजना के रूप में।

३. मानव के चारित्रिक उत्कर्ष के रूप मे।

४. देवों की श्रेष्ठता के रूप में जो मानव मे त्याग और पुरुषार्थ के भाव भरता है।

५. वर्तमान में सुधार और उज्ज्वल भविष्य की कामना के रूप में।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि उनके काव्य और नाटकों मे एक शीतल, मधुर और निर्मल जल का नाला कल-कल नाद करता हुआ बह रहा है जो सबको सुख, शान्ति और आनन्द प्रदान करता है। थके और जीवन-संग्राम में हारे हुए मनुष्य को कर्म करने की अद्भुत प्रेरणा मिलती है।

इसके अतिरिक्त भट्ट जी ने जो कुछ निजी और मौलिक दिया है वह उन्हें हिन्दी साहित्य में अमर रखने के लिए पर्याप्त है। वे अपनी उदात्त मानवीय अनुभूतियों के दान के फलस्वरूप अनुभूति एवं विचार-जगत् में सदैव आदर की दृष्टि से देखे जायेंगे। मानववाद के वास्तविक आविष्कारक एवं उन्नायक के रूप में आधुनिक हिन्दी साहित्य में उनका एक विशिष्ट स्थान सदैव बना रहेगा।

भट्ट जी की कृतियों की सूची

काव्य

१. तक्षशिला (खण्ड काव्य)	१६२८
२. राका (कविता संग्रह)	१६३०
३. विसर्जन (कविता संग्रह)	१६३१
४. मानसी (खण्ड काव्य)	१६३३
५. अमृत और विष (कविता संग्रह)	१६४४
६. युगदीप [पूर्वापर] (कविता संग्रह)	१६४४
७. यथार्थ और कल्पना [पूर्वापर] (कविता संग्रह)	१६४८
८. कौन्तेय कथा [विजय पथ] (खण्ड काव्य)	१६५०
९. कणिका (मुक्तक संग्रह)	१६६१
१०. इत्यादि (कविता संग्रह)	१६६१
११. अन्तर्मन्थन : चार चित्र	१६६३
१२. मुझ में जो शेष है	१६६३
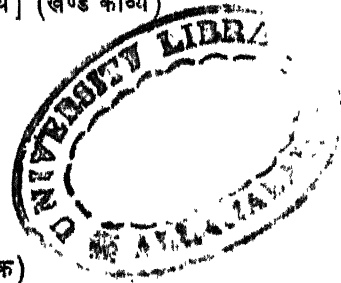
नाटक

१३. विक्रमादित्य (ऐतिहासिक)	१६२६
१४. दाहर अथवा सिन्ध-पतन (ऐतिहासिक)	१६३०
१५. विद्रोहिणी अम्बा (पौराणिक)	१६३१
१६. सगर-विजय (पौराणिक)	१६३२
१७. कमला (सामाजिक)	१६३५
१८. अन्तहीन अन्त (सामाजिक)	१६३८
१९. मुक्तिदूत (ऐतिहासिक)	१६४४
२०. शक-विजय (ऐतिहासिक)	१६४८
२१. क्रान्तिकारी (राजनीतिक)	१६५३
२२. नया समाज (सामाजिक)	१६५५
२३. अशोकवन-बन्दिनी (गीति-नाट्य)	१६५८
२४. पार्वती (सामाजिक)	१६५८
२५. एकला चलो रे (पद्य)	१६५८
२६. नहुष-निपात (पौराणिक पद्य-नाटिका)	१६६१

एकांकी नाटक

२८. विश्वामित्र और दो भाव-नाट्य — १९३४–३५
२९. आदिम युग और अन्य नाटक — १९३५–३६
३०. स्त्री का हृदय — १९४०
३१. समस्या का अन्त — १९४०
३२. कालिदास (ध्वनि-रूपक) — १९४८
३३. धूमशिखा — १९५०
३४. अन्धकार और प्रकाश — १९५२
३५. पर्दे के पीछे — १९५४
३६. आज का आदमी — १९५९
३७. जवानी और छः एकांकी — १९६१
३८. सात प्रहसन — १९६२
३९. नारी के रूप [असुर सुन्दरी] (अप्रकाशित) — १९६२

उपन्यास

४०. एक नीड़ दो पंछी — १९४०–४३
४१. नये मोड़ [डा० शेफाली] — १९४८
४२. लोक-परलोक — १९५५
४३. शेष-अशेष — १९५८
४४. सागर, लहरें और मनुष्य — १९५९
४५. दो अध्याय — १९६२

निबन्ध

४६. साहित्य के स्वर — १९६१

सम्पादित

४७. कृष्णचन्द्रिका (गुमानी मिश्र) — १९२३
४८. शकुन्तला (कालिदास) — १९३८
४९. समस्याएँ और हम (एकांकी) — १९५०
५०. जीवन और संघर्ष — १९५२